कृष्णभक्त मीराबाई

✻ संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

✻ छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराज लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

✻ सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

✻ संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

✻ प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

✻ सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

✻ पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रदास अग्रवाल

✻ संकलनकर्ता :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

बी-८, कोनार्क इन्क्लेव्ह, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

✻ प्रकाशन **नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट**
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

✻ पद पंकज तेरे छुयेंगे कभी ब्रजराज हमें व्रज धूल बना दें।
धन्य-धन्य वृन्दावन की चींटी, महाप्रसाद की कणिका लेके जा बिल में बैठी।
धन्य-धन्य वृन्दावन के कूकूर पावैं सीथ प्रसाद तवैं बैठै मुँह ताके टुकुर टुकुर ।।

✻ मूल्य - कृष्ण भक्ति

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

✻ हम देवताओं को पूजते हैं मन्दिर में, सजाते है उनको हम अपने अपने घर में,
फिर क्यों बेचैनी है हमारे गांव शहर में, क्यों हम हैवान बन जाते है अवसर आने पर।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

८) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

९) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

१०) श्रीमती शारदा नेमीचंद अग्रवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

११) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१२) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिटय़ूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१३) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१४) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१५) श्री सुनील गर्ग (दर्शना)
गुरुकृपा कॉम्प्लेक्स,
विश्रांतवाडी, पुणे- ४११००१
मो. ९८९०४५६९२८, ९९६०२६०६६१ (दर्शना)

१६) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

✻ विशिष्ठ सहयोग ✻ १) श्री. कृष्णा वाडेकर, २) श्रीमती क्लेयरा गुडविन,
३) अरीफ इनामदार, ४) लेटीसीया कोलॅको

✻ सहयोगी दल ✻ १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल,
३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल,

मारवाड़ (मेड़ता)

राठोड वंश जोधपुर

- राव चूंडाजी राठोड
  - राव रणमल
    - राव जोधाजी
      - राव सूजाजी
      - राव दूदाजी
        - वीरमदेव
          - जयमल
            - मुकुन्ददास
        - रायमल
        - रायसल
        - रतनसिंह
          - मीराबाई
        - पंचायण
  - हंसाबाई

गहलोत वंश - सिशोदिया वंश (मेवाड़- चितौड़)

- राणा लाखाजी- मारवाड़ से पत्नी हंसाबाई
  - राणा मोकलजी
    - राणा कुम्भा
      - उदा
      - रायमल
        - राणा संग्रामसिंह (राणा सांगा)
          - पत्नि- १) सोलंकिणी देवी
            - भोजराज
              - पत्नि मीराबाई
          - पत्नि-२) धनाबाई
            - रत्नसिंह
              - पत्नि पँवारजी
                - (पुत्री) श्यामकुँवरबाई
          - पत्नि- ३) हाड़ी रानी (कर्मावती)
            - विक्रमादित्य
              - महाराणा प्रतापसिंह,
                - अमरसिंह
              - शक्तिसिंह
            - उदयसिंह
            - उदाबाई

कृष्ण भक्त मीराबाई

बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो।

मीराने प्रकट होकर भारतवर्ष, हिन्दू-जाति और नारी कुलको पावन और धन्य कर दिया।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।।

श्रीकृष्णप्रेममें पगी मीरा भक्तिमें सराबोर थी। उसने अपने भाव-मंजीरेसे मस्तीभरा जो कीर्तन किया, वह स्त्री-भक्तोंमें ही नहीं, कीर्तनीयोंमें भी अद्वितीय है। मीरा कीर्तन करते-करते भावयोगमें लीन हो जाती थी। उसके समक्ष गोपालके सिवा दूसरा न कोई दीखता था।

पायो जो म्हैं तो राम रतन धन पायो। वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ।।

जनम-जनम की पूँजी पाई, जगमें सभी देवायो। खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो ।।

सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो। मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो ।।

आज से लगभग ४५० वर्ष पूर्व मृत्युलोक में अवतार धारण करनेवाली एवं अपने पवित्र और मधुर प्रभाव से सारे विश्व के गगन मंडल को प्रकाशित करनेवाली वह श्री राधिका महारानीजीकी परम प्रिय पात्री थी। संसार में रहकर भी वह संसार से अनासक्त रही, यही नहीं संसार की उग्र ज्वालाओं में भी अपने आपको शीतल रखकर अपनी स्वाभाविक उदारता से उसने संसार को प्रेम, कल्याण और शांति का पाठ पढ़ाया। भगवत्प्रेम में रंगी हुई वह एक ऐसी राजमहिला थी कि जिसने अपने प्रभु श्यामसुंदर के लिये सामाजिक बंधन व लोक-कुल-रीति को नगण्य समझ कर पैरों में घुंघरू बांधकर नृत्य करके अपने गिरिधर गोपाल को रिझाया था।

उपर्युक्त सामाजिक वज्र बंधन को तोड़ने जैसी स्वतन्त्र, साहसभरी एवं क्रान्तिकारिणी वृत्ति के कारण अत्यन्त रुष्ट हुये राणा द्वारा अनेकानेक प्रयत्न किये जाने पर तनिक भी अपने निश्चय से न डिगनेवाली वह वीरांगना थी जिसका बाल ही बाँका नहीं हुआ। इसके विपरीत वह तो स्वर्ण की भाँति और भी अधिक चमकने लगी। उसकी भक्ति इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी कि उसने श्री द्वारिकाधीशको अपनी पाषाण प्रतिमा को चैतन्यमयी बनाकर तद्द्वारा उसे अपने में समा लेना पड़ा। भगवान के साक्षात् श्री अंग में ही वह अंतर्हित हो गई।

साहित्यिक क्षेत्र के उच्चकोटि के कवियों की पंक्ति में सुशोभित होने की योग्यतावाली वह विदुषी थी, जिसके पद सारे भारत के मंदिरों में गाये जाते हैं एवं सत्संग-उपदेश व प्रेमभाव पूर्ण उन मधुर पदों को गा-गाकर अनेकों नर नारी तर गये, तर रहे हैं, और तरते रहेंगे।

जिसने राजस्थान, वृंदावन, गुजरात और द्वारिका आदि की यात्रा के समय, अपने दर्शन, कीर्तन व सत्संग से अनेकों जीवों का उपकार किया तथा सर्वत्र साधु-महात्माओं ने जिसकी लोकमान्यता स्वीकार कर ली। जिसकी संगीत कला में यह अलौकिक प्रभाव था कि मल्हार राग गाने से मृतक सजीव हो उठता था। जिसमें लोक मानस को विमुग्ध कर उसे शांति और कल्याण के राजमार्ग पर अग्रसर कराने का विलक्षण सामर्थ्य था और जिसकी कोकिल कंठी संगीत-सुधा मृत्यु लोक के जीवों के लिये प्रत्यक्ष संजीवनी थी।

जिसकी ऐसी अपूर्व तेजस्विता थी कि, किसी स्त्री का मुख न देखने का प्रण करनेवाले वृंदावनवासी जीव गोस्वामी जैसे प्रकाण्ड पण्डित व संत को भी उसके मार्मिक, निर्भीक व यथार्थ उत्तर को सुनकर अपना प्रण तोड़ने को बाध्य होना पड़ा।

उस प्रेम योगिनी और भक्ति की आचार्य की योग्यता किसी अनुभवी, ज्ञानी, वेदान्ती और योगी से किसी प्रकार न्यून नहीं थी। उसके ज्ञान व निर्गुण-रहस्यवाद के पद इसका सहज प्रमाण है। जिसका ऐसा सार्वभौम माहात्म्य है कि मेवाड़ देश व मेड़ता (मरु-भूमि) आज भी उसके नाम के पीछे मीराबाई के देश माने जाते हैं।

आर्य महिला का भव्य आदर्श, मेवाड़ की परम विभूति, वृन्दावन की माधुरी, सकल संत समाज की भूषण, श्यामसुन्दर की परम प्रेयसी तथा प्रेमवश भगवान भक्त के आधीन हो जाते हैं, इस सत्य का संसार को साक्षात्कार करानेवाली वह थी दिव्य स्वयं सिद्धा। आज भी वह भवताप-तप्त संसारी जीवों के लिये कलि-कल्मष-हारी सुधा का झरना है।

भगवद् साधन विहीन और संसार ग्रस्त दरिद्रियों के लिये वह भक्ति की अनंत निधि है।

पाप ग्रस्त जीवों को शीतलता प्रदान कर उन्हें प्रेम प्लावित कर देनेवाली वह शरद पूर्णिमा की पूर्णोज्ज्वल ज्योत्स्ना है।

पथ-भ्रष्टों को मार्ग सुझानेवाली एवं अज्ञानांधकार को दूर कर उनके हृदय प्रदेश पर प्रेमालोक बरसाने वाली वह दिव्य ज्योति है। प्रभु के पाद-पद्मों में, जिसके आनंदमय एवं पवित्रतम मधुर सौरभ से सहस्रों जीव अपूर्ण प्रेरणायें पाकर आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होते हैं।

वह भगवती भागीरथी है जो श्री विष्णु चरण से प्रकट होकर श्री शंकर की विशाल जटा में समा गई अर्थात् श्री चार भुजानाथ (विष्णु) तीर्थ स्थान के माहात्म्य वाले, मेड़ता रूप विष्णु चरण से निकली हुई मीरा रूप भागीरथी, श्री एकलिंगजी भगवान की महिमा वाले चित्तौड़ रूप, शिवजी की जटा में समा गई और तत्पश्चात् संसार के कल्याण के लिये देश-प्रदेश में बहती हुई अन्त में सागर में जाकर समा गई, अर्थात् मेवाड़ छोड़कर श्री वृन्दावनादी तीर्थों में विचरती हुई मीराबाई अन्त में श्री द्वारिकाजी में श्री रणछोड़रायजी के श्री विग्रह रूप सिंधु में विलीन हो गई।

वह है श्यामसुन्दर की अभिन्न हृदया, प्रेम-प्रभा, सौन्दर्य-सुषमा तथा आनंद-सुधा का सिंधु। मीरा सर्वस्व है जिस पर सर्वस्व ही न्यौछावर है। मीरा देवी कितना सुन्दर नाम। कितना माधुर्य है इस नाम में। इस नाम के स्मरण होते ही अनायास भावुक मानस-पटल पर यह स्वरूप-छटा अंकित हो जाती है।

गौर कान्तियुक्त अपूर्व लावण्य से दमकता हुआ मुखमंडल, अपने प्रियतम के प्रेम-मद में छके हुये सुन्दर विशाल नयन कमल, तंबूरा बजाते हुये गा-गाकर एवं नृत्य कर अपने गिरधर गोपाल को रिझाती हुई, सिर की दोनों ओर तथा पीठ पर विस्तृत लंबे गहरे कृष्ण केश, प्रवाल रंग के पतले ओष्ठ द्वय, हाथ पाँव सुन्दर सुडौल, क्षीण कटि युक्त अत्यन्त सुकुमार काया। हृदय-प्रदेश को आलोकित करनेवाली ऐसी सौंदर्यमयी प्रतिमा के दर्शन करते हुये कभी तृप्ति नहीं होती। कैसा प्रभावशाली और मनोमुग्धकारी व्यक्तित्व है। नेत्रों में प्रति क्षण इस प्रकार एक न्यारी ही आनन्दमयी झलक चमकती है मानों बिजली की दिव्य चंचलता ने उन नेत्रों का आश्रय लिया हो। विधाता ने मधुरता और मृदुता का सार लेकर मानों उस कण्ठ स्वर का निर्माण किया है। ऐसी अनुपम व दिव्य श्री अंगकान्ति है।

कृष्ण-प्रेम-सुधा की अनन्त धाराओं से परिप्लावित समस्त अंगोपांगों के रोम-रोम में मानों आनंदमयी सुधा-संजीवनी व्याप्त हो।

मीराबाई के भी, अपने अनुभव, उपदेश, भगवद्लीला, अपनी विरहमयी साधना के भाव, प्रार्थना एवं व्रजभाव में तन्मय होकर किये हुए प्रलाप आदि सब पदों में ही वर्णित हैं।

मीरा सगुणोपासिनी थी। उसकी उपासना विष्णु के कृष्ण स्वरूप की थी। उसके नारी-हृदय में दाम्पत्य भाव था इसलिये कृष्णानुराग के आवेश में उसके पदों में दाम्पत्य-रति की ही विशेष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। श्यामसुन्दर ही उसके परम

प्रियतम-प्राणनाथ और स्वामी हैं और उसकी भाव सृष्टि में वही उनकी परम प्रियतमा, राधा अथवा गोपी है।

भले ही कहीं साहित्यिक दृष्टि से मीरा की कविता बहुत ऊँची नहीं मानी जाती हो अथवा सूर या तुलसी की समानता न कर सकती हो परन्तु उसके पदों में जो नारी-सुलभ कोमलता व हृदय की मीठी तथा सरस वेदना भरी है वह औरों में नहीं। हृदय से नि:सृत उसकी सरल और सहज वाणी में ऐसा विलक्षण चमत्कार है कि सामान्य जन-मानस तक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मीरा के अतिरिक्त ऐसा कोई बिरला ही भक्त-कवि होगा जिसके पद (वाणी) समस्त संसार के कोने कोने में गुंजित होते हों। मीरा के पद आत्मानुभूतियों से परिपूर्ण होने के कारण ही लोक-मानस को एवं भावुक हृदय को हठात् विमुग्ध कर देते हैं।

मीरा ने कोई कविता बनाने की चेष्टा नहीं की परन्तु उसके प्रेम के उफान ने अनायास ही कविता का रूप ले लिया जिसमें सरसता, प्रासादिकता, मधुरता, कोमलता, सरलता एवं तन्मयता आदि ओतप्रोत होकर प्रास, अनुप्रास, उपमा, अलंकार, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत एवं रूपक इत्यादि गुण आपही उसकी कविता में उतर आये हैं। उसकी भावना लोक की अनुभूतियाँ सहज स्फुरित होकर शब्द रूप साकार होकर पद बन गये हैं। उसके पदों में संयोग व वियोग भी है जिसमें प्रतीक्षा, अन्तर्व्यथा, विह्वलता और प्रेम की भाव-तद्रूपता भी व्याप्त है क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु के समान मीरा में भी विरह के भाव और अवस्थाएँ प्रकट होती रही थीं।

मीराबाई के काव्य में, गोपी व राधाभाव के उलाहना तथा व्यंग, अद्‌भुत कल्पनाशक्ति, करुणा से हृदय को द्रवित करानेवाला प्रबल विरहभाव, हृदय में खलबली मचानेवाला भावना प्रधान लीला वर्णन तथा प्रभावोत्पादक उपदेश आदि विविध भाव प्रचुरता एवं भाव-नाविन्य दिखाई देता है।

मीरा के पदों में शांत, करुणा, श्रृङ्गारादि रसों का समावेश है किंतु विरह (करुणा) रस की प्रधानता देखी जाती है। वास्तव में प्रेम का प्रधान अंग विरह ही है। उसका सारा जीवन भी तो अपने प्रियतम श्री श्यामसुन्दर के प्रेम एवं विरह में ही तड़पते बीता है। उसके पदों में जो रस भरी-मीठी व्यथा है वह ऐसी अनूठी है मानों उसने अपना हृदय ही निकाल कर बाहर रख दिया हो। उसकी उपासना दाम्पत्य भाव की होने से पदों में भक्ति और श्रृंगार, दोनों का सम्मिश्रण तो स्वाभाविक ही है किन्तु उसका श्रृङ्गार लौकिक-सा दिखाई देने पर भी अलौकिक व पवित्र है। साथ ही साथ उसमें अनन्त, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी झाँकी है। उसके शब्दों में मर्माहत करने की तथा उच्च प्रेरणात्मक शक्ति है।

उसने जो कुछ भी लिखा स्वयं अनुभूत था। अतएव उसकी अनुभूति भरी पद रचना में ऐसी सजीवता व विशेषता आई है जो कि औरों में नहीं। उसकी रचना को पढ़ते-पढ़ते कोई तर्क-वितर्क नहीं होता। एक मात्र मीरा ही उसमें गोपी-भाव से ओत-प्रोत सी दिखाई देती है।

मीराबाई के पद परम प्रासादिक होने से सबको इनसे रस व आनंद प्राप्त होता है। सरल होने पर भी ऐसी भाव-गांभीर्यता है कि साहित्य-रसिकों को वे परम रुचिकर लगते हैं। कुछ पदों में ज्ञान-योगादि के ऐसे विलक्षण निर्गुण भाव भरे हैं कि रहस्यवादियों के लिये भी रसमय हो गये हैं। संगीत की दृष्टि से तो ये बड़े ही उच्चकोटि के हैं क्योंकि कविता के साथ-साथ मीराबाई का संगीत में भी पूरा अधिकार था अतएव पद भी विविध छंदों एवं तालों में रचित होकर बड़े ही सुन्दर और गाने योग्य बने हैं और लोकप्रिय भी हैं।

मीरा की उपासना में उसकी भाव-तद्रूपता, उसके राधाभाव के पदों से प्रतीत होती है। अपने को राधा मानकर उसने विलक्षण भाव-प्रदर्शन किया है। भगवान श्रीकृष्ण की चिरसंगिनी, लीला सहायिका व अभिन्न शक्ति श्री राधा यह और कोई नहीं, समस्त प्रेम और श्रृङ्गार केन्द्रित होकर घनीभूत हुआ स्वरूप ही है।

मीरा के प्रियतम प्यारे श्री कृष्ण हैं। उसकी उपासना के उपकरण हैं, लौकिक दीखता हुआ भी अलौकिक प्रेम, दिव्य, श्रृङ्गार एवं मिलन-वियोग जनित आनन्दाभूति व विरहोन्माद।

मीराबाई के नाम से केवल भारत ही नहीं अपितु सारा विश्व परिचित है। बड़े बड़े उच्चकोटि के प्रमुख-संत-महात्माओं में उनका स्थान है। यही नहीं, यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मीराबाई जैसी लोक मान्यता कदाचित् ही किसी सन्त को मिली हो।

अवश्य ही चैतन्य महाप्रभु और मीराबाई के जीवन की कई घटनाओं में अद्भुत साम्य पाया जाता है। जैसे चैतन्य महाप्रभु को श्री कृष्ण का अवतार कहा जाता है तो मीराबाई राधा अथवा गोपी का अवतार मानी जाती है। दोनों ही के जीवन में श्री कृष्ण भक्ति की मधुर भाव की उपासना रही। दोनों ही ने एक ही बार श्री वृन्दावन धाम के दर्शन किये फिर दूसरी बार कभी नहीं गये। ज्यों श्री चैतन्यदेव अन्त तक श्री जगदीशपुरी में ही रहे, त्यों मीराबाई द्वारिकापुरी में ही रही। ज्यों श्री चैतन्यदेव के लिये कहा जाता है कि वे श्री जगन्नाथ प्रभु में अंतर्हित हो गये, त्यों मीराबाई भी श्री द्वारिकाधीश में समा गई। दोनों एक ही समय में व प्राय, समान वर्ष संसार में रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु गृह त्याग कर सन्यास लेकर विचरते रहे, त्यों मीराबाई भी स्वजनों को छोड़कर बिचरती रही। दोनों ही कृष्ण प्रेम में, विरह में रोये, तड़पे, बिलखते और छटपटाते रहे। दोनों ही प्रेम के अवतार थे।

विश्व की किसी भी भाषा का धार्मिक साहित्य ऐसा नहीं होगा जिसमें मीराबाई की चर्चा न हुई हो। विद्वद्समाज और हिन्दी साहित्य क्षेत्र में मीराबाई के पदों और रचनाओं का बहुत आदर है। शास्त्रों का सार तथा ज्ञान, रहस्य भक्ति, प्रेम आदि भाव अपने सरल पदों में लाकर उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। सारे भारत में उनके संगीतमय पदों की रसभरी तरंगे लहराती हैं। भारत का क्वचित् ही कोई कोना बचा होगा जहाँ उनका कीर्ति-सौरभ नहीं पहुँच पाया हो। संत समाज और भक्त जनों की भजन मंडलियों में ढोलक, खंजरी और तम्बूरे के साथ बड़े ही प्रेम से उनके पद गाये जाते हैं और घर घर में महिलाओं के कोमल कंठ द्वारा उनका सुमधुर पद-संगीत सुनाई देता है।

धनी, गरीब, गृहस्थी-त्यागी, नर नारी एवं आबाल वृद्ध सभी में मीराबाई के पद अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं।

मीराँ प्रभु की अनन्य भक्त तो थी ही पर साथ में वह बड़ी बुद्धिमती व चतुर भी थीं।

जिसके नाम के पीछे मेवाड़ देश संसार में मीराबाई के देश के नाम से प्रसिद्ध है, उस राजकुल रमणी रत्न मीराबाई की प्रेम और भक्ति भरी अमरगाथा के अंश को पृथक कर लेने पर तो वीर प्रसविनी मेवाड़ भूमि का इतिहास अधूरा और एकांगी रह ही जायगा। अपने अद्भुत पराक्रम से शत्रु के कलेजों का कँपानेवाले और राष्ट्र के लिये हँसते हँसते अपने को बलिवेदी पर चढ़ा देनेवाले वीरों की तथा बड़े साहस और प्रसन्नता पूर्वक धधकती अग्नि ज्वालाओं में कूद कर जौहर करने वाली मेवाड़ी वीराङ्गनाओं की अपूर्व गाथाओं से भरे हुए, मेवाड़ के इतिहास में, देवी मीराबाई का स्थान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजसत्ता द्वारा बार बार प्राणघातक-सिंहात्मक प्रयोग किये जाने पर भी काया वाचा मनसा अहिंसात्मक भावों को अपना कर अपने सत्याग्रह से विचलित न होनेवाली, तथा संसार की तमोगुणी व मृत्यु से भी अधिक त्रासदायक उग्र-दावाग्नि की भयंकर लपटों के बीच निर्भय और अडिग रहकर जीवन-यापन करनेवाली मीराबाई की दिव्यता उन वीरों तथा वीरांगनाओं से किसी प्रकार कम नहीं है।

मीराबाई की प्रतिभा अद्भुत थी। वह पढ़ी लिखी थी। संस्कृत भाषा का उसे पर्याप्त ज्ञान था। गीता-भागवत का उसका अभ्यास अधिकार पूर्ण था एवं उसका संगीत शास्त्र का अभ्यास भी चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। भिन्न भिन्न देशों में प्रवास व तीर्थ-पर्यटन के काल में तथा अधिकतर भिन्न भाषा-भाषी साधु सन्तों के सत्संग से उसकी गुजराती, हिन्दी एवं

ब्रज आदि की भाषाओं में भी पूरी गति थी।

मीराबाई के पद भिन्न भाषाओं में देखने को मिलते हैं। उनका पीहर मेडता और ससुराल चित्तौड़ होने से मारवाड़ी, मेवाड़ी अथवा राजस्थानी भाषा में सबसे अधिक पद होना तो स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त श्री द्वारिकापुरी जाते समय गुजरात में होते हुए स्थान-स्थान पर ठहरने व रहने से तत्प्रादेशिक प्रभाव के कारण बहुत से गुजराती भाषा के पद भी पाये जाते हैं। कई पद ब्रजभाषा व हिन्दी के भी हैं। कहीं किसी पद पर पूर्वी व पंजाबी भाषा की छाया भी देखी जाती है जो कि गाते-गाते शब्दों के घिसते जाने से गानेवाले की मातृ-भाषा में आपही ढल कर आई हुई प्रतीत होती है।

श्रीकृष्ण के सगुण रूप की व मधुर-रति की मीरा की उपासना थी परन्तु उसके मूल में सत्संग, संत समागम की दृढ श्रद्धायुक्त अखंड साधना थी। इसलिये उसके पदों में यत्र तत्र साधु संतों की महिमा के शब्द आये हैं।

मीरा का सारा जीवन अपने प्यारे श्यामसुन्दर के विरह में बीता। अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पण करके, भक्ति और प्रेम मार्ग पर जब वह स्वतंत्रता पूर्वक विचरने लगी तब उसके स्वजीवन की परिस्थिति उसकी साधना में बाधक हुई। उसने तब सच्चे हृदय से भगवान से प्रार्थना-विनय की और उस भगवत्कृपा के विश्वास पर दृढ़ निश्चय कर लिया और बाधक तत्वों की उपेक्षा करती हुई अपने पथ पर अग्रसर होती रही।

कुटिल राज सत्ता का विरोध करने से मीरा पर राणा विक्रमादित्य द्वारा विपत्तियों की परम्परा ढहने लगी। फिर भी वह अविचलित रही और उसकी साधना अविछिन्न रूप से चलती रही।

उसकी निरन्तर साधना के फलस्वरूप नाम माहात्म्य के अपूर्व प्रभाव से उसे बाहर भीतर एक मात्र श्यामसुन्दर की ही झाँकी दिखाई देने लगी।

राजस्थान के क्षितिज में प्रगट होकर मीराबाई ने भी ऐसी भक्ति की भागीरथी बहाई कि जसके पुण्य मय स्रोत में अनेकों नरनारी अवगाहन करके पावन हो गये। केवल राजस्थान में अथवा समूचे भारतवर्ष में ही नहीं अपितु सारे विश्व में देवी-मीरा का नाम अजरामर हो गया। सारे ब्रह्माण्ड भर में उसका कीर्ति-सौरभ फैल गया तथा विश्व के विभिन्न साहित्य और भक्ति-क्षेत्र में उसने अमिट स्थान पा लिया।

सन्त मीरादेवी जैसी महासाध्वी का भी समस्त जीवन संघर्षमय रहा था यह कौन नहीं जानता। उसके जीवन के कटुतम प्रसंगों की कथायें तो आज भी भारत के आबाल-वृद्ध नरनारियों के हृदय में स्मृति रूप से सुरक्षित हैं। बालपन में साधु से गिरिधर की प्रतिमा लेने की हठ, विवाह केअस्वीकार करने पर माता द्वारा किये गये ममता भरे आग्रह का बड़ी ही समझ एवं ज्ञान की वार्ता द्वारा नम्र विरोध, ससुराल जाते समय अपने गिरिधरगोपाल को भी साथ ले जाने का आग्रह, ससुराल में कुलदेवी पूजन का विरोध, नणंद के उपालम्ब, उलाहनों एवं व्यंग वचनों पर उसकी निर्भीक-स्पष्टोक्ति इत्यादि सामान्य प्रसंगों के अतिरिक्त उसके जीवन का सबसे अधिक संघर्ष का प्रसंग राणा विक्रमादित्य के साथ का था। विक्रमादित्य, राणा संग्रामसिंह का छोटा कुँवर और उदयसिंह (जिसके विश्व प्रसिद्ध राणा प्रताप हुये) का बड़ा भाई था, दोनों ही हाड़ी राणी कर्णावती के पुत्र थे। मीरा के पदों में यत्र-तत्र किये गये राणा नाम के प्रयोग पर आज भी बहुत अधिक लोगों में यह भ्रम फला हुआ है कि मीरा ने अपने पति राणा का विरोध किया था और उसके पति राणा ने ही मीरा को विषादि द्वारा मारने का प्रयत्न किया था परन्तु वास्तव में यह बात नहीं। यह तो इतिहास प्रसिद्ध है कि मीरा के पति भोजराज महाराणा संग्राम सिंह के ज्येष्ठ पुत्र और युवराज थे। पिता के पश्चात् उन्हीं का पद महाराणा का और मीराबाई का महाराणी का था परन्तु पिता के पूर्व कुमारावस्था में ही भोजराज परलोकवासी हो गये। वे राजगद्दी पर तो आये ही नहीं और राणा यह पद तो

राजसिंहासनारूढ़ होनेवाले को ही प्राप्त होता है। भोजराज के पश्चात् उनसे छोटा कुँवर रत्नसिंह गद्दी पर आया पर ४ वर्ष तक ही वह राज्य कर पाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुंवर विक्रमादित्य राणा बना। इसी राणा विक्रमादित्य ने मीराबाई से द्वेष किया, छल किया और विषादि द्वारा येन केन प्रकारेण अपनी भाभी को मार डालने की घातक चेष्टा की थी, परन्तु जाको राखे साइयां, मार सकें नहिं कोय। बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय।।

मीराबाई को उसके पति भोजराज, श्वसुर राणा संग्रामसिंह और देवर राणा रत्नसिंह के समय में न तो कोई कष्ट था न उसकी उपासना के प्रति कभी किसी को असन्तोष ही हुआ। उसकी पूजा-पाठ, सत्संग, भक्ति, सन्त-समागम इत्यादि उपासना उस समय भी बराबर अबाधित रूप से चलती रही। उसकी इस साधना से उसके पति, श्वसुर, सासू और देवर रत्नसिंह को तो कभी अपनी कुल मर्यादा मिटती नहीं प्रतीत हुई थी तब वह राणा विक्रमादित्य को ही मिटती सी क्यों प्रतीत हुई फिर वह भी इस सीमा तक कि उसकी उपासना-पद्धति पर प्रतिबन्ध लगने से ही सन्तुष्ट न होकर उसने मीराबाई को मृत्युदण्ड देना अनिवार्य समझा, यह विचारणीय प्रश्न है। समाधान किसी भी विचारवान् व्यक्ति को इतिहास देखने से सहज ही मिल जाता है। इतिहास में यह राणा कुख्यात है। १९ वर्षीय इस राणा के स्वभाव में बहुत अधिक बचपन होने के कारण वह राज्य करने के सर्वथ अयोग्य था। उसके कुटिल, स्वार्थी और कुचर्क्री परामर्शदाताओं का उस पर पूरा प्रभाव था। मेवाड़ के बहुत से जागीरदार ठिकानदार एवं प्रजाजन भी उसकी इस स्वच्छन्दनीति से बहुत असन्तुष्ट थे। मीराबाई की नणंद ऊदाबाई जो कि भोजराज के समय से ही अपनी भाभी से सामान्य स्त्रीसुलभ स्वभाववश द्वेष रखती थी और उसे नीचा दिखाने के लिये अवसर की ताक में रहती थी वह विक्रमादित्य के राणा बनने के पश्चात उस दुर्लभ अवसर के प्राप्त होने पर भला उसे कैसे खोती। वह राणा को बहका कर उससे बराबर अपना मन चाहा करवा कर छोड़ती थी। किन्तु मीराबाई पर किये गये विष-प्रयोग के प्रसंग पर प्रभु भक्ति के आश्चर्यजनक प्रभाव से वह अपने किसी पूर्ण पुण्य के संस्कार से पश्चात्ताप पूर्वक जब तक अपनी भाभी की शरण में नहीं गई तब तक उसकी यही करतूतें निरन्तर जारी रहीं।

मीरा के जीवन में जो राणा व उसके परस्पर में विरोध का अत्यन्त कटु प्रसंग उपस्थित हुआ जिसके कारण मीराबाई को मेवाड़ छोड़ना पड़ा उसका मूल कारण राणा विक्रमादित्य के अविचार, मन की चंचलता, ना समझी, अदूरदर्शिता और कुसंगति इत्यादि अवगुण ही थे न कि मीराबाई का धर्म के विपरीत आचरण अथवा लोक मर्यादा का त्याग।

मीराबाई के जीवन में उसकी साधना में प्रतिकूल और बाधक राणा विक्रमादित्य ही था। मीरा की भक्ति और साधु संगति से उसे पूरा द्वेष था। उसके भगवद्भावपूर्ण आचरण और व्यवहार से वह जल उठता था। इसी कारण मीरा को उसके समय में पहले का सा सुख और स्वतंत्रता पूर्वक भगवद्भक्ति करने की सुविधा नहीं रही, यही नहीं उसके भगवद्प्रेम पर अंकुश रखने को उसे बाध्य करने की चेष्टायें की जानें लगी।

मीराबाई ने यही सत्याग्रह किया। अपने सिद्धान्तों की रक्षा करती हुई राणा की महान् सत्ता के सन्मुख वह अकेली अबला अटल रही और अन्त में विजयिनी हुई, यही नहीं अपनी अनन्य श्रद्धा और प्रेम-भक्ति के प्रभाव के कारण विश्व के समस्त साधु-जगत में वंद्य और शिरोमणि सिद्ध हुई।

पौराणिक काल से लेकर वर्तमान युग पर्यंत के संत-महात्मा एवं मनस्वियों के जीवन-चरित्रों का अवलोकन करने पर भलीभाँति विदित हो जाता है कि वे अपने लक्ष्य के अवरोधक प्रबल तत्वों की उपेक्षा करते हुये अथवा परमदृढ़तापूर्वक सत्याग्रह से लोहा लेते हुए किस प्रकार अपने ध्येय, लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रभु के परम भक्त प्रह्लाद को मारने के लिए स्वयं उनके पिता हिरण्यकश्यपु ने कई चेष्टायें कीं, परन्तु उन सत्याग्रही का बाल

भी बाँका नहीं हुआ और अन्त में उन्हीं की विजय हुई। अपनी सौतेली माता के अपमान भरे व्यवहार के निमित्त को लेकर भक्त ध्रुव ने जो टेक ली उसे अविचल रह कर अन्त तक निभा रके ही छोड़ा और अमर हो गये। ऋषि विश्वामित्र और वशिष्ठ के परस्पर के संघर्ष में काया-वाचा मनसा अहिंसक रहनेवाले सत्याग्रही वशिष्ठ की ही अंत में विजय हुई। राजा हरिश्चन्द्र तो उनके सत्यव्रत ही के कारण विश्व में प्रसिद्ध हैं जो अपनी पत्नी व पुत्र को बेचने और स्वयं अपने ही हाथों अपनी धर्मपत्नी का वध करने जैसे कठोरतम प्रसंग के उपस्थित होने पर भी सत्य से नहीं डिगे और अन्त में मुनि विश्वामित्र को ही हारना पड़ा। भक्त विभीषण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता के विरुद्ध सत्य का पक्ष ग्रहण किया। भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता राम को स्वार्थवश वनवास देनेवाली माता कैकेई से विमुख हो गये। राजा बलि ने श्री वामनावतार विष्णु भगवान को पृथ्वी का दान देने से रोकनेवाले अपने गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा नहीं मानी। श्रीकृष्ण प्रेम में मतवाली गोपियों एवं ब्राह्मण पत्नियों ने भी श्यामसुन्दर के दर्शन को जाने से रोकनेवाले अपने पतियों की आज्ञा नहीं मानी। राजा सगर के पुत्र के अन्याय के कारण प्रजा उससे असंतुष्ट हो राज्य छोड़ जाने को उद्यत हुई थी, उस राजा प्रजा के संघर्ष में अन्त में प्रजा के सत्याग्रह की ही विजय हुई।

कलियुग में भी भक्त प्रह्लाद का स्मरण दिलानेवाली सन्त मीराबाई, गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्र, वीर हकीकतराय आदि ऐसे अनेकों महापुरुष हो गये जिन्होंने अपने प्राणों की चिन्ता न करके अपने प्रण अथवा सत्याग्रह को अन्त तक धैर्यपूर्वक निभाते हुए अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

नारायण नु नामज लेतां वारे तेने तजिए रे। घर तजिए ने कुटुंब तजिए ताजिए मा ने बाप रे।।

परमार्थ मार्ग में जाति को नहीं, भगवद्भाव को ही महत्त्व दिया जाता है, जैसा कि-

जाति पाँति पूछे नहिं काये, हरि का भजे सो हरि का होय।

व्यर्थ लोक निन्दा कोई भगवद्-मार्ग में बाधक नहीं अपितु साधक के लिये जीवन कसौटी है और किस प्रकार जीवन कसौटी है और किस प्रकार वह शुद्ध स्वर्ण की भाँति भक्त को अधिकाधिक उज्ज्वल बनाती है।

अधिकतर राणा द्वारा मीराबाईं पर किये गये अत्याचार-विष, सांप एवं शूली की सेज का भेजा जाना, राणा खड्गसे स्वयं मीराबाई का वध करने का प्रयत्न करना, किस प्रकाव विवश होकर मीराबाई का मेवाड़ त्याग करना, भक्ति के प्रभाव से किस प्रकार एक की अनेक मीराँ हो जाना और उपर्युक्त संकटों में से उसकी प्रभु द्वारा रक्षा होकर सत्य के प्रभाव से किस कार अधिक देदीप्यमान खिई देना तथा राणा के रूठने पर केवल मेवाड़ राज्य से ही निर्वासित होने का परन्तु प्रभु के रूठने पर त्रिलोक में भी कहीं ठौर न होने का निर्भयता पूर्वक स्पष्ट रूप से राणा को उत्तर देना इत्यादि।

भारत की नारी-जातिको धन्य करनेवाली भक्तिपरायणा मीराबाईका जन्म मारवाड़के कुड़की नामक ग्राममें संवत् १५५८ के लगभग हुआ था। इनके पिताका नामम श्रीरतनसिंह राठौड़ था। मीरा अपने पिता-माताकी एकलौती लड़की थी। वह बड़े लाड़चावसे पाली गयी थी। मीराके चित्तकी वृत्तियाँ बचपनसे ही भगवान्‌की ओर झुक हुई थी। एक दिन मीराके घर एक साधु आये। साधुके पास भगवानकी एक सुन्दर मूर्ति थी। मीराने साधुसे कहकर वह मूर्ति ले ली। साधुने मूर्ति देकर मीरासे कहा कि ये भगवान हैं, इनका नाम श्रीगिरधारीलालजी है। तू प्रतिदिन प्रेमके साथ इनकी पूजा किया कर। सरलहृदया बालिका मीरा सच्चे मनसे भगवान्‌की पूजा करने लगी। यद्यपि मीरा उस समय दस वर्षकी थी, तथापि वह दिनभर उसी मूर्तिको नहलाने, चन्दन-पुष्प चढ़ाने, भोग लगाने और आरती उतारने आदिके काममें लगी रहती। मीरा कीर्तन करते-करते कई बार बेहोश हो जाती स्वभावत: उसे श्यामबिहारी के दर्शन होते होंगे।

जो बिधना निज बस करि पाऊँ। तो सब कहो होय सखि मेरो, अपनी साध पुराऊँ।।

लोचन रोम-रोम प्रति माँगौं पुनि पुनि त्रास दिखाऊँ। इकटक रहै पलक नहिं लागे, पद्धति नई चलाऊँ।।
कहा करौं छबि राशि श्यामघन, लोचन द्वै न अघाऊँ। येते पर ये निमिष सूर सुनु यह दुख काहि सुनाऊँ।।

मीरा अबतक स्वयं पद-रचना भी करने लगी थी। जब वह रचित सुन्दर पदोंको भगवान्‌के सामने मधुर स्वरमें गाती, तब मानो प्रेमका प्रवाह-सा बहने लगता। सुननेवाले नर-नारियोंके हृदयमें प्रेम उमड़ने लगता। इस प्रकार भावतरंगोमें हिलोरें लेते हुए उसके पाँच वर्ष बीत गये। संवत् १५७३ में मीराका विवाह चित्तौड़के सीसोदिया-वंशमें महाराणा साँगाजीके ज्येष्ठ कुमार भोजराजके साथ सम्पन्न हुआ। विवाहके समय एक अद्भुत घटना घटी। कृष्ण-प्रेमकी साक्षात् मूर्ति मीराने अपने श्याम श्रीगिरधरलालजीको पहलेसे ही मण्डपमें विराजित कर दिया और कुमार भोजराजके साथ फेरा लेते समय श्रीगिरधरगोपालजीके साथ भी फेरा ले लिया। मीराने समझा कि आज भगवान्‌के साथ मेरा विवाह हो रहा है।

मीराकी माताको इस घटनाका पता था। उसने मीरासे कहा- पुत्रि। तूने यह क्या खेल किया? मीराने मुसकराते हुए कहा-

माई म्हांने सुपनेमें बरी गोपाल। राती पीती चुनड़ी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल।।
काँई और को बरूँ भाँवरी म्हांके जग जंजाल। मीराके प्रभु गिरधरनागर करी सगाई हाल।।

मीराके भगवत्प्रेमके इस अनोखे भावको देखकर माता बड़ी प्रसन्न हुई। जब सखियोंको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने हँसी करते हुए मीरासे गिरधरलाल के साथ फेरे लेनेका कारण पूछा। मीराने कहा-

ऐसे बरको के बरूँ जो जन्मै और मर जाय। बर बरिये गोपालजी म्हारो चुड़लो अमर हो जाय।।

प्राणोंकी पुतली मीराको माता-पिताने दहेजमें बहुत-सा धन दिया; परंतु मीराका मन उदास ही देखा तो माताने पूछा- बेटी। तू क्या चाहती है? तुझे जो चाहिये सो ले ले। मीराने कहा-

दे री माई अब म्हांको गिरधर लाल। प्यारे चरणको आन करति हौं, और न दे मणि लाल।।
नात सगो परिवारो सारो, मन लगै मानो काल। मीरा के प्रभु गिरधर-नागर, छबि लखि भई निहाल।।

भक्तको अपने भगवान्‌के अतिरिक्त और क्या चाहिये? माताने बड़े प्रेमसे गिरधरलालजीका सिंहासन मीराकी पालकीमें रखवा दया। कुमार भोजराज नव-वधूको लेकर राजधानीमें आये। घर-घर मंगल-बधाइयाँ होने लगी। रूप-गुणवती बहूको देखकर सास प्रसन्न हो गयी। कुलाचारके अनुसार देव-पूजाकी तैयारी हुई; परंतु मीराने कहा कि मैं तो एक गिरधरलालजीके सिवा और किसीको नहीं पूजूँगी। यह सुनकर सासु बड़ी रुष्ट हुई। उसने मीराको दो-चार कड़ी बातें भी सुनायी; परंतु मीरा अपने प्रणपर अटल रही।

राजपूतानेमें प्रतिवर्ष गौरी-पूजन हुआ करता है। छोटी-छोटी लड़कियाँ और सुहागिन स्त्रियाँ सुन्दर रूप-गुण-सम्पन्न वर और अचल सुहागके लिये बड़े चावसे गौर-पूजा करती है। मीरासे भी गौर पूजनेको कहा गया। मीराने स्पष्ट उत्तर दे दिया। सारा रनिवास मीरासे अप्रसन्न हो गया। सास और ननद ऊदाबाईने मीराको बहुत समझाया; परंतु वह नहीं मानी। उसने कहा-

ना म्हें पूजा और ज्याजी ना पूजा अनदेव। म्हें पूजा रणछोड़जी सासु थे, काँई जाणो भेद।।

सासु और भी रुष्ट हुई। समवयस्क सहेलियोंने मीरासे कहा- बहन। यह तो सुहागकी पूजा, सभीको करनी चाहिये। मीराने उत्तर दिया- बहनो। मेरा सुहाग तो सदा ही अटल है। सि अपने सुहागमें संदेह हो, वह गिरधरलालको छोड़कर दूसरेको पूजे। मीराके इन शब्दोंका मर्म जिसने समझा, वह तो धन्य हो गयी; परंतु अधिकतर स्त्रियोंको यह बात अच्छी न लगी। मीराकी इस भक्तिसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मीराके लिये अलग श्रीरणछोड़का मन्दिर बनवा दिया। कुमार भोजराज एक साहसी वीर और साहित्यप्रेमी युवक थे। मीराकी पदरचनासे उन्हें बड़ा हर्ष होता और इसमें वे अपना गौरव

मानते। जब वे मीराके प्रेमपुलकित मुखचन्द्रको देखते तभी उनका मन मीराकी ओर खिंच जाता। जब मीरा नये-नये पद बनाकर पतिको गाकर सुनाती, तब कुमारका हृदय आनन्दसे भर जाता।

यद्यपि मीरा अपना सच्चा पति केवल श्रीगिरधरलालको ही मानती थी और प्राय: अपना सारा समय उन्हींकी सेवामें लगाती, तथापि उसने अपने लौकिक पति कुमार भोजराजको कभी अप्रसन्न नहीं होने दिया। अपने सुन्दर और सरल स्वभावसे तथा नि:स्वार्थ सेवा-भावसे उसे सदा प्रसन्न रखा। कहते हैं, कुछ समय बाद मीराकी अनुमति लेकर कुमारने दूसरा विवाह कर लिया। मीराको इस विवाहसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे इस बातका सदा संकोच रहता था कि मैं स्वामीकी मन:कामना पूरी नहीं कर पाती। अब दूसरी रानीसे पतिको परितृप्त देखकर और पतिके भी परमपति परमात्माकी सेवामें अपना पूरा समय लगनेकी सम्भावना समझकर मीराको बड़ा आह्लाद हुआ।

मीरा अपना सारा समय भजन-कीर्तन और साधुसंगतिमें लगाने लगी। कभी विरहसे व्याकुल होकर रोने लगती, कभी ध्यानमें भगवान्से वार्तालाप करती हँसती, कभी प्रेमसे नाचती, भूख-प्यासका कोई पता नहीं। लगातार कई दिनोंतक बिना खाये-पीये प्रेम-समाधिमें पड़ी रहती। कोई समझाने आता तो उससे भी केवल कृष्ण-प्रेमकी ही बातें करती। दूसरी बात तो उसे सुहाती ही नहीं। शरर दुर्बल हो गया, घरवालोंने समणा कि बीमार है, वैद्य बुलाये गये। मारवाड़से पिता भी वैद्य लेकर आये।

वैद्य देख गये; परंतु इन अलौकिक प्रेमके दीवानोंकी दवा इन बेचारे वैद्योंके पास कहाँसे आती?

कैसी उत्कण्ठा है। कैसा उन्माद है। कितनी मनोहर लालसा है। भगावन् इसीसे वशीभूत होते हैं, इसीसे वे बिक जाते हैं। मीराने जिन मूल्यपर उनको खरीदा था। मीराने कहा-

माई रे मैं तो गोविंद लीन्यो मोल। कोई कहै सस्तो कोई कहै महँगो लीन्यो तराजू तोल॥
कोई कहै घरमें, कोई कहै वनमें राधाके सँग किलोल। मीराके प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेम के मोल॥

जिसका मन-भ्रमर श्यामसुन्दरके चरणारविन्द मकरन्द-पान में रम जाता है, उसे दूसरी बात कैसे सुहाती है। जिसने एक बार उनकी अनूप रूपराशिका स्वप्नमें भी दर्शन कर लिया, जिसके हृदयमें उस पुनीत प्रेमका जरा-सा भी अंकुर उत्पन्न हो गया, जिसने उस मधुर प्रेमसुधाका भूलसे भी रसास्वादन कर लिया, वह कभी इस जगत्के भोगोंकी ओर नहीं देख सकता।

नवयुवती राजपुत्री एवं राजवधू मीराने भी इसी प्रेमरसका पालन करनेके कारण द्वापरकी गोपरमणियोंकी भाँति अपना सर्वस्व उस विश्व-विमोहन मोहनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। संसारका कोई भी प्रलोभन या भय उसे विचलित नहीं कर सका। मीरा अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्‌गद् कण्ठ होकर रणछोड़दासजी से प्रार्थना करने लगी-

मीराको प्रभु साँची दासी बनाओ। झूठे धंधोंसे मेरा फंदा छुड़ाओ॥
लूटे ही लेत विवेकका डेरा। बुधि बल यदपि करूँ बहुतेरा॥
हाय। राम नहिं कछु बस मेरा। मरती दिवस प्रभु धाओ धाओ॥
धर्म उपदेश नित ही सुनती हूँ। मन कुचालसे बहु डरती हूँ॥
सदा साधु सेवा करती हूँ। सुमिरण ध्यानमें चित धरती हूँ॥
भक्ति मार्ग दासीको दिखओ। मीराको प्रभु साँची दासी बनाओ॥

विवाहके बाद इस प्रकार भक्तिके प्रवाहमें दस वर्ष बीत गये। संवत् १५८३ में कुमार भोजराजका देहान्त हो गया। महाराणा साँगाजी भी परलोकवासी हो गये।

राजगद्दीपर मीरको दूसरे देवर विक्रमाजीत आसीन हुए। मीरा भगवत्प्रेमके कारण वैधव्यके दु:खसे दु:खित नहीं हुई। साधु-

महात्माओंका संग बढ़ता गया, मीकी भक्तिका प्रवाह उत्तरोत्तर जोरसे बहने लगा। राणा विक्रमाजीतको मीराका रहन-सहन, बिना किसी रुकावटके साधु-वैष्णवोंका महलमें आना-जाना और चौबीसों घंटे कीर्तन होना बहुत अखरने लगा। उन्होंने मीराको समझानेका प्रयत्न किया। चम्पा और चमेली नामकी दो दासियाँ इसी हेतु मीराके पास रखी गयीं। राणाकी बहन ऊदाबाई भी मीराको समझाती रही; परंतु मीरा अपने मार्गसे जरा भी विचलित नहीं हुई। मीराने समझानेवाली सखियोंसे पहले तो नम्रतापूर्वक अपना संकल्प सुनाया, अन्तमें मीराने स्पष्ट कह दिया-

बरजी मैं काहू की न रहूँ। सुनो री सखी तुम चेतन हो के मन की बात कहूँ।।
साधु संगत कर हरि सुख लेऊँ जग सूँ मैं दूर रहूँ। तन धन मेरो सबही जाओ भक्त मेरो सीस लहूँ।।
मन मेरो लाग्यो सुमरण सेती सब का बोल सहूँ। मीरा के प्रभु गिरधरनागर सतगुरु-शरण गहूँ।।

सखियोंने कहा- मीराजी। आप भगवान्से प्रेम करती हैं तो करें, इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं; परंतु कुलकी लाज छोड़कर दिन-रात साधुओंकी मण्डलीमें रहना और नाचना-गाना उचित नहीं। इससे महाराणा अप्रसन्न हैं। मीराने कहा-

सीसोधियो रुठ्यो तो म्हारो काँई कर लेसी, म्हें तो गोविंद गुण गास्यां हो भाई।।
राणाजी रूठ्यो ता वाँरो देश रक्षासी, हरि रुठ्याँ कठे जास्यां हो माई।।
लोक लाजकी काज न मानाँ, निरभै निशान हो माई।।
रामनाम की झाँ चलावा भवसागर तिर जावाँ हो माई।।
मीरा शरण सबल गिरधरकी, चरणकमल लपटास्याँ हो माई।।

कैसा अटल निश्चय है। कितना अचल विश्वास है। कितनी निभयता है। कैसा अद्भुत त्याग है। ऊदा और दासियाँ आयी थीं समझानेको, परंतु मीराकी शुद्ध प्रेमाभक्तिको देखकर उनका चित्त भी उसी ओर लग गया। वे भी मीराके इस गहरे प्रेम-रंगमें रँग गयी। अन्तमें राणाने चरणामृतके नामसे मीराके पास विषका प्याला मेजा। चरणामृतका नाम सुनते ही मीरा बड़े प्रेमसे उसे पी गयी। भगवान्ने अपना विरद सँभाला, विष अमृत हो गया, मीराका बाल भी बाँका नहीं हुआ। बलिहार है। भगवत्कृपासे क्या नहीं हो सकता? मीराने प्रेममें मग्न होकर गाया-

राणाजी जहर दियो मैं जानी। जिन हरि मेरो नाम निबेर्यो, छर्यो दूध अरू पानी।।
जबलग कंचन कसियत नाहीं, होत न बाहर जानी। अपने कुलको परदो करियो, मैं अबला वीरानी।।
श्वपच भक्त वारों तन मनते, हौं हरि हाथ बिकानी। मीरा प्रभु गिरधर भजिनेको संत चरण लिपटानौ।।

मीरा नाचने लगी- **पग बाँध घुँघरू मीरा नाची रे।**

दासियोंने जाकर यह समाचार राणाजीको सुनाया। वे तो दंग रह गये कि कलियुगमें यह दूसरा प्रह्लाद कहाँसे आ गया। मीराके आठों पहर भजन-कीर्तनमें बीतने लगे। नींद-भूखका कोई पता नहीं। शरीरकी सुधि नहीं। वह दिनभर रोती और हरिकीर्तन किया करती। मीरा रातको मन्दिरका पट बंद करके भगवान्के आगे उन्मत्त होकर नाचती। मानो भगवान प्रत्यक्ष प्रकट होकर मीराके साथ बातचीत करते हों। महलोंमें तरह-तरहकी चर्चा होने लगी। सखियोंने कहा- मीरा। तुम युवती स्त्रभ हो, दिनभर किसकी बाट देखती हो, किसके लिये यों क्षण-क्षणमें सिसक-सिसककर रोया करती हो?

दासियोंने समझाया बाईजी। यह सारी बात तो ठीक है परंतु इस तरह करनेसे आपका कुल लज्जित होता है। मीराने कहा- क्या करूँ, मेरे वशकी बात नहीं है।

आली , मेरे नयनन जान पड़ी। हृदय बसी वह माधुरी मूरति उर बिच आन अड़ी।।

इकटक पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी। मीरा प्रभुके हाथ बिकानौ लोग कहैं बिगड़ी।।

कितना पवित्र भाव है। परंतु झाकी जेती बुद्धि है। तेती कहत बनाय। के अनुसार लोगोंने कुछ-का-कुछ बना दिया। मनुष्य प्राय: अपने ही मनके पापका दूसरेपर आरोप किया करता है। किसीने जाकर राणाजीके कान भर दिये। उन्हें समझा यि कि मीराका तो चरित्र भ्रष्ट हो गया है। दिनभर तो वह विरहिणीकी तरह रोया करती है और रातको आधी रातके समय उसके महलसे किसी दूसरे पुरुषका शब्द सुनायी देता है। हो न हो, कुछ-न-कुछ दालमें काला अवश्य ही है।

राणाको यह बात सुनकर बड़ा क्रोध आया। उसी दिन वे आधी रातके समय नंगी तलवार हाथमें लेकर मीराके महलमें गये। किवाड़ बंद थे। राणाको भी भीतरसे किसी पुरुषका शब्द सुनायी पड़ा। नहीं कह सकते कि यह राणाके दृढ़ संकल्पका फल था या भगवान्‌की लीला थी। राणाने अकस्मात् किवाड़ खुलवाये। देखते हैं तो मीरा प्रेम-समाधिमें बैठी है। दूसरा कोई नहीं है। राणाने मीराको चेत कराकर पूछा- बताओ। तुम्हारे पास दूसरा कौन था? मीराने झटसे उत्तर दिया मेरे छैलछबीले गिरधरलालजीके सिवा और कौन होता? जगत्‌में दूसरा कोई हो तो आवे। राणा इन वचनोंका मर्म क्यों समझने लगे? उन्होंने बड़ी सावधानीसे सारे महलमें खोज की, परंतु कहीं कोई नहीं दीख पड़ा। तब वे लज्जित होकर लौटने लगे। मीराने पद गाया-

राणाजी मैं साँवरे रँग राची। सज सिणगार पद बाँध घूँघरू, लोक लाज तजि नाची।।

गई कुमति कहि साधुकी संगति, भक्ति रूप भइ साँची। गाय गाय हरिके गुण निशिदिन, काल ग्यालसे बाँची।।

उन बिनु सब जग खारो लागत, और बात सब काँची मीरा के प्रभु गिरधरनागर, भक्ति रसीली जाँची।।

राणीके विलासविभ्रमरत, मोहावृत मलिन मनपर मीराकी अमृत वाणीका कोई असर नहीं हुआ। वे वापस लौट गये। मीरा उसी तरह लोकलाज-कुलकान को बहाकर बेधड़क हरिकीर्तन करने लगी। मीराके पदोंकी प्रशंसा सुनकर एक बार तानसेनको साथ लेकर बादशाह अकबर वैष्णवके वेषमें मीराके पास आये थे और मीराकी भक्तिका अद्भुत प्रभाव देखकर रणछोड़जीके लिये एक अमूल्य हार देकर लौट गये थे। इससे भी लोगोंमें बड़ी चर्चा फैली। राणाने क्रुद्ध होकर मीराका अस्तित्व मिटा देनेके लिये एक पिटारीमें काली नागिनको बंद करके शालग्रामजीकी मूर्तिके नामसे उसके पास भेजा। शालग्रामका नाम सुनते ही मीराके नेत्र डबडबा आये। उसने बड़े उत्साहसे पिटारी खोली; देखती है तो सचमुच उसमें श्रीशालग्रामजीकी एक सुन्दर मूर्ति और एक मनोहर पुष्पमाला है। मीरा प्रभुके दर्शन कर नाचने लगी-

मीरा मगन नई हरि के गुण गाय।।

साँप पिटारा राणा भोज्या, मीरा हाथ दया जाय। न्हाय धोय जब देखन लागो, सालिगराम गई पाय।।

मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय। भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।।

राणाजीने और भी अनेक उपायोंसे उसे डिगाना चाहा, परंतु मीरा किसी तरह भी नहीं डिगी। जब राणा बहुत सताने लगे, तब मीराने गोस्वामी तुलसीदासजीको एक पत्र लिखा-

स्वस्ति श्री तुलसी गुण-भूषण दूषण-हरण गोसाँई। बारहिं बार प्रणाम करूँ अब हरहु शोक समुदाई।।

सो तो अब छूटत नहिं क्यों लगी लगन बरियाई। बालपनेमें मीरा कीन्हीं गिरधरलाल भिताई।।

मेरे मात तात सब तुम हो हरिभक्तन सुखदाई मोकों कहा उचित करिबो अब सो लिखिये समझाई।।

गोस्वामीजी महाराजने उत्तरमें यह प्रसिद्ध पद लिख भेजा- **जाके प्रिय न राम वैदेही।**

तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।।

नातो नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं । अंजन कहा आँखि जेहि फूटैं बहुतक कहौं कहाँ लौं ।।

तुलसी सोइ सब भाँति परम हित पूज्य प्रान तें प्यारो । जाते होइ सनेह रामपद एतो मतो हमारो ।।

इस पत्रको पाकर मीराने घर छोड़कर वृन्दावन जानेका निश्चय कर लिया । राणाजीको तो इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु ऊदाजी और मीराकी अन्यान्य प्रेमिका सखियोंको बड़ा दु:ख हुआ । उन्होंने मीराको रोकना चाहा, परंतु मीराने किसीकी कुछ भी न सुनी । वह झटपट महलसे निकलकर वृन्दावनकी ओर चल पड़ी । प्रीतमकी खोजमें जानेवाले कभी पीछेकी ओर नहीं देखा करते । मीरा भी आज उस परमप्यारे श्यामसुन्दरकी खोजमें उन्मादिनी होकर घर छोड़ रही है । धन्य है । मीरा वृन्दावन पहुँची और वहाँ श्यामसुन्दरके प्रत्यक्ष दर्शनके लिये विरहके गीत गाती कुंज कुंजमें भटकने लगी । जो उसे देखता, वही भक्तिरससे भीग जाता था ।

प्रेमरसमें छकी हुई मीरा यों विरहके गीत गाती फिरती । जब भक्त भगवानके लिये व्याकुल हो जाते हैं, तब भगवान भी उनसे मिलनेके लिये वैसे ही व्याकुल हो उठते हैं। भक्त भगवानको बाध्य कर देते हैं। मीराके निकट बाध्य होकर भगवान्‌को आना पड़ा । उस मनोहर छविको निरखकर मीराका मन मोहित हो गया । वह नाच-नाचकर कीर्तन करने लगी ।

आजु मैं देख्यों गिरधारी । सुन्दर बदन मदनकी सोभा चितवन अनियारी ।।

बजावत वंशी कुंजनमें । गावत ताल तरंग रंग ध्वनि नचत ग्वाल बनमें ।।

माधुरी मूरति वह प्यारी । बसी रहै निसिदिन हिरदै बिच टरे नहीं टारी ।।

वाहि पर तन मन हैं वारी । वह मूरति मोहिनी निहारत लोक लाज डारी ।।

तुलसी वन कुंजन संचारी । गिरधर लाल नवल नटनागर मीरा बलिहारी ।।

उस रूपराशिको देखकर किसका चित्त उन्मत्त नहीं होता ? जो उसे देख पाया, वही पागल हो गया । मीरा पागलकी तरह चारों ओर उसकी मधुर छविका दर्शन करती हुई गाती फिरती थी ।

एक बार मीरा वृन्दावनमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके शिष्य परम भक्त जीवगोस्वामीजीका दर्शन करनेके लिये गयी । गुसाँईजीने भीतरसे कहला भेजा- हम तो स्त्रियोंसे नहीं मिलते । मीराने इसपर उत्तर दिया- महाराज । सुना आजतक तो वृन्दावनमें पुरुष एक श्रीनन्दनन्दन ही थे, और सभी स्त्रियाँ ही थीं, पर आज आप भी पुरुष प्रकट हुए हैं । मीराका रहस्यमय उत्तर सुनकर जीवजी महाराज नंगे पैरों बाहर आकर बड़े प्रेमसे मीरासे मिले ।

मीराके कई पदोंसे पता लगता है कि वे भक्तप्रवर रैदासजीकी चेली थीं, परंतु एक पदसे यह भी प्रतीत होता है कि वे श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम्प्रदायकी वैष्णव-दासी थीं और कुछ लोग उन्हें वल्लभ-सम्प्रदायमें दीक्षित बतलाते हैं ।

अब तो हरी नाम लौ लागी । सब जगको यह माखन चोरा, नाम धर्‍यो बैरागी ।।

कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी । मूँड मुँडाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी ।।

मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाको पाँव । श्याम किशोर भये नव गौरा, चैतन्य ताको नाँव ।।

पीताम्बरको भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै । गौर-कृष्णकी दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै ।।

कुछ कालतक वृन्दावनमें निवास कर मीरा द्वारकाजी चली गयी और वहाँ रणछोड़ भगवान्‌के दर्शन और भजनमें अपना समय बिताने लगी । कहते हैं, एक बार चित्तौड़से राणाजी उसे वापस लानेके लिये द्वारकाजी गये थे । मीराके चले जानेके

बाद चित्तौड़में बड़े उपद्रव होने लगे थे। लोगोंने राणाको समझाया कि आपने मीरा-सरीखी भगवत्-प्रेमिकाका तिरस्कार किया है, उसीका यह फल है। इसीलिये राणा मीरासे क्षमायाचनाकर उसे लौटाकर ले जाना चाहते थे, परंतु मीराने किसी तरह भी जाना स्वीकार नहीं किया।

मीरा श्रीद्वारकाधीशजीके मन्दिरमें आकर प्रेममें उन्मत्त होकर कीर्तन करने लगी-

सजन सुध ज्यों जानो त्यों लीजै। तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे॥

दिन नहिं भूख रैन नहिं निद्रा यों तन पलपल छीजे। मीरा कह प्रभु गिरधर नागर मिलि बिछुरन नहिं दीजें॥

यों कहकर मीरा नाचने लगी और अन्तमें भगवान् रणछोड़जीकी मूर्तिमें समा गयी॥

नृत्यत नूपुर बाँधिके गावत लै कर तार। देखत ही हरिमें मिली तृण सम गनि संसार॥

मरीराको निज लीन किये नागर नन्दकिशोर। जग प्रतीत हित नाथ मुख रह्यो चूनरी छोर॥

कहा जाता है कि संवत् १६३० के लगभग मीराका शरीर भगवान्में लीन हुआ था। मीराके भजन प्रसिद्ध है। जो उन्हें गाता और सुनता है, वही प्रेममें मत्त हो जाता है। मीराने अवतार लेकर भारतवर्ष, हिंदू-जाति और नारी-कुलको पावन और धन्य कर दिया।

मीरा का शैशव- मीराबाई भारत के प्रांत राजस्थान की नारी है। मारवाड़ प्रदेश जो अपने वासियोंकी शूरता, उदारता, सरलता और भक्तिके लिये प्रसिद्ध है। वहाँपर राठौड़ राजपूतोंका शासन रहा है। मीराबाई मेवाड़ मेड़ता की है। राजपुत वंश में महाराणा लाखाजी का विवाह मारवाड़ की राजकुमारी हंसादेवी से हुआ। उनके दो पुत्र हुए ज्येष्ठ पुत्र चूड़ाजी और छोटे कुँवर मोकलदेव। चूड़ाने राज्य ग्रहण नहीं किया तो मोकलदेव को चित्तौड़का राणा बनाया। सिसौधियोंका राज्य सिंहासन पर राठौडों के अधिकार के लिये षडयंत्र रचाये जाने लगा और राठौड़ोंका रणमल युद्धमें मारा गया उनका एक पुत्र जोधाजी मारवाड़ चला गया। जोधाजी ने सम्वत १५१५ में जोधपुर नगर बसाया। जोधाजी के चतुर्थ पुत्र दूदाजी जिन्होंने मेड़ता को राजधानी बनायी और नये नगर का निर्माण किया। उन्होंने राजमहल, दूदासर नामक सरोवर और चारभुजानाथ का भव्य मन्दिर बनवाये। चर्तुभुजनाथ उनके इष्ट थे। इनके पाँचों पुत्रों में ज्येष्ठ वीरमदेव थे जिनका जन्म संवत १५३४ में हुआ और छोटे पुत्र का नाम रत्नसिंह था। मीरा जैसी साध्वी और प्रभु की अनन्य भक्त इन्हीं रतनसिंह की पुत्री थी। दूदाजीराव से मेड़तिया शाखा चली। राजपूतोंमें मेड़तिया राठौड़ वीरता में सानी नहीं रखते थे।

दूदाजी मीरा के दादाजी थे जो मेड़ता के शासक थे और दूदाजी के मृत्यु के पश्चात् वीरमदेव उनके ज्येष्ठ पुत्र गद्दीपर आसीन हुए। महाराणा साँगाकी बहिन और महाराणा रायमलकी पुत्री गौरज्या वीरमदेव की पत्नी थी। वीरमदेव मीराबाई के ताऊ थे। दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रतनसिंह मीराबाई के पिता थे। मेड़तिया में राठौड़ परिवार से एक-से-एक बढ़कर वीर पुरुष हुए। रतनसिंह जी को कुड़की बाजोली आदि बारह गाँव की जागीर प्राप्त हुई। रतनसिंह विशेषकर कुड़की में ही रहा करते थे। लोगों की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। इनका विवाह झाला राजपूत सुरतानसिंह की कन्या वीरकुंवरी से हुआ। रतनसिंह की धर्मपत्नी बड़ी सुशीला, साध्वी तथा भक्ति परायणा थी। इनके जब गर्भ रहा तब दूदाजी ने अपने राजपुरोहित को कुड़की भेज दिया। उनकी इच्छानुसार पुरोहित राजमहल में नित्य श्रीमद्भागवत की कथा सुनाते, थोड़ी देर भजन-कीर्तन भी होता। राजवधू वीरकुंवरी प्रेमपूर्वक एकाग्रचित्त से कथा-भजन सुनती और इस सत्संग का पूर्ण लाभ लेती। इसप्रकार समय बीतने पर एक दिन मंगल मुहूर्त में बालिका ने जन्म लिया। क्षणभर में ये शुभ समाचार सर्वत्र फैल गये। राजपुत्र के समान इस राजकुमारी का जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। चारों ओर वाद्यध्वनि होने लगी। नगर भर में मंगलाचार होने लगे। जन्म के समय

बालिका के अपूर्व तेजोमय मुखमंडल को देखकर उसका नाम मिहिरा बाई -मीराबाई (मिहिर=सूर्य) रक्खा गया। राजज्योतिषी द्वारा पुत्री की जन्म कुंडली में पड़े अपूर्व ग्रहों और लक्षणों को सुनकर माता-पिता के आनन्द का पार नहीं रहा।

मीराका जन्म संवत् १५६१ (ई. १५०४) में हुआ। मीराका जन्म और पालन-पोषण मेड़तामें हुआ। राजघरानोंके रिवाजके अनुसार मीराबाईको अपने ससुर महाराणा साँगा (संग्रामसिंह) मुँह दिखाई के उपल्यमें पुर और मांडल परगनेकी भूमि मिली थी। इसमें से उन्होंने दो हजार कृषि भूमि अपने मायकेसे साथ आये हुए गजाधर जोशीको जीवन निर्वाहके लिये दी। मीराबाई को भी मेड़तणीजी कहा जाता है। उनके भजनोंमें उनका नाम इसीप्रकार आता है और प्रसिद्ध हुआ। राजपूत परम्पराके अनुसार किसी भी राजकन्याके विवाहके पश्चात् उसके साथ उसके पीहरसे नौकर-चाकरोंके परिवार, राजपूत परिवार, सैनिक, गायें-भैंसे, घोड़े, हाथी और इनसे सम्बन्धित सम्पूर्ण लवाजमा आता हैं। ससुरालमें बहूको जो महल आवासके लिये दिया जाता है, उसके दरवाजेपर पीहरवालोंका ही पहरा रहता है। उस महलमें ससुरालसे प्राप्त कुछ दास-दासी भी रहते हैं अन्य सभी सेवक मायके के ही रहते हैं। इनका भरण पोषण बहूको मिली जागीरसे होता है।

मीराबाई की माँ रतनसिंहजीकी पत्नी श्रीमती झालाबाई जिनका नाम वीर कुँवरीजी था। मीराबाई के जन्मकुंडली पर राजपुरोहित ने बताया यह बालिका शान्त, सुशिला, बुद्धिमती, ऐश्वर्यशालिनी, यशस्विनी, धर्मानुरागिणी, भक्तिमती, योनिगी, विरागिनी होगी। यह भ्रातृ-भगिनीसे रहित, सुख-दु:खसे उपराम, सांसारिक सुख रहित, मायका और श्वसुर के कुलको यश प्रदान करेगी। अपना माता-पिता का नाम अमर करेगी। मानव जीनका चरम फल भगवत्साक्षात्कार प्राप्त करेगी। इसकी मृत्यु अकस्मात और अनोखी होगी। दूदाजीने कहा- हमारे घर भक्तिका सूर्य उदय हुआ है अत: इस बालिकाका नाम मिहिरा रखा गया। वही नाम अंत में मीरा कहलाया। मीरा का लालन-पालन दूदाजी की देखरेख में होने लगा। दूदाजी के महलमें संत महात्मा आते थे और भागवत् कथायें होती थी। उस समय मीरा की माँ भागवत कथाओं मे रुची लेती थी और मीरा उस समय गर्भ में थी। इन कथाओं का संतान पर बहुत प्रभाव पड़ता है। मीरा जन्मते ही भगवान की भक्त बन गई और जब बालिका थी तो एकान्त में भगवान कृष्णसे बातें करती थी। उसने अपने बाल्यावस्था में ही भजन, कीर्तन सीख लिये। एकबार मीराके राजमहल में वृन्दावन से एक सन्त आये थे। जब मीरा की आयु लगभग चार वर्ष की थी। मीरा ने संत के चरणोंपर सीर रखकर प्रणाम किया। संत ने उसकी अंजली में प्रसाद की भाँति कृष्णकी प्रतिमा दी और गद्‌गद कंठ से आशीर्वाद दिया भक्ति महारानी अपने पुत्र ज्ञान-वैराग्य सहित तुम्हारे हृदयमें निवास करें, प्रभु सदा तुम्हारे अनुकूल रहें। मीरा बचपन से ही ठाकुर सेवामें इतनी तल्लीन थी की वह समयपर खाना-पीना छोड़कर ठाकुर की सेवा करती थी। मीराबाई को घर-गृहस्थी के कार्य में कोई रूचि नहीं थी।

मीराबाई के लिये कहते हैं कि वह या तो राधा, ललिता, चंपकलता अथवा किसी गोपी का अवतार थी। वास्तव में मीराबाई पूर्व जन्म में क्या थी यह तो वही या उसके प्यारे श्यामसुन्दर ही जानते हैं। परन्तु यह तो निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि मीराबाई का सम्बन्ध द्वापर युग की गोपांगना से अवश्य है।

(पूर्व जन्म की मीराँ) किसी बरसाने की गोपी का विवाह नंदगाँव के कृष्ण सखा किसी गोप से हुआ था। वह गोप जब गौना लेने बरसाने गया तब उस गोपी की माता ने उपदेश दिया कि सावधान रहना बेटी, नंदगाँव में कृष्ण कन्हैया बड़ा ही नटखट चंचल है। उसका यह प्रभाव है कि उसे एक बार देख लेने के बाद किसी कार्य में जी नहीं लगता और मन उसके वश में हो जाता है, इसलिये उससे बचे रहना। उसके सन्मुख न कभी जाना, न कभी घूंघट ही खोलना। मार्ग में संकेत नामक स्थान और प्रेम सरोवर के निकलने के बाद नंदगाँव की सीमा पर जब उनका रथ आया तब सहसा श्रीकृष्ण कन्हैया

प्रकट होकर बोले, क्यों सखा भाभी को ले आया? भाभी का नेक मुंह तो दिखला दे। सखा ने कहा- लाला कन्हैया तेरे से क्या परदा, रथ को परदो उठाकर तू ही देख ले। तब श्रीकृष्ण रथ पर चढ़ गये। बाहर से कृष्ण की बातें सुनकर माता की शिक्षा के अनुसार पहले से ही सावधान होकर वह गोपी घूंघट खींचकर बैठी थी। कृष्ण ने उसे प्रथमवार मुखावलोकन की प्रथानुसार कुछ भेंट देने के लिये कहकर मुख देखने की इच्छा प्रकट की; परन्तु वह टस से मस न हुई। इस परयह कहते हुये कि तू कहा बतावेगी तू ही मेरो मूंडो देखेगी रथ से कूद पड़े। कुछ दिनों बाद इन्द्र ने कोप कर ब्रज को बहाने के हेतु प्रलय ढहाया तब श्रीकृष्ण ने गिरिराज को अपनी अंगुली पर उठाया और अत्यन्त व्याकुल होकर गोप, गोपी, गौवें आदि सबों ने दौड़-दौड़ कर श्रीगिरिराज की छाया में आश्रय लिया तब उस बरसाने वाली गोपी को भी प्राण बचाने के लिये बाध्य होकर वहाँ जाना ही पड़ा। आपद् काले मर्यादा नास्ति के अनुसार ऐसे भयंकर प्रसंग में मर्यादा का पालन स्वाभाविक ही नहीं हो पाता; इसलिये अन्यान्य गोप बधुओं की भाँति उस बरसानेवाली गोपी की भी लज्जा न रह सकी और वह माता की शिक्षा भूल गई और भयभीत हरिणी की भाँति उसकी आँखें इधर उधर देखती हुई कृष्ण पर जा लगी और सहज ही उसके मन में विचार परम्परा होने लगी- कैसा सुन्दर मुख कमल, श्याम स्वरूप, पीतांबर धारी, घुंघराले बाल, मोर मुकुट, हाथ में बंशी, सुकुमार होते हुए भी वज्र समान गिरिराज को अपनी नन्ही-नन्ही सी अंगुली पर उठाये कन्हैया आज ब्रज की रक्षा कर रहा है। कैसा पुरुषार्थ है। अपने प्राण बचाने को ऋषि मुनि आबाल वृद्ध नर-नारी और पशु-पक्षी आदि भी आज जिसका मुँह ताक रहे हैं, क्या उसी का मुँह देखने के लिये माँ ने निषेध किया था। अहो, कैसी आत्मघातिनी शिक्षा। इतने दिन व्यर्थ ही गये मेरे जो इनके दर्शन नहीं किये। मन में यह भाव आते ही श्यामसुन्दर की ओर टकटकी लगी हुई आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी। उसकी आँखे घटनेवाली घटनाओं का चित्रपट देख रही थीं, चतुर्भुज रूप धारी कृष्ण के दिव्य दर्शन हो रहे थे। दो हाथों से बंशी बजा रहे हैं, एक हाथ नंदी बाबा के कंधे पर है और एक हाथ पर पहाड़ उठा रक्खा है। उसे पश्चात्ताप हुआ। रथ पर चढ़कर स्वयं मेरा मुंह देखने के लिये आये हुये इन मनमोहन श्यामसुन्दर गिरधरधारी परम प्रभु की अवहेलना कर मैंने कैसा घोर अपराध किया। गोपी का हृदय उमड़ आया, हाथ जोड़कर रोते-रोते उसने क्षमा मांगते हुये कहा, हे प्रभो। इस अबोधिनी के अपराध को भूल जाओ और इसे अपना कर अपने चरणों में स्थान दो। मेरा सर्वस्व आपके न्यौछावर है। उस गोपी की ओर निहारते हुए श्रीकृष्ण भगवान के नेत्रों में चमक आई और होठोंपर मुसकान छा गई, तब उसे श्री मुखद्वारा शब्दोच्चारण सुनाई दिया- इस शरीर द्वारा तूने मेरा अपमान किया है इसलिये इस देह से तू मुझको प्राप्त नहीं हो सकती, दूसरे किसी जन्म में अवश्य ही तेरी साधना सफल होगी और तू मुझे प्राप्त होगी।

कहते हैं वही गोपी मेड़ते में जन्म लेकर मीराँ बनी क्योंकि पूर्व जन्म में जिस घूंघट व लोकलाज कुल मर्यादा के कारण प्रभु के दिव्य दर्शन व परम लाभ से वंचित रही इसीलिये इस जन्म में घूंघट के प्रति अरुचि व लोकलाज कुलमर्यादा का विरोध आदि के भाव उसके पदों में दृष्टिगत होते हैं। पद के अन्त में गिरधर शब्द अंकित करने का भी मुख्य उद्देश्य यही था कि उसके हृदय में वही गिरिधरधारी की छवि समाई हुई थी।

एक बार रातमें मीराबाई के पिता रतनसिंह और माता झालाबाई आपसमें बात कर रहे थे कि मीराको घर-गृहस्थीके कार्य नहीं आयेंगे तो ससुराल में कैसे निभेगी। बेटीकी जात योग सीखकर क्या करेगी? दासियोंकी भूल कैसे पकड़ेगी? राजनीति नहीं जानेगी तो पतिकी समस्याओं को कैसे समझेगी? शस्त्राभ्यास नहीं करेगी तो अच्छे-बुरे समयमें किसका मुँह ताकेगी? मैं स्वयं सम्भल नहीं पाती औरोंको क्या बताऊंगी? पुत्रीको कहूँ तो कब और कैसे? यह कहते-कहते माँताकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। ज्योतिषी ने तो यह बताया था कि यह कन्या आपके पूरे वंशको यशोज्ज्वल कर देगी। रतनसिंह अपने ही

घरमें अपने भाईयोंके साथ और भाभीयोंके साथ बहुत ही शर्मीले थे और कुछ भी नहीं बोलते थे। रतनसिंह अपनी पत्नी से बोले हमारे राजपूतों का धर्म ही ऐसा कठिन है कि इसमें बाप-बेटे, भाई-भाई कुछ नहीं होते। कर्तव्य, धर्म, स्वामीभकति ही क्षत्रिये सगे-सम्बन्धी हैं। रणसे पूर्व वे गले मिलते हैं और रणमें उनकी तलवारें निकल आती हैं। होठोंपर हँसी लिये एक दूसरेके वारों पैतरोंकी प्रशंसा करते हुए वे भूखे शेर से एक दूसरेपर टूट पड़ते हैं। राठोड़ोंकी तो बात ही क्या। सिर कट जायँ फिर भी तलवारें नहीं रुकती। ऐसा रणरंग चढ़ता है, कि सिरविहीन धड़ न गिरता है न पीछे हटता है। जिस समय कड़खों और रणभेरकी आवाजें कानोंमें पड़ती हैं तो कवचकी कड़ियाँ खड़-खड़ा उठती हैं, भुजाओंमें फड़कन होने लगती है, शरीरके रोमोंके साथ मूँछें भी खड़ी हो फरफराने लगती हैं, हृदयका उत्साह छाती फाड़कर बाहर निकलनेको आतुर हो जाता है। हाथमें लोहेकी साँग हो और गान्धारी घोड़ेकी लगाम हो तो राजपूतके लिये धरती भी छोटी पड़ जाती है। अपनी स्त्री, कर्तव्य-पालन और शरणागतके लिये राजपूत सारी दुनियाको आग लगा सकता है। शेरनी के गर्भसे शेर ही जन्म लेते हैं, गाय, बकरियोंके गर्भसे नहीं। मुझे लगता है नाहरकी बेटीको बकरी या गाय बननेकी शिक्षा दी जा रही है। अन्याय देखकर क्षत्रिय संतान आँख नहीं मींच सकती। पुत्रीका मोह सहा नहीं जाता। लगता है मीराको तो कोई मोह माया भी नहीं है। कुँवरीजी बोली बच्चोंको माँ से कितना मोह होता है। मुझे बालकका स्नेह चाहिये। पास में हो तो लगता है कि बहुत दूर है। कोयलेकी खानमें जब हीरा निपजता है तो वह शान भी इसी तरह मोहमें बिसूरती है। रतनसिंह बोले- झालीजी हम दोनों तो उसे उस जमीन पर लानेके निमित्तमात्र है यह तो कोई महान आत्मा ही है जो अपना प्रारब्ध पूरा करने और जीवोंका कल्याण करने आयी है।

मीरा के ताऊ वीरमदेव को एक पुत्र संवत १५३४ में उत्पन्न हुआ जिसका नाम जयमल रखा गया। मीरा से पहले मीरा को एक भाई हुआ जिसका नाम गोपालसिंह रखा गया और वह दो वर्ष जीवित रहकर चल बसा। जयमल अपनी वीरता तथा भक्ति के कारण जगत्प्रसिद्ध हो गये। दिल्ली के मुगल बादशाह अकबर ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब इन्हीं जयमल को दुर्ग की रक्षा का उत्तरदायित्व सौंपकर राणा उदयसिंह कुम्भलगढ़ की ओर चले गये। उसी युद्ध में जयमल, पत्ता तथा कल्लाजी आदि वीरपुङ्गव ने अपने पराक्रम की पराकाष्ठा करते हुए वीर गति पाई तथा विश्व में अमर यश को प्राप्त हुए।

मीरा के दादाजी दूदाजी मीरा को बहुत लाड़-प्यार करते थे। एक बार मीरा अपने दादा दूदाजी और पिता रतनसिंहजीके साथ डाकोरनाथके दर्शन करने गुजरात में गयी। वहाँ उसकी भेंट योगी श्रीनिवृत्तिनाथसे हुई। श्रीनिवृत्तिनाथने मीरासे योग और संगीत विषयक कुछ प्रश्न पूछे और उनके उत्तर से सन्तुष्ट होकर उन्होंने मीराको अपनी शिष्या रूप में स्वीकार करनेकी स्वीकृति दी। उन्होंने उसके दादा दूदाजी से कहा यह बालिका उच्चकोटिकी भक्त, ज्ञानी, संगीतज्ञ और योगिनी होगी। मीराने निवृत्तिनाथसे पूछा- भगवान सर्वत्र है तो फिर मेड़ता में क्यों नहीं। निवृत्तिनाथने संतोषस्पद उत्तर दिया- भगवान सर्वत्र है। परन्तु कोई-कोई स्थल भगवानकी लीला विशेषके कारण अथवा उनके किसी भक्तके सान्निध्यसे विशेष प्रभावशाली हो जाता है। उनके दर्शन-स्पर्शसे मनकी शुभैषाको बल मिलता है। इसप्रकार साधारणजनोंके लिये वे तीर्थ हो जाते हैं। मीरा ने निवृत्तिनाथसे पूछा- बिना भगावन को देखे कैसे विश्वास हो और विश्वास हुए बिना जबतक उसका अभाव जीवनमें नहीं व्याप्त होता, किसीकी भी रूचि उस ओर क्यों होगी? निवृत्तिनाथ बोले- श्रद्धा और विश्वास भक्तिके माता-पिता हैं, ज्ञान और वैराग्य पुत्र है। बिना विश्वासके उनका जन्म नहीं होता। यह जो चेतन तत्त्व है, वही ईश्वर है। वह निर्गुण-सगुण है। निर्गुण रूपसे वह विश्वमें व्याप्त है। सगुण रूपसे भक्तोंका आनन्दवर्धन करता है। एवं दुष्टोंका संहार और सृष्टिमें मर्यादाका रक्षक करता है। यही सगुण ईश्वर दर्शन देता है। निर्गुण रूपसे अनुभव किया जा सकता है। चेतनता ही ईश्वर है।

मीराने पूछा लेकिन ये नाना देह कहाँसे आते है और कहाँ चले जाते हैं? ये पत्थर, मिट्टी, पवन, पानी, आकाश, सूर्य,

चन्द्र, ऋतुएँ ये छोटे-छोटे बीज इनमें इतना बड़ा वृक्ष उसमें भीतने, पत्र, फूल और फलोंका रंग और बनावट भिन्न-भिन्न वह सब उस बीजमें कैसे कहाँ समाया हुआ था? यह सब क्या है महाराज? सृष्टिके आदि, मध्य और अंतमें केवल एक ही तत्त्व है- चेतन तत्त्व। कहीं भी कुछ भी जड़ नहीं है। इसीलिये यहाँ कुछ भी नष्ट नहीं होता, होता है केवल परिवर्तन। निरन्तर परिवर्तन ही इसका गुण धर्म है। सरकते रहनेके कारण ही इसका नाम संसार है। संसरति इति संसार:। सर्वत्र वही है। जैसे नेत्र स्वयंको नहीं देख सकते पुत्री। उसे स्वयंको देखनेके लिये दर्पण चाहिये, वैसे ही उसे देखनेके लिये भी मन रूपी दर्पणकी शुद्धता चाहिये। इस विषयको जाननेवालोंका संग और भजनका बल चाहिये। मीराने पूछा- क्या महाराज आपने कभी भगवान को देखा है? निवृत्तिनाथ बोले- मैं अपने आपको जान गया हूँ। कर्मोंके संस्कारोंकी विभिन्नताके कारण मनकी रुचियाँ भिन्न होती हैं। उसे जानने-देखनेके लिये अनेक विधियाँ शास्त्रोंमें बतायी हैं जैसे योग, कर्म, ज्ञान और भक्ति। किसी भी विधिसे उसे जाना और पाया जा सकता है। मैं योगी हूँ, मेरी रुचि योगमें हैं। भक्तिमें समर्पण मुख्य हैं कोई उसको योगसे रिझाते हैं, कोई संगीत से, तो कोई भक्ति से रिझाते हैं। मीराने कहा- मैं उसे योगसे जानना चाहती हूँ। मीराने कहा- परिवारवाले कहते हैं भगवान तो एक कल्पना ही है जो संसार पाशसे छुड़ा देती है। जगत्‌की एक कल्पना जगत्‌से बाँधती है और ईश्वरकी कल्पना ईश्वरसे बाँधती है। परिवारवाले कहते हैं मरने के बाद क्या होता है यह किसने जाना है? इसलिये संसारमें रहकर खा-पीकर मौज कर लो, बाकी कौन जाने? निवृत्तिनाथ ने देखा- मीरा की बुद्धि और धारणा शक्ति अलौकिक है। किसी भी गुरुको इसे शिक्षा देते हुए प्रसन्नता होगी, इसलिये मैं इसे योगकी शिक्षा दूँगा। पर इस समय तो मैं पुष्कर जा रहा हूँ लौटते समय मेड़ता में जरूर ठहरूँगा। योग्य शिष्य पाकर गुरु को इतनी प्रसन्नता होती है जितनी सुयोग्य पुत्र पाकर पिता को। सुयोग्य शिष्य के सम्मुख गुरु क्रमश: अपनी विद्याके समस्त द्वार एक-एक करके खोल देते हैं।

मीरा के दादा दूदाजी बहुत सौभाग्यशाली थी। यौवनकालमें वे उद्‌भट योद्धा थे, अन्त:समय में भक्ति बड़ी प्रबल थी। भाग्य और भगवान दोनों ही उनके सानुकूल थे, तभी तो उच्चकोटिके संत महानुभावोंका घर बैठे उन्हें सत्संग और सेवाका अवसर बारबार प्राप्त होता रहा। उन्हें मीरा जैसी भक्तिमती पौत्री और जयमल जैसा प्रचण्ड वीर और परम भक्त पुत्र प्रदान किया, जिन्होंने अपने दादा का नाम इतिहास और भक्त जगत्‌में चिरस्मरणीय बना दिया। मीराका लालन-पालन दूदाजी की देखरेख में होने लगा। चन्द्रमा की कला की भाँति मीरा बढ़ने लगी। उसकी विलक्षणताएं संसार को विदित होने लगीं। उसके सुन्दर रूप की बातें सुनकर मेड़ते के बाहर से भी अनेकों नर-नारी उसके दर्शन को आते थे। उसकी अनुकरण शक्ति, तीव्र बुद्धि और शनै: शनै: विकसित होते हुए विलक्षण गुणों को देख-देख कर राव दूदाजी अपने जीवन को सफल समझते हुए अपनी पौत्री के लिए आशीर्वादात्मक मंगल भावना किया करते। शनै: शनै: भक्त राव दूदाजी के भक्ति भरे संस्कारों का मीराँपर अद्‌भुत प्रभाव पड़ता जा रहा था।

निवृत्तिनाथने सोचा यह तो जन्म योगिनी है। यह तो कोई श्रीकृष्ण से बिछुड़ी हुई व्रजाङ्गना है जो मीराके रूपमें देह धारण किया। मीरा दिनभर कृष्णकी भक्ति में तल्लीन रहती थी। मीरा का चचेरा भाई जयमल युद्ध के अस्त्र-शस्त्र चलाना सीख रहा था। हमेशा यही कल्पना करते रहता था कि कब मुझे युद्ध में जाने के लिये आज्ञा मिले। किसी आततायीने किश्रसी निर्धनकी स्त्रीको अथाव बच्चे छीन लिये हैं, उसके पशु हाँक ले गये हैं, तैय्यार खेतीमें आग लगा दी है सुखी सम्पन्न राज्यपर आक्रमण कर दिया है तो वह सबको मार-भगाकर दीनोंको त्राण देकर, युद्ध में उतर जाता था और कहता था मुझे जो सुख-शान्ति का अनुभव हो रहा है वह कहा नहीं जा सकता। मीरा कहती थी- आततायीयों का दमन करने के लिये प्रभुको अवतार लेना पड़ेगा। प्रभुने हिरण्यकश्यपु, रावण और कंस का दमन करने के लिये अवतार लिया उनका महत्त्व क्या कम वंदनीय है? मीरा को शीघ्र

ही शास्त्रास्त्रों और अश्वचालनकी योग्यता ग्रहण कर ली। उसका अधिक समय राजमहल के कक्ष श्याम कुंजमें कृष्णकी भक्ति और पूजा में बिताने लगी। उसके पश्चात् सुनी और पढ़ी हुई लीलाओंके चिन्तनमें खो जाती।

मीरा जब ५ वर्ष की हुई तब राव दूदाजी अपने साथ रतनसिंह व मीरा आदि को लेकर गुजरात में श्री डाकोरजी की यात्रा को चले। वहाँ नगर के बाहर किसी संत के स्थान पर दर्शन को गये, जहाँ संत की अपनी उपासना की गिरिधर गोपाल की मूर्ति को देखकर मीरा का मन मचल उठा। उसे उस प्रतिमा को देखकर लगा जैसे वह गिरधर गोपाल उसके जन्म-जन्म के साथी हो। वह गिरधर गोपाल को लेने की हठ कर बैठी। दूसरी प्रतिमा मंगवा देने के लिए माता-पिता ने तथा राव दूदाजी ने उसे बहुत ही समझाया पर वह न मानी। संत को जो भी न्यौछावर हो लेकर मूर्ति देनेके लिए समझाया परन्तु वे अपने उपासना के ठाकुरजी भला कैसे देते। मीरा ने अन्न जल त्याग दिया और ठाकुरजी के लिये रोती बिलखती रही। सबके लिए यह एक बड़ी समस्या हो पड़ी। तीन दिन तक मीराँ ने कुछ खाया नहीं। तीसरी रात्रि को संत को स्वप्न में गिरधर गोपाल के दर्शन हुए। उन्होंने कहा- यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो मेरी प्रतिमा उस बच्ची को दे देना जिसने मेरे लिए अन्न जल त्याग रक्खा है। वह मेरी बड़ी भक्त है।

दूसरे ही दिन संत ने राव दूदाजी के डेरे पर जाकर वह प्रतिमा मीराँ के हाथों में दे दी। तभी मीराँ का रोना आनन्द की हँसी में परिणत हुआ। तभी से मीराँ अपने गिरधर गोपाल की नित्य पूजा करती। शनैः शनैः उसका कृष्णानुराग बढ़ने लगा। मेड़ता वापस लौटने के बाद तो उसे अपने गिरिधर गोपाल के लाड़ लड़ाने की पूरी अनुकूलता मिल गई।

श्री डाकोरनाथ के दर्शन तथा वहाँ के सत्संग का प्रभाव मीराँ के बाल मानस पर स्थाई रूप से ऐसा जम गया था कि भविष्य के जीवन प्रसंगों के सम्बन्ध में उसके बनाए कुछ पदों में भी उसकी झलक दिखाई देती है। श्री राधा और गोपी की प्रेमभरी लीला कथाओं को सुनते मीरा को ऐसा अनुभव होने लगा कि वह भी कोई पुर्वजन्म की गोपी अथवा राधा है। वह इसी कल्पना और भावना की सृष्टि में विचरा करती। राव दूदाजी ने मीराँ की पढ़ाई के लिए राज-पुरोहित को नियुक्त किया था। मीराँ की ऐसी कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मरण शक्ति थी कि एक बार जो सुनती और बोलती वह उसे कंठस्थ हो जाता। वह मिट्टी के खिलौने बनाती जिसमें गिरधरगोपाल की प्रतिमा की प्रतिछवि बनाती। चित्रकला में भी उसकी बहुत अधिक रुचि थी। वह भगवान श्यामसुन्दर और अपनी टूटी-फूटी भाषा में वह पद रचना भी बनाकर प्रभु को प्रेम से सुनाती। नित्य नया पद बनाकर प्रभु को अर्पण करने का उसका नियम था।

दूसरे दिन संत के मुख से सब बातें सुनकर और उनके भाव को तथा मीराँ की योग्यता को जान दूदाजी ने मीराँ को संगीत की शिक्षा देने का निश्चय किया। तदनुसार उसे संगीत व योग की भी शिक्षा दी जाने लगी। वह प्रेम से भगवान के मधुर गुणगान करती और उनके आगे भावमय नृत्य करती। उसकी विलक्षण प्रतिभा को देखकर उसे शिक्षा देनेवाले गुरुजन यही समझते कि वह सर्व-विद्या-गुण-कला जन्म से ही सीख कर आई है और वे तो केवल निमित्तमात्र ही थे।

राव दूदाजी के वहाँ, पुष्कर के निकट मेड़ता होने से विचरते हुए संत-महात्मा आया करते। इसलिए प्रायः नित्य सत्संग हुआ करता, जिसका पूर्णरूपेण मीराँ को भी लाभ मिला करता।

मीराकी भक्ति और भजनमें बढ़ती रुचि को देखकर रनिवासमें चिन्ता होने लगी। एक दिन वीरमदेव मीरा के ताऊ उनकी पत्नी गिरिजाजी (राणा सांगा की बहन) अपने पति से बोली- मीरा सात वर्ष की हो गयी है। इसकी सगाई-सम्बन्धी चिंता करनी चाहिए। इसके योग्य वर मेरा भतीजा भोजराज है। मीरा उसी घरके योग्य है। अँधेरे घरका दीपक है। वीरमदेव बोले- मेवाड़की बेटियाँ महारानीका भाग लिखाकर आती हैं। भला हमारी पुत्रियोंका तुम्हारे मायकेसे क्या समता है? गिरिजा ने

कहा- आप हमारे मायकेसे बहुत ईर्ष्या कहते हैं। अगर आपके छोटे भाईकी बेटी मेवाड़की स्वामिनी बन जाय तो? गिरिजा बोली- प्रयत्न करना मेरा काम है मैं करूँगी। मीरा की सगाई मेवाड़के महाराज कुँवर भोजराज से होनेकी चर्चा रनिवास में चलने लगी। मीराने जो सुना तो वह पत्थरकी मूर्तिकी भाँति स्थिर हो गई। मीरा ने तो अपना पति कृष्णको मान रखा था। मीराने अपने दादा दूदाजी से पूछा। दादाजी बोले- सच्चा पति तो मनका ही होता है तनका पति भले कोई बने। मनका पति ही पति है। मीरा अपने दादाजी से बोली- मुझे तन का पति नहीं चाहिए मनका पति ही पर्याप्त है। दादाजी से आश्वासन पाकर मीराके मनको राहत मिली। जैसे मीराके दादा दूदाराव प्रभु भक्ति में तल्लीन थे वैसे मीरा पूरे दिन अपने प्राणाराध्य गिरधर गोपालमें व्यस्त रहती थी और भजन गाती थी।

बिंद्राबन की कुंज गलिन में नाचत नंदकिशोर। मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल चितचोर।।

राजमहल में एक दिन कृष्ण जन्माष्टमी का महोत्सव मनाया गया। वृन्दावन से बाबा बिहारीदास आये थे। मीराने भजन-कीर्तनमें उनका साथ दिया। यहां ताऊ वीरमदेव इस विचार में स्फुरित थे कि मीरा किसी छोटे-मोटे घर वरके योग्य नहीं है सर्वस्व देकर किसी बड़े घर में विवाह करके उसका भविष्य उज्ज्वल बनाया जाए। हमारे घर में उसका जन्म लेना सार्थक हुआ। जन्माष्ट मी के दिन संत बिहारीदासजी की आज्ञा से मीराने पद गाना शुरू किया- **बसो मेरे नैनन में नंदलाल।**

मोहिनी मूरत साँवरी सूरत, नैना बने विशाल। अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजंती माल।।
छुद्र घंटिका कटितट शोभित नूपुर सबद रसाल। मीरा प्रभु संतन सुखदायी, भगत बछल गोपाल।।

बिहारीदासजी सहित दूदाजी आश्चर्य हो प्रसन्न हो उठे और बाबा बिहारीदासजीने कहा एक भजन और सुनाओ बेटी।

सुण लीजो बिनती मोरी मैं सरण गही प्रभु तोरी। तुम तो पतित अनेक उधारे भवसागरसे तारे।
मैं सबका तो नाम न जाणूँ कोई कोई नाम उचारे।।
अंबरीष सुदामा, नामा तुम पहुँचाये निज धामा। ध्रुव जो पाँच बरस के बालक तुम दरस दिये घनश्यामा।।
धना भगत का खेत जमाया कबिरा का बैल चराया। सबरीका झूठा फल खाया तुम काज किये मनभाया।।
सदना और सेना नाई को तुम लिन्हा अपनाई। करमा की खिचड़ी खाई तुम गणिका पार लगाई।।
मीरा प्रभु तुम्हरे रंग राती या जानत सब दुनियाई।।

दादा दूदाराव ने एकाग्र होकर भजन श्रवण किया और प्रसन्नताभरी दृष्टिसे मीराको देखकर कहा- पुत्री आज मेरा जीवन धन्य हो गया। तूने इस मेड़तिया वंशको और अपने पिता-पितृव्योंको अमर कर दिया। अपने पौत्र जयमाल को आशीर्वाद दिया और कहा- इनकी प्रचण्ड वीरता और देशप्रेमको कदाचित् लोग भूल जायेंगे, पर मीरा तेरी भक्ति और तेरा नाम अमर रहेगा। संत बिहारीदासजी ने मीराको आशीर्वाद दिया। मीरा तानपूरा उठाकर गाने लगी और बार बार व्याकुल हो पुकारने लगी - कहां हो मेरे गोविन्द मैं तुम्हें ढूँढ नहीं पा रही हूँ।

आय मिलो मोहिं प्रीतम प्यारे। हमको छोड़ भये क्यूं न्यारे।।
बहुत दिनन सो बाट निहारु। तेरे ऊपर तन मन वारूँ।।
तुम दरसन की मो मन माहीं। आय मिलो किरपा कर साई।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। आय दरस द्यो सुख के सागर।।

संत बिहारीदास ने वृंदावन जानेकी इच्छा प्रकट की। मीरा कृष्णकी ओर देखकर बोली- अपने निजजनों प्रेमीजनोंके बीच मुझे भी निवास दो गोपाल। तुम्हारी चर्चा और उनके अनुभव सुननेसे प्राणोंकी ज्वाला ठंडी होती है। मुझे यहाँ अच्छा

नहीं लगता। संतजी मुझे भी अपने साथ लेते चलो। संतजी को बोली बाबा, आप पधार रहे हैं? संत बिहारीदास बोले- मेरा शरीर अब वृद्ध हो गया। अब अंतिम समयतक वृन्दावनमें श्रीराधामाधवके चरणोंमें ही रहना चाहता हूँ। जब मीराने उनके साथ चलनेका आग्रह किया। तब संत बोले- हम सब स्वतंत्र नहीं हैं पुत्री। वे जब जहाँ जैसे रखना चाहें उनकी इच्छासे ही चलना पड़ता है। मुझे क्या मालूम था कि मैं यहाँ ऐसा रत्न पाऊंगा और इतने समय तक रहूँगा। तुम्हारी संगीत-शिक्षामें मैं तो निमित्तमात्र रहा, तुम्हारी बुद्धि, श्रद्धा, लगन और भक्तिने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। तुम्हारी सरलता, भोलापन और विनयने हृदयके वात्सल्यपर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। संतजी ने आशीर्वाद दिया और कहा- चिंता मत करो पुत्री। तुम्हारे गिरधर गोपाल तुम्हारे रक्षक है। मीरा अब नौ वर्ष की हो गयी। मीरा संत बिहारीजी से बोली- बाबा आप वृंदावन जा रहे है। गिरधर गोपाल के लिये मेरा यह एक संदेश ले जाएंगे। बिहारीदास बोले- तुम्हारा संदेश-वाहक होकर तो मैं कृतार्थ ही हो जाऊंगा। मीराने एक पाती लिखीं- **गोविन्द कबहुँ मिलै पिया मेरा।**

चरण कँवल को हँस हँस देखूँ, राखूँ नैणा नेरा। निरखण को मोहि चाव घणैरो, कब देखूँ मुख तेरा।।
ब्याकुल प्राण धरत नहीं धीरज, मिल तू मीत सबेरा। मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताप तपन बहु तेरा।।

मीराने गिरधर गोपाल को प्रणाम किया। अब संत चलने लगे। गुरुपौर्णिमा का दिन है। शास्त्र कहते हैं कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। गुरुही परमतत्त्वका दाता है। मीराने पूछा- मेरे गुरु कौन है?

तृषित यदि सरोवरके समीप नहीं पहुँच पाता तो सरोवर ही प्यासेके समीप पहुँच जाता है। दादा दूदाराव बोले- तुम अपने गिरधर से प्रार्थना करो वे तुम्हारा उचित प्रबंध कर देंगे। गुरु शिक्षा देते हैं, जहाँ से भी शिक्षा मिले ले लो। भगवानके नाममें भगवान्से भी अधिक शक्ति है और मीरा गाने लगी-

म्हाँरा सतगुरु बेगा आओ जी। म्हाँरे सुख री सीर बहाजो जी।।
तुम बिछुड्या दु:ख पाऊँ जी। म्हें मन माहीं मुरझाऊँ जी।।
म्हें कोयल ज्यूँ कुरलाऊँ जी। कुछ बाहर नहीं कह पाऊँ जी।।
मोहि बाघण बिरह सतावै जी। कई कहिया पार न पावै जी।।
ज्यूँ जल त्यागा मीना जी। तुम दरसण बिन खीना जी।।
ज्यूँ चकवी रैण न भावे जी। वा ऊगो भाण सुहावै जी।।
ऊँ दिन कदै करोला जी। म्हाँरे आँगण पाँव धरोला जी।।
अरज करै मीरा दासी जी। गुरु पद रज की प्यासी जी।।

लोग कहते हैं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम। आज महल में जो संत पधारेंगे मैं उनको ही गुरु मान लूँगी। इतने में ही माता झालीजी आ गयी और बोली- मीरा, क्या भजन गा-गा करके ही आयु पूरी करनी है। तेरी आयुकी कन्याएँ दो-दो, तीन-तीन बार ससुराल हो आयी है। जहाँ विवाह होगा, वह लोग क्या तुझे भजन करनेके लिये ले जायेंगे?

मीरा बोली- जिसका ससुराल और पीहर एक ही ठौर हो उसे चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है? यही मेरा पीहर है और यही श्यामकुंज में मेरा ससुराल। माँ ने कहा- पुत्री तुझे कब समझ में आयेगी। कुछ तो जगत् व्यवहार सीख। बड़े-बड़े घरोंमें तुम्हारे सम्बन्धकी चर्चा चल रहजी है। इधर रनिवासमें हमलोगोंका चिंताके मारे बुरा हाल है। क्या कर रही है। रात-दिन गाना बजाना, पूजा-पाठ और रोना-धोना इनसे संसार नहीं चलता। ससुरालमें सास, ननदका मन रखना पड़ता है, पतिको परमेश्वर मानकर उसकी सेवा करनी होती है। सारा परिवार तुम्हारे लिये चिंतित है। मीरा बोली- आप लोगोंका व्यवहार देखकर

मैं समझ गई कि पति परमेश्वर होता है। पर मेरे तो ये गिरधर गोपाल ही पति है। सारे दिन इन्हींकी सेवामे लगे रहती हूँ। माँ बोली- अरे पागल पुत्री, पीतलकी मूर्ति भी क्या किसीका पति हो सकती है? मैं तो तुझसे दु:खी हो गई हूं। भगवानने मुझे एक बेटी दी वह भी आधी पागल। मीरा बोली- माँ आप क्यों अपना जी जलाती हैं? सब अपना अपना भाग्य लिखाकर लाते हैं। मेरे भाग्यमें जो पागल होना ही लिखा है तो आप इसे कैसे मिटा पायेंगी। माँ बोली- तेरे बाबाने ही तुझे सिर चढ़ाया है। रनिवासमें सब मुझे दोषी ठहराते हैं कि बेटीको समझाती नहीं। मीरा बोली- नारी का तो सच्चा गुरु पति होता है। झालीजी मीरा को गोद में भरकर बोली- जिस विधाता ने तुम्हें इतना सुन्दर रूप दिया उसने ऐसी पागल बुद्धि तुम्हें क्यों दी। जो यह सजीव मनुष्य और पीतलकी मूर्ति में अंतर भी नहीं समझती। मीरा बोली- मैंने तो आज तक सुना जाना है कि मनुष्य शरीर भगवत्प्राप्तिके लिये मिलता है, इसे व्यर्थ कार्योंमें लगा देना मूर्खता है। मीरा की मां दासियोंको बोली तुम सबके-सब इसके आगे पीछे घुमते रहती हो। इस भोली बेटी को संसार के उच्च-नीच तो समझाया करो। सायंकाल अकस्मात विचरते हुए काशीके संत रैदास मेड़ता में पधारे। रैदास जातीके चांभार पर संतोंकी भक्तोंकी कोई जाति-पाति तो होती ही नहीं।

दूदाराव ने शक्तिभर उनका सत्कार किया और जिस कक्षमें योगी निवृत्तिनाथ ठहरे थे वही कक्ष में रैदास को आवास प्रदान किया गया। मीराने भी उन्हें प्रसन्न हो प्रणाम किया और मन ही मन अपना गुरु मान लिया। गुरु रैदास दूदाजी को बोले- राजन् तुम्हारे पुण्योदयसे घरमें गंगा आयी है। सबके सब तर जाओगे। दूसरे दिन राजमहल में रैदासजीके उपदेश और भजन हुए। रात्रि को भजन सत्संग का कार्यक्रम रखा गया; जिसका नगर के नरनारियों ने भी लाभ लिया। दूदाजी के साथ मीराँ ने गुरु भाव से संत को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया। इसप्रकार सत्संगसे भक्ति-योग-ज्ञान आदि में शप्रगति होने लगी और इसप्रकार विदुषी, कवयित्री और गुण-भक्ति-मति मीराँ का नाम चहुँ ओर प्रसिद्ध होने लगा। मीराने भी वहाँपर भजन गाकर सुनाई- **लागी मोहि राम खुमारी।**

रिमझिम बरसै मेहरा भीजै तन सारी हो। चहुँ दिस दमकै दामणी, गरजै घर भारी हो।।
सतगुरु भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो। सब घर दीसै आतमा सब ही सूँ न्यारी हो।।
दीपक जोऊँ ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो। मीरा दासी रामकी इमरत बलिहारी हो।।

गुरु रैदास ने मीरा को प्रसाद स्वरूप एक माला और इकतारा दिया। मीरा इकतारा लेकर बजा रही।

प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी। जाकी अँग अँग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा।।
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरे दिन राती।।
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सुहागा।।
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भगति करे रैदासा।।

मीरा सत्संग गाने लगी - **कोई कुछ कहे मन लागा।**

ऐसी प्रीत लगी मनमोहन ज्यूँ सोने में सुहागा।। जनम-जनम का सोया मनुवा, सतगुरु सबद सुन जागा।।
मात-पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा। मीराके प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा।।

संत रैदास दो दिन मेड़तामें रहे। उनके जानेसे मीराको सूना-सूना लगने लगा। दो तीन का सत्संग बड़ा ही सार्थक और आनन्द देनेवाला हुआ। मीरा गाने लगी- **छोड़ मत जाज्योजी महाराज।**

मैं अबला बल नाँय गुँसाई, तुम ही मेरे सरताज।। मैं गुणहीन गुण नाँय गुँसाई, तुम समरथ महाराज।।

थाँरी होय के किण रे जाऊँ, तुम ही हिवड़ा रो साज ।। मीरा के प्रभु और न कोई राखो अबके लाज ।।

अब मीराँकी अवस्था तेरह वर्ष की हो चुकी। उसकी साधना में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। गीता-भागवतादि शास्त्रों के मनन पूर्वक अध्ययन से प्रेम और भक्ति के रहस्य भरे तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव उसे होने लगा। योग व भक्ति इन दोनों की सामंजस्य भरी शिक्षा व साधना से हृदय में विवेक का उदय होकर उसे अपना जीवन-पथ स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। योग द्वारा चित्त एकाग्र कर भक्ति द्वारा भगवान की सुन्दर व मधुर लीला का अनुभव करना उसके लिये सरल व सहज हो गया। संगीत की शास्त्रोक्त साधना भी उसकी परिपक्व हो गई थी। वह नये पद बनाकर मधुर राग-रागिनी में गाकर अपने गिरधर गोपाल को रिझाती, वीणा के तारों की कोमल झंकार से उनके हृदय को हिलाती और सुन्दर भावमय नृत्य द्वारा उन्हें मोह लेती। उसकी सखियाँ और दासियाँ जिन्होंने उसकी संगति से संगीत में पर्याप्त योग्यता प्राप्त करली थी, वाद्यादि बजाकर अपनी स्वामिनी का साथ करती। मीराँ ने अपने जीवन का चरम लक्ष्य अपने प्यारे गिरधर गोपाल को अपने बनाकर उन्हीं में विलीन हो जाना ही निश्चित कर लिया था। संसार की और बातों के लिये उसके मस्तिष्क में स्थान ही नहीं था। उन मदन-मोहन लीला पुरुषोत्तम की मधुर ब्रजलीला रसास्वादन में कभी तो सारी रात बीत जाती परन्तु उसके प्राणों को तृप्ति ही नहीं होती।

एक बार मीरा अपने गिरधर गोपाल की सेवा कर रही थी कि वीरमदेव का पुत्र अष्ट वर्षीय बालक जयमल वहाँ आया; और ठाकुरजी के दर्शन करने लगा। जहाँ मीरा को सेवा-पूजा के लिये राव दूदाजी ने महल के ऊपर एक पृथक् कक्ष बनवा दिया था। उसका नाम उसने श्याम-कुंज रक्खा था। वहीं वह गिरधर गोपाल की सेवा करती व सुन्दर सजावट के साथ नई-नई झाँकियाँ बनाती। ठाकुरजी के लिए श्रृङ्गार भी स्वयं बनाती। ठाकुरजी की ओर एक टक निहारते हुए सहज भाव से जयमल ने प्रश्न किया- बहन तुम्हारे ठाकुरजी को गिरधर गोपाल क्यों कहते हैं? मीराँ ने कहा- जब इन्द्र ने कोप करके ब्रज पर घोर वर्षा का प्रलय मचाया तब सब प्राणियों की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण ने गिरिराज गोवर्धन को उठाकर अपनी अंगुली पर धारण किया थए इसी से इनका नाम गिरधर हुआ। आगे वह कुछ कह न सकी, मौन हो गई। उसने नेत्र मूँद लिये और आँसू की धारा बहने लगी। न जाने किन भाव तरंगों में वह बह रही थी। जयमल ने घबरा कर मीराँ का हाथ पकड़ कर पूछा- तुम क्यों रोती हो बहन, तुम्हें क्या हो गया। परंतु वह तो हे श्यामसुन्दर, प्राणाधार कहकर मूर्छित हो गई। समाचार पाते ही दूदाजी राजपुरोहित आदि सब वहाँ आ गये। और उसे सावधान करने की चेष्टा में लगे। जब उसकी मूर्च्छा हटी तब उसने आसपास में दृष्टि डाल कर कहा- मैं कौन हूँ, मैं यहाँ कैसे आ गई, मेरे मनमोहन कहाँ गये। बहुत देर बाद वह पूर्ववत स्थिति में आई।

एक बार उसके जन्म-दिवस पर माता की बहुत इच्छा थी कि प्यारी बेटी को उबटन लगाकर स्नान करावें, सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजावें परन्तु वह मीराँ ने स्वीकार नहीं किया। यही नहीं किसी से मन मिलाकर उसने बात भी नहीं की। दूदाजी जब आकर उसे समझाने लगे तब विरक्त-भाव से उसने कहा- दादाजी जहाँ किसी भी स्थिति की स्थिरता नहीं, सुख केवल दु:ख की भूमिका मात्र है ऐसे विषमता भरे संसार में वर्ष गाँठ का आनंद मनाने का क्या अर्थ है? इसी जन्म में हम ऐसी स्थिति की शोध क्यों न करें जहाँ नित्य सुख ही सुख है। दु:ख, चिंता, भय आदि क्लेशों का नाम निशान तक देखने को न मिले। क्यों नहीं हम प्रभु के प्रेम में अपने आपको खो देवें। यह कर्णकटु ध्वनि मुझे नहीं सुहाती, इन बाजों को बंद करवा दो, दादाजी। मीराँ की इस प्रकार की परिस्थिति कभी-कभी होते देखकर उसकी माता को विशेष चिंता होने लगी। उसको लगा कि बेटी का विवाह कर देना ही एक मात्र उसके सुख का उपाय है।

बीरमदेवजी की तीसरी पत्नी गिरिजा जिनका ठाठ-बाट ऐश्वर्यपूर्ण था। मायके से आये हुए पचास दासों-दासियाँ, उनका वैभव और सम्मान यहाँ सबसे अधिक था। उनमें ऐश्वर्य का दर्प सदा उपस्थित रहता। उनकी सरलताको ढोंग समझा जाता,

उनकी ड्योढ़ीपर पीयरसे आये हुए राणावत अपने वंशकी चार पीढ़ियोंके नाम लेते हुए विरद बखानते है। उनको मीरा का ठाकुरजीकी सेवा चिपके नहीं सुहाता था। मीरा को तो सिर्फ भगवत्चर्चा सुहाती थी। गिरिजा अपने पीयरकी बात और वीरता मीराको बार-बार सुनाती थी। कभी-कभी विधाताकी कलम कैसा सुन्दर अनोखा चित्र अंकित कर देती हैं। राणा लाखाकी आज्ञा से अपने बारह पुत्रोंका एक-एक करके राज्याभिषेककर रणमें भेजना। गोरा-बादलकी वीरता, पद्मिनीका जौहर। हम्मीरकी इमाताकी बल-बुद्धि, हम्मीरका धर्म पालन, वीरता। चूँड़ाका राजपद त्याग और कर्तव्यपालन। कुम्भाका चरित्र उसे सुनाती थी। गिरिजा कुम्भाके पुत्र रायमल की पुत्री थी। राणा साँगा (संग्रामसिंह) उनके भाई थे।

ताऊ वीरमदेवने मीरासे कहा- तुम्हारे ताईके भतीजे भोजराज रूप और गुणोंके खान। वंश और पात्र में कोई कमी नहीं है। तुम्हारी ताई तुझे अपने भतीजे की बहु बनाना चाहती है। बेटी बाप के घर में नहीं खटती। अभी मान जाओ बादमें ऐसा घर-वर शायद नहीं मिले। मीरा अश्रुपूर्ण आँखोंसे दौड़ते हुए कक्षसे बाहर निकल गयी। वीरमदेवने यह देखा- मीराका चेहरा रक्तविहिन हो गया। मुखपर व्याघ्रके पंजेमें फँसी हुई गायके समान भय, विवशता और निराशाके भाव और मरते पशुके आर्तनाद-सा विकल स्वर। वीरमदेव प्रलयंकर बनकर शवोंसे धरती पाट सकते थे, वे सिंह, हाथी, भैरोंसे, साँड़से निशस्त्र केवल भुजबलसे युद्ध कर सकते थे और उन्हें यमलोक पहुँचा सकते थे। किन्तु ऐसे अवश-विवश प्राणीकी आँखें वे देख नहीं सकते, सह नहीं सकते और मीरा दौड़कर अपने राजमहल के कक्ष में गई और कृष्णको पुकारकर कहने लगी- शायद तुमने मुझे स्वीकार नहीं किया। यदि तुम अल्पशक्ति होते तो मैं तुम्हें दोष नहीं देती। अपनी पत्नीको दूसरेके घर देने अथवा जानेकी बात तो साधारण-से-साधारण कायर-से-कायर राजपूत भी नहीं कर सकता। मैं कैसे अब दूसरा पति कर लूँ? अपना शरणागत जानकर मेरी रक्षा करना। तुम्हारी शक्ति तो अनंत है, करूणा वरुणालय हो, शरणागत वत्सल हो, पतित पावन हो, दीनबन्धु हो, अनन्त सौन्दर्य पारावार हो, भक्त भयहारी हो। मेरे तो तुम्हीं रक्षक हो, यह कहते कहते मीरा अचेत हो गयी।

प्रसंगवश दूदाजी ने मीराँ के विवाह की चर्चा चलाई तब बीच में ही दादाजी के चरण स्पर्श कर मीराँ ने कहा- अब आप कुछ न कहिये दादाजी। इन पूज्य चरणों की शपथ लेकर कहती हूँ कि मैं आपसे दूर न होऊँगी। भगवदुपासना, संत सेवा व सत्संग से मुझे वंचित करने की कोई भी बात आप कभी न सोचें। अब तो इस त्रिभुवन मोहिनी माधुरी छवि में मेरे प्राण अटक गए हैं। मन वचन कर्म अब तो बिक गये हैं, इन्हीं अरुण कोमल चरणारविंदों में। मेरे गिरधर गोपाल की कृपा रूप वर्षा में मेरे रोम-रोम भींज रहे हैं। इस सुख से मुझे छुड़ाने का प्रसंग न लावें। मैं यही भिक्षा आप से चाहती हूँ।

दूदाजी के नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने उसी समय आये हुये अपने पुत्रों को सुना दिया कि सुकुमारी मीराँ का मुखमण्डल मलिन होने जैसी कोई बात वे नहीं करेंगे। उनकी देह के न रहने पर जो श्री चारभुजानाथ की इच्छा होगी, वही होगा। इस प्रसंग से वीरकुंवरी की चिंता और बढ़ गई। बेटी को अपने गिरधर गोपाल के सिवाय और कुछ सुहाता नहीं। दादाजी अपनी पोती को नाराज करना नहीं चाहते और मीराँ के पिता भी अपने पिता की हाँ में हाँ मिलाना ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझतेहैं। तो क्या बेटी आजीवन अविवाहित रहेगी? भला स्त्री जाति के लिए यह क्या निन्दनीय बात नहीं। केवल मीराँ को संतुष्ट रखने से ही कैसे काम चलेगा। लोगों का मुँह थोड़े ही बन्द किया जा सकता है। ऐसी बातों में क्या बेटी की राय पूछनी पड़ती है। उसके दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए भजन-कीर्तन-संत-समागम व सत्संग के संस्कार क्या उसके भावी जीवन में बाधक नहीं होंगे। बार-बार इन विचारों के कारण वह अशांत रहा करती।

अद्वितीय रूप लावण्य सम्पन्ना अपनी प्यारी बेटी को यौवन काल की ओर अग्रसर होती हुई देख किस माता को उसके विवाह के संबंध में चिन्ता न होगी। वीरकुंवरी की मन:स्थिति भी अधिकाधिक चिन्ता जनक होती थी। उसने अब स्वयं

बेटी को एक बार दृढ़ता से समझाने का निश्चय किया।

एक बार मीराँ ठाकुर सेवा कर रही थी कि माता आ गई। प्रभु की सेवा करते हुए अपने ही भाव में बहते हुए मीराँ ने कहा- तुम कुछ देरी से आई माँ। अभी-अभी भोर में ही मेरे गिरधर गोपाल ने यहाँ आकर बंशी बजाई, न जाने किन पुण्यों के फलस्वरूप उन्होंने यह कृपा की इस दासी पर। हे मेरे श्यामसुन्दर, ऐसी माधुरी चखा कर फिर मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले गये नाथ। यह कहते कहते मीराँ के नेत्रों से आँसू की झड़ी लग गई। माता आगे बढ़ उसके आँसू पौंछने लगी। सिर पर हाथ जाते ही वह चौंक पड़ी; बोली- यह क्या बेटी यह चोट कैसे आई। मीराँ निरुत्तर रही। माता समझ गई कि भावावस्था में गिर पड़ने से ही यह लगी है। वह झुँझला कर उसे समझाने लगी। विवाह की बात चलते ही मीराँ ने कहा, ऐसा न कहो माँ, मेरा विवाह तो गिरधर गोपाल के साथ कभी का हो चुका है। वे ही अब मेरे तन, मन और प्राणों में रम रहे हैं, मेरे हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। अब दूसरी बात सुनकर ही कलेजा काँप उठता है।

ऐसे वर को के बरूँ, जो जनमें मर जाय। वर वरिए गोपालजी, म्हारो चुड़लो अमर हो जाय।।

माँ, प्रेम, रूप, गुण, वैभव और सकल ऐश्वर्य के भंडार मेरे इन गिरधर गोपाल से बढ़कर ऐसा और कौन है जिससे प्रेम का संबंध जोड़ा जा सकता है। इस नाशवान मर्त्यलोक के पाप-ताप-दग्ध तथा सदा भय व्याधि ग्रस्त जीवों से भी कहीं प्रेम का नाता जोड़ा जा सकता है?

बेटी की बातों को सुनकर माता अपने हृदयावेग को नहीं संभाल सकी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी- हाय रे निष्ठुर विधाता। जहाँ ऐसी सुकुमारता, ऐसे अलौकिक गुण व ऐसा देव दुर्लभ रूप लावण्य वहाँ ऐसा निर्मोही हृदय। माता ने मीराँ को कई प्रकार से समझाया। माता को अधिक रोती हुई मीराँ देख नहीं सकीं। उसने कहा- रोओ मत माँ। बुरा न लगाओ। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध अब मैं कुछ न कहूँगी। जिस बात से तुम प्रसन्न रहोगी उसी में मैं अपनी प्रसन्नता समझ लूँग। शांत हो जाओ माँ। पल भर में मीराँ के अद्भुत संयम ने जादू का-सा प्रभाव डाल दिाय। माता के हृदय को शांति हुई। बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा- तू बड़ी सयानी है मीराँ। बड़भागी होगा वह जो ऐसी सुलक्षणा मेरी लाड़ली का हाथ पकड़ेगा।

माता के जाने के पश्चात् मीराँ अपनी प्यारी दासी मिथुला के गले लिपट गई। उसकी आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई। मिथुला अपनी स्वामिनी की देह पर अत्यन्त आत्मीय भाव से हाथ फेरने लगी। यह दासी किसी पूर्व संस्कारवश उसे आ मिली थी। अपने जीवन की बागडोर मीरा को सम्हलाकर उसकी शरण में निश्चिंत हो गई थी।

वीरशिरोमणि दूदाजीराव का स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहने लगा। जब भी मीरा उनसे मिलने जाती तो उसके साथ भगवत्चर्चा करते। मीरा उनको पद सुनाती- **म्हाँरी सुध ज्यूँ जाणो त्यूँ लीजो।**

पल पल ऊभी पंथ निहारूँ, दरसण म्हाँने दीजो। म्हें तो हूँ बहु औगुण वाली, औगुण सब हर लीजो।।

हूँ तो दासी थाँ चरणाँ की, मिल बिछुड़न मत कीजो। मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित दीजो।।

दूदाजीराव का स्वास्थ्य आज इतना गिर गया। मीराने देखा दूदाजीके पलंग के समीप वीरमदेव, रायसल, रायमल, रतनसिंह और पंचायण पाँचो पुत्र, राजपुरोहितजी, राजवैद्यजी, दीवानजी आदि मुख्य-मुख्य व्यक्ति बैठे हैं। दूदाजी बोले- मीरा बेटी भजन गाओ। मीराने अपने दादाको भजन सुनाया।

स्वामी सब संसार के हो, साँचे श्रीभगवान। स्थावर जंगल पावक वाणी, धरती बीच समान।।

सबमें महिमा तेरी देखी, कुदरतके करबान।।

विप्र सुदामाको दारिद खोयो, बाले की पहिचान। दो मुट्ठी तन्दुल की चाबी, दीनों द्रव्य महान।।

भारत में अर्जुन के आगे, आप भये रथवान। उसने अपने कुल को देखा, छुट गये तीर कमान।।
ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा यह अग्यान। चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता रो ग्यान।।
मो पर तो प्रभु किरपा कीजो, बाँदी अपनी जान। मीरा गिरधर सरण तिहारी, लगे चरण में ध्यान।।

राजवैद्य ने नाड़ी का परीक्षण करना चाहा। दूदाजी बोले- अब दवाके दिन गये वैद्यजी। मेरा वैद्य तो नारायण ही है और अपने पुत्रोंको बुलाकर बोले- पंचायण और रायमल तुम दोनों मेड़तासे बाहर रहते हो। जिस किसी स्वामीकी सेवामें हो कभी स्वामीभक्ति की दाग न लगने पाए। यदि कभी जोधपुर और मेड़तामें ठन जाये तो युद्ध से मुख मोड़ लेना मेरे रक्तको मत लजाना। और रतनसिंह को आज्ञा दी- मेरी तलवार लाओ। उनको अपने यौवनकालके कितने ही रणांगण की याद आ गयी और बोले- रक्ताशनी माँ करालिके। अब तक मैं बड़े गर्वसे तुम्हें धारण कर रहा था। क्षात्रधर्मके अनुसार तुम्हें संतुष्ट करता रहा हूँ जगदम्बे। प्रजाजन रक्षण और अत्याचारियोंके दमन हेतु धारण की हुई इस शक्ति द्वारा जाने-अनजाने में मुझसे कभी अपराध बन पड़े हो उसके लिये क्षमा करना। अब मैं तुमसे विदा लेता हूँ। इसके साथ ही सांसारिक व्यवहार, कर्तव्य और कामनाओंका, जो शेष रह गया उनका पूर्ण रूपसे विसर्जन करता हूँ। अपने पुत्र वीरमदेव को अपनी पगड़ी, गद्दी प्रदान करता हूँ। पुत्र वीरमदेव उठो। यह तलावर शक्ति शौर्यकी सहायता है। मेरी आज्ञासे तुम इसे धारण करो। माँ दुर्गाकी आराधना करते हुए प्रजाकी रक्षाके लिये तुम इसे स्वीकार करो। इसके साथ ही प्रजारक्षण, अन्यायका दमन और कर्तव्यका भार तुम्हारे सबल स्कन्ध वहन करें। वीरमदेवने पिताकी आज्ञासे वह तलवार दोनों हाथोंमे लेकर सिरसे लगाकर ग्रहण की। वीरपुत्र जयमाल को सैनिकी वेश में देखकर दूदाजी की आँखे चमक उठी और मीराकी सौंदर्य रूपछटा देखकर ऐसे लगा मानो लक्ष्मी ही अवतरित होकर आयी हो। दूदाराव अपने पुत्रोंसे बोले- संसार छोड़ते समय मेरे मनमें संत दर्शन की लालसा है। मीराने दादा दूदाजीको भजन सुनाया-

नहीं ऐसो जनम बारम्बार। क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार।।
बढ़त पल पल घटत दिन दिन जात न लागे बार। बिरछ के ज्यों पात टूटे लगे नहिं पुनि डार।।
भवसागर अति जोर कहिये विषम ऊंडी धार। राम नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार।।
ज्ञान चौसर मँडी चौहटे सुरत पासा सार। या दुनिया में रची बाजी जीत भावै हार।।
साधु संत महंत ज्ञानी चलत करत पुकार। दास मीरा लाल गिरधर जीवणा दिन चार।।

इतनी देर में संत चैतन्यदास आये और बोले- मुझे वृंदावन वास की आज्ञा मिली है। तीर्थोंमें घुमते घुमते वृंदावन जा रहा हूँ और संतने अपनी झोलीसे एक माला निकालकर दूदाजीको दी। दूदाजी उस संत से बोले- महाप्रयाण के समय आपने पधारकर मेरा मरण सुधार दिया।

दूदाजी की मृत्यु- पुत्र रायमल बाले- पिताश्री आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? दूदाजी बोले- जो निश्चित है, उसकी ओरसे आंख नहीं मूंदना पुत्र। यदि प्राण रहें भी तो जर्जर देह इन्हें धारण करनेकी क्षमता कितने दिन जुटा पायेगी? फिर मेरा यह भरा-फूला परिवार कर्तव्यपरायण पुत्र, अपने अलौकिक गुणोंसे भविष्यमें सारे देशको आलोकित करनेवाली विदुषी और भक्ति परायणा पौत्री मीरा तथा अभिमन्यु-सा होनहार वीर पौत्र जयमल ऐसे भरे पूरे परिवारको छोड़कर जाना मेरा सौभाग्य है पुत्र। अपने मनको मलिन मत करो। चारभुजानाथकी छत्रछाया और अपना कर्तव्य केवल यही स्मरण रखो और मीरा को आज्ञा दी की एक भजन सुना दे। मीराने पद सुनाया-

प्रभु तेरे नाम लुभाणी हो। नाम लेत तिरता सुण्या जैसे पाहन पाणी हो।।

सुकृत कोई ना कियो बहु करम कमाणी हो ।। गणिका कीर पढ़ावती बैकुण्ठ बसाणी हो ।।
अरथ नाम कुंजर लियो बाकी विपत घटाणी हो । गरुड़ छाँड़ी हरि धाइया, पसु जूण मिटाणी हो ।।
अजामिल से ऊधरे जमत्रास हराणी हो । पुत्र हेतु पदवी दयी जग सारे जाणी हो ।।
नाम महातम गुरु दियो सोई वेद बखाणी हो । मीरा दासी रावरी अपनी कर जाणी हो ।।

मधुर संगीत और भावमय पद श्रवण करके चैतन्यदास बोले धन्य हो मीरा तुम्हारे दर्शन करके मेरे नेत्र धन्य हो गये। तुम्हारा अलौकिक प्रेम, संतोंपर श्रद्धा, भक्तिकी लगन, चराचरको मोहित करनेवाला मधुर कंठ, प्रेम रसमें भीगे नेत्र इन सबको देखकर मुझे लगता है कि तुम कोई व्रजगोपिका हो। वे जन भाग्यशाली होंगे जो तुम्हारी इस भक्ति प्रेम की वर्षामें आनन्द में डूब जाएंगे। दूदाजी से बोले- हे राजन्, धन्य आप और आपका यह वंश जिसमें यह नारी रत्न प्रकट हुआ। मीरा अपने कक्ष में आकर बार-बार श्रीकृष्ण चैतन्य का गान करने लगी और कहने लगी- हे प्रभो, न जाने इस जन्ममें तुम्हारे दर्शन होंगे या नहीं। अपने गिरधर गोपालकी सांध्य आरती भोग करके मीरा दूदाजीके पास आयी। मीरा बोली- बुढ़ापा देहका सबसे बड़ा रोग है। आपकी देह जर्जर हो गयी है। हम सब तो अपने स्वार्थ के लिये रोते हैं, आपके रहते हुए हमें अपने उत्तरदायित्व का बोझ नहीं होगा। और मीरा गाने लगी-

मैं तो तेरी शरण पड़ी रे रामा ज्यूँ जाणे त्यूँ तार । अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो मन नहीं मानी हार ।।
या जग में कोई नहीं अपणा सुणियो श्रवण मुरार । मीरा दासी राम भरोसे जम का फेरा निवार ।।

धीरे-धीरे दूदाजीकी चेतना लुप्त होने लगी। मीराके भक्ति संस्कारोंको पोषण देनेवाले, मेड़ता राज्यके संस्थापक, मेड़तिया शाखाके पूर्वज, परम वैष्णव भक्त, वीरशिरोमणि राव दूदाजी पचहत्तर वर्षकी आयुमें यह संसार छोड़कर गोलोक सिधारे और वीरमदेवका राज्याभिषेक किया। वीरमदेवकी आयु अड़तीस वर्ष की थी। वीरमदेव बड़े बुद्धिमान, प्रतापशाली और राजनीतिज्ञ नरेश थे। राणा रायमलकी पुत्री और साँगाजीकी बहिन गिरजाजीसे उनका तीसरा विवाह हुआ। दोनों राज्योंमें घनिष्ट मित्रता हो गयी। मीराके सबसे बड़ा आश्रय और सहारा दूदाजीराव थे। उनके न रहनेसे मीरा अकेली हो गयी। रनिवासमें और महल में संत लोग आकर दर्शन देते और मीराको अनायास ही सत्संग प्राप्त होता था। पर धीरे-धीरे रनिवासमें उसका विरोध होने लगा। कहने लगे- लड़की बड़ी हो गयी है, साधु-संतों के बीच बैठे रहना, भजन करना, इसके लिये अच्छा नहीं है। सभी साधु-संत लोग अच्छे नहीं होते। मीरा अब कोई छोटी नहीं है चौदह वर्ष की सयानी रह गयी है। इसका विवाह हो जाता तो एकाध वर्षके भीतर माँ बन जाती। आखिर कब तक कुँवारी रखेंगे। यह सब सुनकर मीरा की माता झालीने मीराको समझाया- पुत्री, अब तू बड़ी हो गयी है इसप्रकार साधु-संतों के पास देर रात तक मत बैठा कर। रनिवास में जो बातें होती है वे सब सुन-सुनकर मैं डर जाती हूँ। उन बाबाओंके पास ऐसा क्या रखा है, जो उनकी बात सुनकर दौड़ जाती है। यह रात-रातभर जागना, रोना-गाना, भगवान ने तुझे रूप-गुण किसलिये दिये हैं? अपने बड़ोंका, अपने मां-बापका मानना तेरा कर्त्तव्य है। मीरा बोली- ऐसे मत करो, भगवान को भूलना और सत्संग छोड़ना दोनों भी मेरे बस की बात नहीं है। जिस बार के लिये तुम्हें गर्व होना चाहिये उस बात के लिये ही आप मन छोटा कर रही है। माता बोली- कल कुछ हो गया तो मेरे मुँह पर कालिख लग जायेगी। पता नहीं कौन साधु कैसा है कौन जाने? मीरा बोली- आप भी कैसी बातें कर रही है। आप निश्चिंत रहे मेरे उज्वल वंश में मेरे कारण कोई दाग लग गया तो इससे पूर्व ही मैं देह छोड़ दूंगी। मीरा पद गाने लगी-

म्हाँने मत बरजे ऐ माय साधाँ दरसण जाती । राम नाम हिरदै बसे माहिले मन माती ।।

माय कहे सुन धीयड़ी कौने गुणाँ फूली। लोक सोवै सुख नींदड़ी, थूँ क्यूँ रैणज भूली।।
गैली दुनिया बावली जाँ कूँ राम न भावै। जाँ के हिरदै हरि बसै वाँ कूँ नींद न आवै।।
चौबारयाँ री बावड़ी, ज्याँका नीर न पीजे। हरि नाले अमृत झरै बाँ की आस करीजे।।
रूप सुरंगा रामजी मुख निरखहि लीजे। मीरा व्याकुल बिरहिणी, अपणी कर लीजे।।

यह सुनकर माता उठकर चली गयी। मीराको समझाना उसकी बस का न रहा, मीरा भी उदास हो गयी। रनिवास की स्त्रियोंकी आग्रह से ताऊ वीरमदेव मीराके विवाह का प्रयत्न करने लगे।

प्राचीन काल से भारत में राज्य करने वाले मुख्यत: तीन क्षत्रिय वंश हैं। सूर्य वंश, चन्द्र वंश और यदुवंश। इन तीनों में भी सूर्यवंश अधिक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित माना जाता है। मांधाता, हरिश्चन्द्र, दिलीप, भागीरथ, अम्बरीष, रघु और दशरथ आदि बड़े-बड़े धर्मात्मा, पराक्रमी, भगवद्भक्त, तेजस्वी और वीर राजा भी इसी कुल में हुये और भगवान रामचन्द्र, जैनों के तीर्थंकर ऋषभदेव और बुद्धदेव ने भी इसी कुल में अवतार लिया, जिससे इस वंश का गौरव बढ़कर यह संसार पूज्य बन गया।

भगवान रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र ही मेवाड़ राजवंश के मूल पुरुष हैं। इसी वंश में वि. सं. ६२५ के लगभग मेवाड़ में गुहिल नामक एक प्रतापी राजा हुआ जिसके नाम से यह गुहिल वंश कहलाने लगा। आगे चलकर इस वंश की एक शाखा सीसोदा ग्राम में रही इसलिए उस शाखावाले सीसोदिया कहलाने लगे। मेवाड़ के महाराणा इसी सीसोदिया शाखा के वंशज हैं।

वि. सं. ६२५ से अब तक की अवधि में कितने ही परिवर्तन हो गए। समय ने कितने ही पलटे खाये। कई राज्य उदय और अस्त हो गये। कई हिंदू राज्यों ने यवनों की प्रबल शक्ति के आगे सिर झुकाकर अपना स्वातंत्र्य और अपनी कुल मर्यादा को उनके चरणों में समर्पित कर दिया। एक मात्र चित्तौड़ के सबसे प्राचीन राजवंश ने ही अनेक संकट सहकर भी अपने स्वातंत्र्य, अपने कुल की मान-मर्यादा व अपने गौरव के लिए ऐश्वर्य और सुख सम्पत्ति को भी न्यौछावर कर दिया किंतु अपनी टेक से वह विचलित नहीं हुआ। इतने वर्षों तक सुख दु:ख की अनेक परिस्थितियों को सह कर भी एक राजवंश ने एक ही प्रदेश पर शासन किया हो, ऐसा दृष्टान्त सम्भव है, संसार भर में क्वचित् ही मिलेगा। भारतवासी हिन्दू और नरेश-गण सभी मेवाड़ के महाराणा को पूज्य भाव की दृष्टि से देखते हुए उन्हें हिन्दुआ-सूरज कहते हैं।

राजा गुहिल के पश्चात इस वंश में नागादित्य व शीलादित्य आदि प्रतापी राजा हुए। शीलादित्य की चौथी पीढ़ी में बापा रावल हुए जिन्होंने आठवीं शताब्दी में अपने बाहुबल के प्रताप से चित्तौड़ में अपना राज्य स्थापित किया। वह विजयी और प्रतापी राजा हुए। धीरे-धीरे वह एक स्वतन्त्र व विशाल राज्य के स्वामी बन गये।

बापा रावल की २८ वीं पीढ़ी में रावल रणसिंह (कर्णसिंह) चित्तौड़ की गद्दी पर आये। इनसे दो शाखायें फूटीं। एक रावल और दूसरी राणा। रावल चित्तौड़ के स्वामी थे और राणा शाखावाले सीसोदा ग्राम के जागीरदार थे जो पीछे चल कर सीसोदिया कहलाये। रावण शाखा की समाप्ति अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ छीनने पर हुई और तब से राणा शाखावाले इस गद्दी के स्वामी हुए।

रावण रणसिंह (कर्णसिंह) की नवीं पीढ़ीं में रावल रत्नसिंह चित्तौड़ के अधिपति हुए। यह रावल शाखा के अन्तिम शासक थे। इनकी राणी सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मिनी परम सुन्दरी थी। उस समय के दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के अलौकिक सौन्दर्य की कीर्ति सुनकर उसकी प्राप्ति के लिये आकाश पाताल एक कर छोड़ा, परन्तु राजपूतों के आगे उसकी एक न चली। अन्त में उसने कपट पूर्वक रत्नसिंह को कैद किया तब पद्मिनी ने शठे शाठ्यं समाचरेत की नीति के अनुसार बड़ी चातुरी से अपने पति को बन्धन से मुक्त करा लिया जिससे अत्यन्त क्रोधित होकर

फिर उसने चढ़ाई की। घोर संग्राम हुआ। रावल रत्नसिंह लड़ते लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गये। रत्नसिंह के मरने पर सीसोदिया के राणा लक्ष्मणसिंह ने सेना का नेतृत्व किया, परन्तु जब जीतने की कोई आशा न रही तब केसरियाँ करने को उद्यत हुए। एक विशाल चिता में पद्मिनी तथा अनेकों राजराणियों के जौहर करने के पश्चात् सब राजपूत निश्चिन्त होकर पराक्रम की परमावधि करते हुए लड़े, परन्तु सबके सब वीर गति को प्राप्त हुए। अपने पुत्र खीजरखाँ को चित्तौड़ सौंपकर अलाउद्दीन दिल्ली चला गया। राणा लक्ष्मणसिंह का आठवाँ पुत्र जो युद्ध से हट कर केलवाड़ा चला गया था सीसोदा की जागीर का स्वामी हुआ। उसके पश्चात् हमीर (राणा लक्ष्मणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह का पुत्र) गद्दी पर आया। उसने अपने बाहुबल से पूर्वजों के चित्तौड़ के राज्य पर फिर अधिकार कर लिया।

हमीर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र क्षेत्रसिंह गद्दी पर आया। उसके पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र राणा लाखाजी वि. सं. १४३६ में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। उसके पश्चात् मोकलजी व तत्पश्चात् कुम्भाजी को राजगद्दी मिली।

महाराणा कुम्भा महान प्रतिभाशाली हुए। वे बड़े ही कला रसिक थे। चित्रकला, नाट्य, साहित्य, संगीत, शिल्पकला, संस्कृत-भाषा, युद्ध विद्या और राजनीति में बड़े ही प्रवीण थे। उन्होंने दिल्ली, मालवा और गुजरात के सुलतानों को युद्ध में परास्त कर बहुत-सा प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया।

महाराणा कुम्भाजी के ज्येष्ठ पुत्र उदा ने राज्य के लोभ से अपने पिता की हत्या कर दी जिससे वह इतिहास में उदा हत्यारा के नाम से कुख्यात है। इससे असंतुष्ट होकर सरदारों व प्रजाजनों ने विद्रोह किया जिसमें उदा हार कर भाग गया। तब उसके छोटे भाई रायमल को राजगद्दी मिली।

रायमल के बाद राणा संग्रामसिंह मेवाड़ के स्वामी हुए। इनके समय के हिन्दू राजाओं में ये सबसे अधिक सामर्थ्यवान एवं प्रतापी नरेश थे। इनके समय में मेवाड़ की सीमा आगरे तक जा मिली थी।

राणा संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे भोजराज। ये अपने पिता के समान ही बड़े साहसी व वीर थे। सुगठित देह और गौर वर्ण के ये स्वरूपवान राजकुमार बड़े ही विचारवान और धीर स्वभाव के थे। राजकीय विषयों में भी इनके विचारों की पूछ होती थी। ये स्पष्ट वक्ता और बड़े ही स्देशाभिमानी थे। इन्हीं के साथ मेड़ते के राव वीरमदेव जी ने मीराँबाई की सगाई निश्चित की थी।

उन्हीं दिनों एक दिन चित्तौड़से कुँवर भोजराज अपनी गर्भवती भुवा गिरजाको लेने चित्तौड़से मेड़ता आये। रूप और बलकी खान, धीर-वीर, समझदार बालक, बीस वर्षकी आयु, जिसने भी उसे देखा, सब सराहने लगे। लोग कहते थे यह सुंदर जोड़ी दीपक लेकर ढूँढनेपर भी नहीं मिलेगी। भगवानने मीराको जैसे रूप-गुणोंसे सँवारा है, वैसा ही भाग्य दोनों हाथोंसे दिया है। आदि आदि।

थोड़े दिनोंबाद गिरजा को लाने वीरमदेव चित्तौड़ पधारे। मीराके कानोंमें यह बात पड़ी कि उसकी सगाई कुँवर भोजराज के साथ हो रही है। मीरा व्याकुल हो उठी। मीराने गिरधर गोपाल को पुकारा और कहने लगी- हे मेरे सर्वस्व, मैं कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? मुझे बताओ, तुम्हें अर्पित तन मन क्या अब दूसरोंकी संपत्ति बनेंगे? यज्ञका पुरोडाश क्या गधे खायेंगे? सिंहका भाग सियार भोग लगायेंगे? मेरे साँवरे, मुझे बताओ मैं क्या करूँ? मैं तो तुम्हारी हूँ। अनहोनी मत होने दो मेरे प्रियतम। मैं तो तुम्हारी चाकर हूँ। मीरा गाने लगी-

म्हाँरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

आँखोंसे अश्रु बह रहे हैं। **म्हाँरी सुध लीजो दीनानाथ।**

जल डूबत गजराज उबायों, जलमें पकड्यो हाथ। जिन प्रह्लाद पिता दुख दीनो नरसिंघ भया यदुनाथ।।

नरसी मेहता रे मायरे राखी वाँरी बात। मीरा के प्रभु गिरधर नागर भवमें पकड़ो हाथ।।

मीरा का विवाह- भोजराज ने मीराको देखा। भोजराज ने मीराकी मंदिर में गिरधर गोपाल को देखा और उन्हें प्रणाम किया। मीराको देखकर भोजराज ने अपना आपा खो दिया। भोजराज मीरा से बोला- देवी, आत्महत्या महापाप है और गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन भी इससे कम नहीं। इससे सृष्टिका संचालक अप्रसन्न होता है। यह चित्तौड़का अभागा सौभाग्यशालीजन आपके सामने उपस्थित है। इस भाग्यहीनके कारण ही आप जैसी भक्तिमती कुमारीको इतना परित्याग सहना पड़ रहा है। बेटी कभी बापके घर कुँवारी बैठी नहीं रह सकती। पीढ़ियोंसे जो होता आया है उसीके लिये तो सब प्रयत्नशील है। आपके माता-पिता, परिवार के लोग जो कर रहे हैं वो करने दीजिये। आप अपना विवाह गिरधर गोपालके साथ कर लीजिये। यदि ईश्वरने मुझे इसका निमित्त बनाया तो मैं आपको वचन देता हूँ केवल दुनियाकी दृष्टिमें मैं आपका पति बनूँगा पर आपके लिये नहीं। जीवनमें कभी भी आपकी इच्छाके विरुद्ध आपके शरीर को स्पर्श नहीं करूँगा। अराध्य की मूर्तिकी भाँति आपकी सेवा ही मेरा कर्त्तव्य होगा। आपके पति गिरधर गोपाल मेरे स्वामी और आप मेरी स्वामिनी होंगी। भोजराजका गला रूँद गया। भोजराज अपने डेरेपर लौट गये। चित्तौड़का युवराज आज दिनहीन होकर लौट गया।

भोजराज मीरासे बोले- मुझे केवल तुम्हारे दर्शन का अधिकार चाहिये। तुम प्रसन्न रहो। तुम्हारी सेवा का सुख पाकर ही भोज निहाल हो जायेगा। मुझे और कुछ नहीं चाहिये। हे एकलिंग नाथ मेरी लज्जा रखना। राजसिंहासनपर बैठनेवाले के ह्रदय को भगवान पत्थर बनाकर धरतीपर भेजता है, तभी तो राज्य चलते हैं। कुँवर भोजराज ने वीरमदेवसे विदा ली। भोजराज चित्तौड़ लौट आये पर उनका मन श्यामकुंजमें भीतर घूमता रहा।

चित्तौड़से राज पुरोहितजीके साथ उनकी पत्नी मीराको देखनेके लिये आयी। राजमहलमें उनका सत्कार हुआ और साथ में भेंट स्वरूप वस्त्राभूषण लेकर आये। झालीबाईने मीराको यह वस्त्र-आभूषण पहनने के लिये दी और कहा- इतने बड़े घरमें तेरा सम्बन्ध होने जा रहा है।

बड़े-बड़े राजा-महाराजा अपनी कन्याओंका सम्बन्ध जिस प्रतिष्ठित कुलमें करनेकी आशा लगाये थे, वही सम्बन्ध आज भाग्यवश छोटेसे मेड़ता राज्यके छुटभाईकी कन्याकी गोदमें आ पड़ा है, अब वही इतरा करके उपेक्षा कर रही है। यह सब तेरे दादाके लाड़का फल है। वे खिन्न हो उठकर चली गयीं।

उसी दिन कुड़कीकी जीतके समाचार पहुँचे। वीरमदेवजीने बारह गाँव सहित कुड़कीकी पूरी जागीर अपने छोटे भाई और मीराके पिता रतनसिंहजीको दे दी। पूरे दिन हर्ष उत्साह बना रहा।

साँझको माता झालीजीने फिर बेटीको समझानेका प्रयत्न किया- तेरे दु:खके मारे आज जागीर-प्राप्तिकी प्रसन्नता भी मुझे खुश नहीं कर पा रही है मीरा। लगता है मेरे भाग्यमें सुख लिखा ही नहीं। तेरा क्या होगा, यह आशंका मुझे मार डालती है। अरे, विनोदमें बोली भगवान्‌से क्या जगत्‌का व्यवहार चलेगा? लगता है मानो क्षितिज फटकर धरा-आकाश एक हो गये हों। इस साधुसंगने तो मेरी कोमलांगी बेटीको बैरागिन ही बना दिया है। मैं किसके आगे जाकर झोली पसारूँ? किससे अपनी बेटीके सुखकी भिक्षा माँगू।

मीरा बोली- माँ, आप क्यों दु:खी होती है? सब अपने-अपने भाग्यका लिखा हुआ पाते हैं। यदि मेरे भाग्यमें दु:ख लिखा है तो क्या आप रो-रो करके सुखमें पलट सकती हैं? तब जो हो रहा है, उसीमें संतौष मानिये। मुझे एक बात समझमें नहीं आती माँ। आप अच्छी तरह जानती हैं कि जो जन्मा है, वह मरेगा ही। फिर जब आपकी पुत्रीको अविनाशी पति मिला है तो आप क्यों दु:ख मना रही हैं?

आपकी बेटी जैसी भाग्यशालिनी और कौन है? आप दु:खको छोड़कर महलमें पधारें, आज तो जीतकी खुशीमें महफिल होगी। आपको भाग लेना है। बाहर भी दरबार लगेगा। सभीकी बधाइयाँ आयेंगी। आपको आज बहुत काम है माँ। आप पधारें।

आऊँगी माँ, जब पिताश्री अन्दर पधारेंगे , तब आऊंगी। मीराने हँसकर माँको प्रसन्न कर लिया।

चित्तौड़से गिरजाजीके पुत्र-जन्मका शुभ समाचार आया। शिशुके कुंकुम रंजित पद चिन्ह अंकित श्वेत रेशमी वस्त्र लेकर राजखवास (नाई) सवारों सहित बधाई लेकर मेड़ता आया। ढोल नगारोंसे मेड़ताका गढ़ कई दिनोंतक गूँजता रहा। महाराणा साँगाने प्रथम बार भाँजेको गोदमें लिया तो उसे पचार हजार रुपयोंकी वार्षिक आमदनीका परगना चाँणोद घाणेराव प्रदान किया। महीने भर बाद वीरमदेवजी पत्नीको लिवाने चित्तौड़ पधारे। साथमें कुँवर जयमल भी गये।

इस सम्बन्ध से सिसौदियोंके मनमें मेड़तियोंका मान बढ़ा दिया। उस वंशकी बेटी अब इस कुलमें आये, यह हर्ष और सम्मानकी बात मान ली गयी। महारानियाँ मीराके विषयमें गिरिजा से पूछतीं और वे उसके रूप-गुणोंकी प्रशंसा करते न थकती। वह भगवान्‌की बड़ी भक्त है भाभीसा। एक दिन उन्होंने साहस करके कह दिया। अपने भगवान्‌के सामने उसे कुछ नहीं सूझता। उसमें सभी गुण हैं, पर वह भक्तिको सबसे प्रधान मानती है। उसके गुण भी भगवान्‌के लिये ही हैं। जैसे वह कवियत्री है, पर अपने इस गुणका प्रयोग वह भगवान्‌के भजन रचनेमें ही करती है। आप श्रीमाताजीसे निवेदन कर दीजिये। कहीं ऐसा न हो कि बादमें विवाद उठे। मैं तो दोनों ओरसे बँधी हूँ।

बात राणा सांगा ने भी सुनी। उन्होंने कहा- अरे, भक्ति है कहाँ? किसी भाग्यवानको ही मिलती है वह। चिंताकी बात नहीं। हमारे तो दोनों हाथोंमें लड्डू है। यदि वह संसारी है तो ऐसी सुन्दर सुशील बहू मिलेगी और भक्त है तो हमें तार देगी।

मीरा दिन-दिन दुबली होती जा रही थी। झालीने यह बात अपने पति रतनसिंहजीसे बात कही। उन्होंने राजवैद्यजीको भेज दिया। वैद्यने परीक्षा करके बताया- इसे कोई रोग नहीं हैं, केवल दुर्बलता है।

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किण बिध होय। गगन मँडल पर सेज पिया की किण बिध मिलना होय।।
घायलकी गति घायल जाणे जो कोई घायल होय। जौहरी की गति जौहरी जाणे और न जाणे कोय।।
दरद की मारी बन बन डालूँ बैद मिल्या नहीं कोय। मीरा की प्रभु पीर मिटै जद बैद साँवरिया होय।।

इतने में दासी दौड़ती हुई आयी और बोली- जिन्होंने आपको गिरधर गोपालकी प्रतिमा दी थी वे संत पधारे हैं। मीरा बोली- वे कहाँ हैं उन्हें जल्दीसे बुला ला। मीरा ने कहा तेरा बड़ा अहसान होगा। दासी बोली- अहसान क्या बाईसा हुकम। मैं तो आपकी चरणरज हूँ। मैं घरसे आ रही थी तो उन्होंने मुझसे सब बात कहकर यह प्रसाद तुलसी दी और कहा कि मुझे एक बार प्रभुके दर्शन करा दो। यह कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। बाईसा। उनका नाम भी गिरधरदास है।

वीरमदेवका पुत्र जयमल मीराको बोला- जीजा, किसीको ज्ञात हुआ तो गजब हो जायगा। आजकल जो भी संत पधारते हैं, सभीको राजपुरोहितजी नगरके बीचवाले मन्दिरमें ठहराते हैं। वही उनका सत्कार करके विदा कर देते हैं। सब कहते हैं कि इन बाबाओंने ही मीरा जैसी सुन्दर, सुशील कन्याका सत्यानाश किया है। विवाहके अवसरपर साधु-दर्शन अशुभ होता है। मीरा बोली- आह, कैसा अज्ञान। सुखका मार्ग सुझानेवाले, हरि-नामकी अलख जगानेवाले अशुभ हैं और शुभ कर्म हैं- ये विषयोंकी कीचड़, मुख घुमाये रहनेवाले?

विवाह के सारे रितीरिवाज कर लेना। विवाह न होनेपर सिसौदियोंकअी तलवारें म्यानसें बाहर निकल जायँगी और चूड़ियाँ तो मेड़तियोंने भी नहीं पहनी है। चित्तौड़के सामने मेड़ता कितनी देर सावधा रहेगा। आपकी विदाई होनेपर ही सब सुखकी

साँस लेंगे। मीरा बोली- बहन, बेटी इतनी भारी होती है भाई?

मीरा बोली- ले आओ भाई। मैं वचन देती हूँ कि ऐसा कुछ न करूँगी, जिससे मेरी मातृभूमिपर संकट आये अथवा परिजनोंका मुख मलिन हो। आप सबकी प्रसन्नतापर मीरा न्यौछावर है। बस, उन्हें बुलाने जाओ आप। जयमल मीराको बुलाकर ले आया। मीराने भजन गाया- **साँवरा म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।**

थें छो म्हाँरा गुण रा सागर औगण म्हाँरा मति जाज्यो जी।
लोकन धीजै म्हाँरो मन न पतीजै मुखड़ा रा सबद सुणाज्यो जी॥
म्हें तो दासी जनम जनम की म्हाँरे आँगण रमता आज्यो जी।
मीराके प्रभु गिरधर नागर बेड़ो पार लगाज्यो जी॥

अहा, संतोंके दर्शन-सत्संगसे कितनी शांति-सुख मिलता है? यह मैं इन लोगोंको कैसे समझाऊँ? वे कहते हैं कि हम भी तो प्रवचन सुनते ही हैं। हमें तो रोना-गाना-हँसना कुछ भी नहीं आता। अरे, कभी खाली होकर बैठें, तब तो भीतर कुछ जाय। बड़ी कृपा की प्रभु। जो संत दर्शन कराये। और जो हो, सो हो, पर अपने प्रियजनों-निजजनों-संतों-प्रेमियोंके बीच निवास दो, उनके अनुभव, उनके मुखसे झरती तुम्हारे रूप-गुणोंकी चर्चा प्राणोंमें जोर हिलोर उठा देती है। जगत्के तापसे मन-प्राण शीतल हो जाते हैं। मैं तो तुम्हारी हूँ। तुम जो चाहो, वही हो, वही हो। मैंने तो अपनी चाह तुम्हारे चरणोंमें रख दी है।

आप सबको मुझे ब्याहनेकी बहुत होस थी न, आज पिछली रातको मेरा गिरधर गोपाल से विवाह हो गया। मीराने कहा- प्रभुने कृपाकर मुझे अपना लिया माँश्री। मेरा हाथ थामकर उन्होंने भवसागरसे पार कर दिया। उसकी आँखोंमें हर्षके आँसू निकल पड़े। माताने पूछा- ये गहने तो अमूल्य है मीरा। कहाँसे आये? पड़ले (बारात और वरके साथ वधूके लिये आनेवाली सामग्रीको पड़ला या बरी कहा जाता है) में आये हैं माता। पोशाकें, मेवा और श्रृंगार सामग्री भी है। वे इधर रखे हैं। आप देख-सम्हाल लें। मीराने लजाते हुए धीरे-धीरे कहा। वीरमदेव अपने भाइयों के साथ आये उन्होंने सब कुछ देखा, समझा और मनमें कहा- क्यों विवाह करके इसे दु:ख दे रहे हैं हम? किन्तु अब तो घड़ियाँ घट रही हैं। कुछ भी बसमें नहीं रहा अब तो। माँने आकर लाड लड़ाते हुए समझाया- बेटी। आज तो तेरा विवाह है। चलकर सखियों, काकियों, भौजाइयोंके बीच बैठ। खाओ, खेलो, यह भजन-पूजन अब रहने दे।

जग जंजाल तो है बेटा। पर तुझे मालूम है कि तेरी तनिक-सी ना कितना अनर्थ कर देगी मेड़तामें?

मीरा बोली- आप चिन्ता न करिये माँ। जब भी कोई दु:ख हर लिया। कहती हुई प्रसन्न मनसे झालीजी चली गयीं।

संवत १५७३ की अक्षय तृतीया का दिन उदय हुआ। इसी दिन मीराँ का विवाह होना निश्चित हुआ। सायंकाल तक चित्तौड़ से बरात आनेवाली थी। प्रात:काल जब माता मीराँ के पास गई तब वह प्रसन्न हृदय से पद गा रही थी। सहज माता ने पूछा- तुझे प्रसन्न देखकर मेरा चित्त आज बहुत ही प्रसन्न है, बेटी। आज तेरे विवाह का दिन है। ऐसे ही प्रसन्न रहना। गिरधर गोपाल की तुझ पर पूर्ण कृपा हैं। मीरा अवश्य माँ, तभी तो गत रात्रि में ही स्वप्न में उन्होंने मेरे साथ विवाह किया और मेरा हाथ पकड़कर मुझे संसार सिन्धु में डूबने से बचा लिया है। माता को आश्चर्य हुआ; बोली- यह कैसे? मैं नहीं समझी बेटी। मीरा ने कहा- जमुनाजी में स्नान कर रही थी, माँ। सहसा बंशी की तान सुनाई दी। उस ओर झाँका तो कुछ आगे कदम्ब की जमुना-जल पर झुकी हुई डाली पर बैठा हुआ वही नंदनंदन बंशी बजा रहा था। उसे देखते ही रह गई। तब शरीर की सुधि न रहने से घाट की सीढ़ी पर से पैर फिसल गया और जल प्रवाह में बहने लगी। वह साँवरा उसी डाली से जमुना-जल में कूद पड़ा और अपने हाथ से मेरा हाथ पकड़कर मुझे बचा लिया। लज्जा के मारे मैं उसकी ओर पूरा देख भी नहीं सकी। मेरे गीले वस्त्र देखकर उसने अपना दुपट्टा

मेरी ओर फेंका। उसके नेत्रों में जाने क्या था, बार-बार उसे देखते रहने की ही इच्छा होती थी। कैसे कहूँ माँ उनकी बातें। कुछ कहने की आवश्यकता नहीं झुँझला कर माता ने कहा। वह समझ गई कि मीराँ का पागलपन और भी अधिक भड़क उठा है। निराश व चिंतित होकर मीराँ से कुछ भी न कहती हुई माता वापस लौट गई।

दिन भर के प्रवास परिश्रम से थके हुए सूर्यभगवान रात्रि भर विश्रान्ति के लिए पश्चिम दिशा में क्षितिज के नीचे उतरने की तैयारी कर रहे थे और उनके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये मानों नूतन सूर्य उदय हुआ हो त्यों चित्तौड़ के सूर्यवंशी महाराज कुमार की बरात बड़े ही ठाट बाट के साथ मेड़ते की सीमा पर आती हुई दृष्टिगोचर हुई। नगारे बजने लगे। नगर में बड़ी ही चहल-पहल मच गई। नर-नारियों के उत्साह का पार नहीं रहा। इस अपूर्व समारंभ को देखने के लिये गाँव-गाँव से आये हुए लोगों का एक बहुत बड़ा समुदाय एकत्र हो गया। जहाँ-तहाँ मनुष्य-ही-मनुष्य दिखाई देते थे।

देखते ही देखते बरात ने नगर में प्रवेश किया। वीरमदेव ने बरातियों का यथोचित स्वागत किया और उनके ठहरने, भोजन एवं मनोरंजन का समुचित प्रबन्ध किया।

लग्न मंडप में ले जाने के पूर्व वीरकुँवरी मीराँ को कुछ आवश्यक सूचनाएँ देने श्याम कुंज में आई। जब वह बार-बार उसे घूँघट रखने की सावधानी रखने के लिये समझाती रही तब अरुचि के भाव से कुछ झुँझला कर उसने कहा- घूँघट की बाधा क्यों पटकती हो, देख लेने दो न, माँ। जी भर कर मेरे सुन्दर वर को। वे तो मेरे ही हैं फिर परदा कैसा? इस अज्ञान रूप घूँघट का ही तो परिणाम है जो जीव जन्म-जन्म तक अपने प्राणाधार-स्वामी से बिछुड़ा हुआ रहता है।

बारात आयी। गोधूलि बेलामें द्वार-पूजन तोरण-वन्दन हुआ। हिन्दुआ सूर्य और मेड़ताधीश बाहोंमें भरकर एक-दूसरेसे मिले और जनवासेमें विराजे, नजर न्यौछावरें हुई। चित्तौड़से आया हुआ पड़ला रनिवासमें पहुँचा तो सब चकित-सी देखती रह गयीं। वस्त्रोंके रंग, आभूषणोंकी गढ़ाई और गिनती, उतनी-की-उतनी, वैसी-की-वैसी, केवल मूल्य और पोतमें अन्तर था। जब मीराको धारण करानेका समय आया तो उसने कहा- सब वैसा-का-वैसा ही तो है माताश्री। जो पहने हूँ वही रहने दीजिये न।

सत्वर ही मीराँ मण्डप में लाई गई। पाणिग्रहण का समय आ गया। इसी समय मीराँ की सखी ने गिरधर गोपाल के स्वरूप को वर राजा की एक ओर छोटे से सिंहासन पर पधरा दिया। सबने यह देखा, परन्तु कोई कुछ न बोला। सब जानते थे कि मीराँ की आज्ञा से ही यह कार्य हुआ है। वर वधू हाथ में माला लिये खड़े थे। उनके बीच में अंतर्पट लिखे राजपुरोहितादि सुयोग्य ब्राह्मण मंगलाष्टक बोलते हुए बीच-बीच में शुभ लग्न सावधान आदि विधि-मन्त्रों का उच्चारण करते जाते थे। मण्डप के बाहर शहनाई व नगारे आदि वाद्यों का मंगल-घोष हो रहा था। महिलाएँ मधुर कण्ठ से गीत गाती थीं।

चित्तौड़से आयी हुई सामग्री उसके दहेजमें शुमार हो गयी। फेरोंके समय बायें हाथसे गिरधरलालको साथ ले लिया मीराने। मंडपमें अपने और भोजराजके बीचमें ठाकुरजीको विराजमान करा दिया। जगह कम पड़ी तो भोजराज थोड़ा परे सरक गये। और मीराने गिरधर गोपालके साथ फेरे ले लिये।

अन्तर्पट हटते ही मीराँ ने श्री गिरधर गोपाल के गले में वरमाला धारण करा दी। सखियों ने पुष्प वृष्टि की। राजकुमार यह देखकर स्तब्ध से ही रह गये। इसी समय पुरोहितानी ने मीराँ के खाली हाथों में दूसरी माला देकर उसे वर राजा के गले में डालने को कहा। तब उसने वर राजा के गले में माला पहनाई। तत्पश्चात् वर-वधू का हस्त-मिलन हुआ।

वर-वधू के वस्त्रों के छोर में गाँठ लगने के बाद भाँवर लेते समय जब राजकुमार आगे बढ़े तो उनका वस्त्र तनिक खिंच-सा गया। उन्होंने उस ओर झाँककर देखा तो एक सखी सिंहासन से ठाकुरजी लेकर मीराँ को दे रही है। इस प्रकार यह सप्तपदी का संस्कार पूरा हुआ।

स्त्रियाँ बारम्बार जोड़ीकी सराहना करने लगीं- जैसी सुशील, सुन्दर अपनी बेटी है, वैसा ही बल, बुद्धि और रूप-गुणकी सीमा पती है। कहने लगी- ऐसा जमाई मिलना सौभाग्यकी बात है। बड़े घरका बेटा होते हुए भी शील और सन्तोष तो देखो। चित्तौड़से आयी दासियां कहने लगी- बल, बुद्धि की क्या बढ़ाई करें, यह तो महाराजाओं-क्षत्रियोंको आभूषण ही है। न्यायमें कितनी सूक्ष्म बुद्धि है। इस आयु में दूध का दूध और पानी का पानी कर देते हैं। बल साहस की कमी तो इस घरानेमें कोई नहीं है। हमारे कुमार जब आखेट करते हैं तो सिंहके समान ललकार मारते हैं। भोजराज मीराको एकांत कक्ष में बोले- मुझे अपना वचन याद है आप चिंता न करें। जगत् और जीवन में मुझे आप सदा अपनी ढाल पायेंगी। भोजराज ने हीरेकी कंठी मीराको उपहार में दी। मीराने वह कंठी गिरधर गोपालको धारण करा दी और बोली- हे प्रभु, इस परीक्षा में साथ दें। भोजराज बोले- मेरे वचन और अपने धनकी रक्षा करना मेरे स्वामी। मीराकी अतुल रूपराशि देखकर भोजराज चकित रह गये और पलकें झुका लीं।

मीराकी विदाई का दिन आ गया। चारों ओर दहेज रखा गया। मेड़ताकी सभी नारियोंने नारी धर्म की शिक्षा दी। भाईयोंसहित वीरमदेव आये और शगुन रूपमें सबने मीराके हाथमें स्वर्ण मुद्राएँ दीं। रतनसिंह अपनी एकमात्र पुत्री को गलसे लगाकर रो पड़े। तब वीरमदेवने ढाँढ़स बँधाते हुए कहा- ससुरालमें माँ-बापको बेटीके कारण ही यश प्राप्त होता है। तुम स्वयं समझदार हो, बड़ोंको सम्मान, छोटोंको दुलार और समान पद-वय वालोंको स्नेह देना। पितृ और पति दोनों कुलोंका सम्मान बढ़े, वैसा व्यवहार करना। मीराने सबके चरणोंमे प्रणाम किया। वीरमदेवने भोजराजसे कहा- हमारी बेटीमें कोई अवगुण नहीं हैं, पर भक्तिके आवेशमें कुछ नहीं सूझता। हमने तो इसे आपको सौंप दी हैं, इसकी भलाई-बुराई, इसकी लाज आपके हाथ हैं। मीराकी माँ मीरासे बोली- तेरे ताऊ वीरमदेवने दहेजमें कुछ भी कसर नहीं रखी हैं, फिर भी बेटी, कुछ और चाहिये तो कहो। मीराने कहा-

दै री माई अब म्हाँको गिरधर लाल। प्यारे चरण की आन करति हौं और न दे मणि लाल।।
नातो सगो परिवारों सारो म्हाँने लागे काल। मीराके प्रभु गिरधर नागर छवि लखि भई निहाल।।

ठाकुरजीको भले ही ले जा बेटा, पर उनके पीछे पगली होकर अपना कर्त्तव्य न भूल जाना। देख, ये कार्तिकेय जैसे गुणवान और सुन्दर पति मिले हैं। सदा उनकी आज्ञामें रहना, इनकी सेवा करना।सास-नणदका आदर करना। दास-दासियोंपर दया दृष्टि रखना। सदा सबकी प्रिय बनकर रहना।

मध्य रात्रि के समय प्रथा के अनुसार वर-वधू के परस्पर मिलन के लिये मीराँ को किसी निर्धारित कक्ष में ले जाने के लिये दासी को आज्ञा हुई। तब पूछने पर मीराँ ने उससे कहा- कैसी पगली है, मेरे श्यामसुन्दर कृपा करके इस दासी को दर्शन देने न जाने किस क्षण में पधार जाँय। उनके लिये ही तो यह शयनगृह सजा रखा है। अब और कहीं मैं जा ही कैसे सकती हूँ। मीराँ श्याम कुंज में तम्बूरा बजाती हुई सुन्दर रागिनी में गाकर अपने प्यारे श्यामसुन्दर को रिझाए कर रही थी। धीरे-धीरे उसकी और सखियाँ व दासियाँ भी उसके निकट आ गईं और गाती हुई वीणा, मृदंग, तानपूरा, करताल आदि विविध वाद्य बजाने लगीं और वातावरण अपूर्व आनन्द मय बन गया।

मीरा को ले जाने के लिए राजमहिलायें श्यामकुंज के द्वार तक आकर ठहर जातीं। वहाँ का रंग-ढंग देख कर कोई वापस चली जाती तो कोई वहीं देखने के लिये ठहर जातीं। मीराँ की माता भी बेटी के आनन्द में भंग होने जैसी कोई बात करने का साहस नहीं कर सकी।

उधर मीराँ का संगीत के साथ नृत्य भी पूरे रंग में आ गया था। नृत्य करती हुई मीराँ पदानुगत मधुर भाव के अपने हाव-

भाव-कटाक्ष युक्त सुन्दर अभिनय द्वारा अपने प्रियतम को रिझा रही थी। प्राण प्यारे से मिलने की उसकी उत्कंठा चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। वायु मण्डल में श्रृङ्गार रस बह रहा था। मीराँ के झाँझर की झनकार में देवताओं का भी भान भुला देने जैसी अद्भुत मोहनी थी।

सहसा मीराँ के नेत्र अन्तरिक्ष में ताकने लगे। उसका नृत्य व गाना रुक गया। श्यामकुञ्ज में प्रकाश का सार उमड़ पड़ा। इस दिव्य झलक से और सबकी सब चकाचौंध होकर मूर्च्छित सी हो गई। सकल इन्द्रियाँ विचार शक्ति भी उनकी स्तम्भित हो गईं। मीराँ के सन्मुख उसके गिरधर गोपाल प्रकट हो गये। उसे वंशीका मधुर स्वर सुनाई दिया। मंद मुस्कराते हुए साक्षात् मन्मथ मन्मथ श्यामसुन्दर एक-एक डग मीराँ की ओर बढ़ने लगे। अब मीराँ अपने को रोक न सकी। मेरे प्राणाधार, प्यारे कहती हुई वह अपने चितचोर से जाकर लिपट गई। उन्होंने भी अपनी जनम-जनम की बिछुड़ी हुई प्रियतमा को हृदय से लगा लिया। मीराँ की प्रेम साधना सफल हो गई। मीराँ और उसके गिरधर गोपाल, प्रिया और प्रियतम, लाड़िली और लाल परस्पर मिलन माधुरी में- उस परम आनन्द की समाधि में तद्रूप हो गये। चहुँओर के वातावरण में ऐसी अलौकिक नीरवता छा गयी मानों समस्त प्रकृति का संचालन कार्य ही रुक गया हो।

अरुणोदय के समय सावधान होकर मीराँ ने आँखें खोलीं; परन्तु स्मृति द्वारा भुक्तानुभव के आनंद-सुधा रस का आस्वादन करते हुए पुन: बन्द कर दीं। जब वीरकुँवरी ने मीराँ को जगाया तब माँ कह कर वह माता से लिपट गई और माता भी अपनी बेटी का सिर सहलाती हुई उससे प्यार करने लगी।

मीराँ का विवाह समारम्भ बड़ी ही धूमधाम से निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हो जानेके बाद मीराँ के साथ बरात के वापस चित्तौड़ लौटने का समय उपस्थित हो गया। मीराँ अब अपने माता-पिता, साथियों और अपनी मातृ-भूमि मेड़ता को छोड़कर ससुराल जायगी इसलिये सबके हृदय में उदासी छाई है, आँखों में बार-बार जल भर आता है। मीराँ ने सब सखियों को समझाया; बेटी के शरीर पर अपना हाथ फेरती हुई माता का वात्सल्य हृदय उमड़ पड़ा, आँसू पौंछती हुई वह कहने लगी- जिस अमूल्य रत्न की वर्षों तक प्राणों से भी अधिक समझकर मैं रक्षा करती आई थी वही आज मुझ से छीना जा रहा है। क्या करूँ, कन्या तो पराया धन है। बेटी, तेरे रूप लावण्य से ये महल जगमगाते रहे, परन्तु अब तेरे बिना सूने महलों में मैं कैसे रह सकूँगी। सूना श्यामकुंज देखकर कैसे धीरज रखूँगी बेटी, मेरे नयनों की ज्योति, मेरे प्राणों की पुतली, अब तेरे बिना मैं अंधी-सी हो जाऊँगी, अब न जाने तुझे मैं कब देखूंगी या नहीं। माता फूट-फूट कर रोने लगी। तब मीराँ ने उसे धैर्य बँधाया। फिर हृदय का भाव आँखों में लाकर कहने लगी- मुझे अब तुम्हारा प्रेम कहाँ मिलेगा, माँ। मेरी कोई बात कभी अच्छी नहीं लगती तो भी अपने प्रेम के कारण मुझे दु:ख न होने देने के हेतु से कुछ कहती नहीं। इसी कारण मैं अब तक गिरधर गोपाल की सेवा नि:शंक भाव से करती रही। मैंने भी केवल तुम्हारे हृदय को व्यथा होती देख कर ही इस विवाह के विरोध में अधिक कुछ नहीं कहा। जो होना था, हो चुका। मेरे गिरधरलाल कीयही इच्छा होगी माँ। परन्तु अब जाते समय तुमसे एक याचना करती हूँ, स्वीकार करोगी न माँ?

मीराँ को हृदय से लगाकर माता ने कहा- बेटी, तेरे लिये ऐसी कौनसी बात है कि जो मैं नहीं कर सकती। बोल बेटी, तेरी क्या इच्छा है? मीराँ- माँ, मुझे धन-सम्पत्ति, वैभवादि कुछ नहीं चाहिये; परन्तु अब तब जिनकी मैं सेवा-पूजा करती रही, जिनके नाना प्रकार से लाड़-लड़ाये और जो मेरे तन में, मन में व रोम-रोम में समा चुके हैं उन श्यामसुन्दर के बिना मैं अपना जीवन कैसे बिताऊँगी? उनके बिना तो संसार में मेरे लिये अंधकार ही है। मुझे अपने गिरधर गोपाल को साथ में ले जाने दो माँ, यही तुम से माँगती हूँ।

मीराँ के नेत्रों से जल टपकने लगा। बेटी की आँखों से अश्रुधारा बहती देखकर माता का हृदय द्रवित हो गया। वह बोली- अपने ठाकुरजी को अपने साथ भले ही ले जा बेटी, परन्तु उनके पीछे पगली होकर ससुराल में अपने कर्त्तव्य को मत भूल जाना। वहाँ सबके प्रिय होकर रहना। अपनी सेवा से पति को अपने आदर भरे व्यवहार से सास, नणंद को प्रसन्न रखना और दास दासियों पर सदा दया की दृष्टि रखना।

मीराँ के पिता रत्नसिंह बेटी से मिले, उसे हृदय से लगा कर प्यार कि व बोले- ससुराल में ठीक ढंग से रहना बेटी, माता पिता को यश अपयश मिलना ससुराल में कन्या के बर्ताव पर ही अवलंबित हैं अधिक क्य कहूँ, तू समझदार है मीराँ। यह जोशी पुरोहित तेरे साथ चित्तौड़ जा रहे हैं। पुरोहितजी, ध्यान रखना, फूल जैसी कोमल मेरी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न हो, यह कहकर रत्नसिंह आँखें पौंछने लगे।

बालक जयमल सहित वीरमदेव भी आये, मीराँ को प्यार करते हुए बोले- बेटी, ससुराल में ऐसे रहना जिससे पितृकुल और पतिकुल दोनों का ही यश बढ़े। कहते-कहते उनका गला भर आया और नेत्रों से जल की दो बूँदें टपक पड़ीं।

मीराँ ने जयमल को प्यार किया। उसके सिर पर हाथ रखकर मन ही मन उसे आशीर्वाद दिया। पश्चात् राजमन्दिर के पुजारी ने श्री चरणामृत और प्रसादी भेंट की। मीराँ ने अपने प्यारे गिरधर गोपाल को उठाकर अपने हाथ में लिये, उन्हें छाती से लगाया तब कुछ क्षण वह भावावेश में आ गई। दासी अपनी स्वामिनी को सम्भालती रही। यह देख वीरकुंवरी ने कहा- मिथुला, मेरी बेटी की ऐसी अवस्था होने पर सम्भाल रखती रहना। तुझे इसीलिए मैं इसके साथ भेज रही हूँ। यह अभी निरी भोली भाली है। मेरी बेटी को कभी अकेली मत रहने देना।

बरात लौटने की व्यवस्था हो गई। मेड़तिया राजकुल की ओर से किये गये स्वागत-सत्कार से चित्तौड़ राजकुल के बराती लोग पूर्ण सन्तुष्ट थे। दहेज में मीराँ को बहुत धन, अमूल्य वस्त्राभूषण और बहुत सी दास-दासियाँ तथा और भी वैभव सामग्री दी गईं। हाथियों का दल मस्ती में झूम रहा था। स्वदेश जाने की उमंग में अश्व समूह हिन-हिना रहा था। नगारे, शहनाई और तुरही आदि बाजे बज रहे थे।

सब सखियों, दासियों, नर-नारियों तथा माता-पिता आदि बड़े बूढ़ों के चरणों में प्रणाम करती हुई उनसे विदा लेकर मीराँ अपने गिरधर गोपाल के साथ पालकी में बैठ गई। तब बड़ी धूम-धाम से वाद्य ध्वनि और जय घोष के साथ बरात मेड़ते से विदा हुई। बरात दृष्टि से ओझल होते ही महल के झरोखे से झाँकती हुई वीरकुँवरी के नेत्रों के आगे अंधकार-सा छा गया। व्याकुल होकर व्यर्थ ही श्यामकुञ्ज में मीराँ को ढूंढने का प्रयास करती हुई वह अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

सब राज्य तथा प्रजा के नर-नारियों के हृदय रूप खजाने में छिपा हुआ अमूल्य धन दिन-दहाड़े डंके की चोट जैसे डाकुओं का कोई समूल लूट ले गया हो, त्यों मेड़ते की दशा हो गई। मीराँ को खाकर मेड़ता निष्प्राण, निश्चेष्ट सा होकर दु:ख सागर में डूब गया।

मीरा चित्तौड़में अपनी ससुराल में- देवताओंका धोक पूजन कर मंगल वाद्य-ध्वनिके साथ बरात विदा हुई। बड़ी धूम-धामसे बरातने चित्तौड़में प्रवेश किया। नर-नारियोंके हर्षकी सीमा नहीं रही। आज महाराणा साँगाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था कि उनके कुमार का पाणिग्रहण हुआ। अस्सी घावोंसे भरी देह, एक हाथ एक पाँव और एक आँखसे अपंग। अपने युवा पुत्र और वर वेशमें वधूके साथ देखकर उनका हर्ष हृदयमें समा नहीं पा रहा था। मीरा ससुराल में भी गिरधर गोपाल में तल्लीन हो गयी। दूसरे दिन बहूकी मुँह दिखाई हुई। जिसने भी मीराको देखा, देखते ही रह गयी। बहू द्वारा गुरुजनोंके चरण-स्पर्श होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सभीने मुँह दिखायी दी। राणा साँगाने पुर और मांडल ये दो परगने

मीराको उपहार में दिये और दो हजार बीघा सिंचित भूमि साथ मेड़तासे आये हुए श्रीगजाधर जोशीको दी।

मीरा ससुराल में भी भक्तिपूर्ण पारिवारिक जीवन बिताने लगी। मीरा प्रतिदिन अपने नित्यकर्ममें लग जाती जिसमें भोजराजकी परिचर्या एवं समयपर सासुओंकी चरणवन्दना भी समाहित थी। मीराकी मीठी राग सुनकर ससुरालके कई लोग इकट्ठे हो जाते। दासियाँ उनकी यथा-योग्य अभ्यर्थना करतीं। मेड़तणीजीकी मीरा नाचने-गानेकी चर्चा महलोंसे राणा साँगाके पास पहुँची। रनिवासकी स्त्रियाँ कहने लगीं जब भी बहुको नाचने गानेको कहते हैं तो कह देती कि मुझे नहीं आता और उस पीतल की मूरतके सामने साधुओं की तरह घुँघरू बाँधकर तालें बजाती हुई थिरक-थिरक कर नाचती हैं। उसकी छोटी सास राना साँगाकी पत्नी हाड़ी रानी (कर्मावतीजी) जिन्होंने हुमायूँको धर्म भाई माना, अपने पति राणा साँगासे बोली- हम बहुत सौभाग्यशाली हैं हमें ऐसी बहू प्राप्त हुई। राणा साँगा बोले- वह हमें नहीं, तीनों लोकोंके स्वामीको रिझानेके लिये नाचती-गाती है। मैंने सुना है कि जब वह गाती है तब आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं। जी चाहता हैं कि ऐसी प्रेममूर्तिके दर्शन मैं भी कर पाता। रानी हाड़ी बोली- यदि ऐसी भक्ति ही करनी थी तो फिर विवाह क्यों किया? राणा साँगा बोले- सुना है मैंने मेड़तेमें मीराने विवाह के लिये मना किया था, पर जवाँई वीरमदेव नहीं माने। तो फिर बेटी अपनी माता-पितासे अधिक क्या कहती? रानी हाड़ी बोली- तब तो यह भक्ति क्या करेगी और महाराज कुमार? वे तो मुफ्त में बलिके बकरे बन गये। राणा साँगा बोले- इसमें बलिके बकरे की क्या बात है? युवराज चाहें तो एक क्या दस विवाह कर सकते हैं। उन्हें क्या पत्नियोंकी कमी है? पर उस सुख में क्या धरा है? यह तो मीरासे शिक्षा ले। रानी हाड़ी बोली- मीरा उनको क्या सिखायेगी? यह आप क्या फरमा रहे हैं। शिक्षा देनेवाले और कोई नहीं बचे दुनिया में? अच्छा जीवन बिगाड़ा कुमार का? राणा सांगा बोले- क्यों व्यर्थ की बातें करती हो हाड़ी जी। शिक्षा लेने-देनेमें स्त्री-पुरुष कहाँ बीचमें आ गये। वह तो जहाँसे मिले, वहींसे ले लेनी चाहिये। जीवन बिगड़ा या सुधरा यह तो तुम्हारी ओछी बुद्धि समझ नहीं पायेगी। हाड़ी रानी बोली- अच्छा सरकार, अबतक बहुएँ सासकी आज्ञामें रहती थीं, ससुरालकी कुलरीतियोंका पालन करती थी और अब सासुओंको बहूकी सुनना पड़ेगा। राणा साँगा बोले- अब तो चुप भी हो जाओ, बुद्धिहीनोंको सब बातें उल्टी ही सूझती है।

एक दिन भोजराज मीराके कक्ष में आये दोनों पति-पत्नी आपसमें बातें करने लगे। भोजराज मीराको बोले- सुना आपने योगकी शिक्षा प्राप्त की है। ज्ञान और भक्ति दोनों आपके लिये सहज है। मुझे भी यह शिक्षा थोड़ी बहुत मिल जाए तो मेरा जीवन सफल हो जाए। थोड़ी दूर पर मीरा बैठी थी। भोजराजकी बात सुनकर मीरा मुस्कराकर बोली- यह क्या फरमाते हैं आप? मेरा अहोभाग्य प्रभुने कृपा की कि मुझे आप मिले। भोजराजने पूछा भक्ति और योग में क्या श्रेष्ठ है। योग क्या होता है और कैसे किया जाता है? इसके लाभ क्या हैं? मीरा बोली- भक्तकी और ज्ञानकी भाँति योग भी अध्यात्मका एक स्वतंत्र मार्ग है और इसका सहायक भी है। योग पहले शरीरको साधता है शरीरके माध्यमसे मनको भी साध लेता है। योगासनसे शरीरको स्वस्थ रखनेका प्रयत्न होता है। प्राणायामसे मन साध लिया जाता है, फिर धारणा ध्यान इत्यादि। कुण्डलिनीके जाग्रत होनेपर उसके उत्थानका प्रयत्न होता है और उसके ब्रह्मरंध्रतक पहुँचनेपर परमानंदकी प्राप्ति। भोजराजने पूछा- इस कुण्डलिके विषयमें तो मैंने भी सुना है पर क्या कभी इसका उत्थान और परमानंदकी प्राप्तिका अनुभव आपको हुआ? मीरा बोली- यह तो सब अपनी-अपनी रुचिकी बात है। अन्यथा भक्त होनेपर भी संसारमें योगी ढूँढनेपर भी नहीं मिलते। आपके लिये योग कठिन है। उसके लिये समय देना पड़ता है। आपपर तो राज्यके बहुत उत्तरदायित्व हैं। भोजराज बोले- मनुष्यका जोर शरीर पर चलता है। मन सबके बस में हो जाय, यह सहज नहीं है। मन जिसने बनाया है वही इसको सम्हालेगा। मीराने कहा- मुझे एक बात आपसे करनी है कि आप जगत् व्यवहार और वंश चलानेके लिये दूसरा विवाह कर

लीजिये। भोजराज बोले- बात तो सच है आपकी किन्तु सभी लोग सब काम नहीं कर सकते। मीरा बोली- इच्छा और शक्ति हो तो अवश्य कर सकते है। भोजराज बोले- रूप और यौवनका यह कल्पवृक्ष पीतलकी इस मूरतपर न्यौछावर नहीं होता और भोजराज शक्ति और इच्छाका दमन कर इन चरणोंका चाकर बननेमें गौरव नहीं मानता। ईश्वर निर्गुण, निराकार है। इन स्थूल आँखोंसे नहीं देखा जा सकता मात्र अनुभव किया जा सकता है। मैं आज तक नहीं समझ पाया सच क्या है, इस उलझन को सुलझाने के लिये बहुत से साधु-सन्तोंके पास रोता-फिरा हूँ, पर मनको बाँधे ऐसा समाधान कहीं नही मिला। मीराने समझाया- ईश्वर निर्गुण है, निराकार भी है। सगुण है, साकार भी हैं। निराकार चेतन रूपसे वह सृष्टिमें व्याप्त है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जैसे वस्त्रमें सूत है और जैसे लहरोंमें पानी है, वैसे ही उसके बिना जगत्‌की कोई सत्ता नहीं है। यह सब सुनकर ही विश्वास करना पड़ता है। बिना श्रद्धा और विश्वासके कुछ भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि कार्य अपने कारणको नहीं जान सकता। ईश्वर निर्गुण निराकार आकाश की भाँति है, प्रकाशकी भाँति है। वह न प्रसन्न होता है न अप्रसन्न। उससे जगत्‌में प्रकाश है, चेतना है। उसे अनुभव किया जा सकता है परंतु देखा जाना अशक्य है। जैसे पवनको नहीं देखा जा सकता, किन्तु अनुभव किया जा सकता है। वही ईश्वर सगुण और साकार भी है। यह प्रेमसे बसमें होता है, रुष्ट और तुष्ट भी होता है। अंतरकी पुकार सुनता और दर्शन भी देता है।

भोजराज बोले- भगवानके तो बहुत नाम रूप सुने हैं। नाम-रूपोंके इस जंगलमें मनुष्य भटक तो नहीं जाता। मीरा बोली- भटकनेवालोंको बहानोंकी कमी नहीं रहती। भटकावसे बचना हो तो सीधा-सा उपाय है कि जो नाम-रूप स्वयंको अच्छा लगे, उसे पकड़ ले और छोड़े नहीं। दूसरे नाम-रूपमें भी मेरे ही प्रभु हैं, यह समझकर उनका सम्मान करें और उनको माननेवालोंकी अवहेलना न करें। जैसे सभी नदियाँ समुद्रकी ओर बहती हैं और उसीमें समाती हैं, वैसे ही सभी धर्मग्रन्थ, सभी सम्प्रदाय सभी मत उस एक ही ईश्वरकी ओर जानेका पथ सुझाते हैं, उनकी विश्रांति उसीमें होती है। मनमें यदि दृढ़ निश्चय हो तो उपासना फल देती है। भोजराज ने पूछा- क्या भगवान उपासना से मिलते हैं? मीरा बोली- नहीं, उपासना मनकी शुद्धिका साधन है। संसारमें जितने भी नियम हैं, संयम, धर्म, व्रत, दान हैं, सब-के-सब जन्म-जन्मान्तरोंसे मनपर जमे हुए मैले संस्कारोंको धोनेके उपाय मात्र हैं। वे धुले और फिर भगवान तो सामने वैसे ही हैं, जैसे आरसीके स्वच्छ होते ही अपना मुख उसमें दिखने लगता है। उन्हें कहींसे आना तो है नहीं कि विलम्ब हो। भगवान न उपासनाके बसमें हैं और न दान-धर्मके। वे तो कृपा-साध्य हैं, प्रेम-साध्य हैं। उन्हें अपना मानकर उसके सम्मुख हृदय खोल दें। कोई अन्तर, कोई लुकाव-छिपाव न करें तो उनसे अधिक निकट कोई कुछ है ही नहीं और यदि यह नहीं हैं तो दूरीकी कोई सीमा नहीं है।

भोजराज ने पूछा- मनुष्यके पास अपनी इन्द्रियोंको छोड़कर अनुभवका कोई अन्य उपाय नहीं हैं, फिर जिसे देखा नहीं, जाना नहीं, व्यवहारमें बरता नहीं, उससे कैसे प्रेम सम्भव हो? मीरा बोली- हमारे पास एक इन्द्रिय ऐसी है, जिसके द्वारा भगवान अंतरमें साकार होते हैं। वे इन्द्रिय है कान। बारम्बार उनके रूप-गुणोंका वर्णन सुननेसे विश्वास होता है और वे हियमें प्रकाशित हो उठते हैं। प्रतीककी पूजा-भोग-राग करके हम अपने उत्साहको रूप दे सकते हैं। भोजराज ने पूछा- बिना देखे उसका प्रतीक कैसे बनेगा? मीरा बोली- जो निराकार है, उसका मन-चाहा आकार बनाया जा सकता है। जो सर्वत्र है, वह तो उसमें भी है ही। भोजराज ने पूछा- आपने कभी साक्षात दर्शन किये? मीरा बोली- आपसे क्या छिपाऊँ। यद्यपि यह बातें कहने-सुननेकी नहीं है। मनसे तो वह रूप पलक झपकने जितने समय भी ओझल नहीं होता, किन्तु अक्षय तृतीयाके प्रभातसे पूर्व मुझे स्वप्न आया कि प्रभु पति बनकर पधारे, देवता और द्वारिकावासी बारातमें आये। दोनों ओर चँवर डुलाये जा रहे थे। सिरपर छत्र तना था। उस रूपका कैसे वर्णन करूँ? जिस अश्वपर वे विराजे थे, वह श्यामकर्ण

अश्व पूर्ण श्वेत था, पर कान काले, अरुण चूड़-सी उसकी गर्दन थी, उसका साज सहस्त्रों मशालों और दीपोंके प्रकाशमें चमचमा रहा था। ऐसे पाँव धरता था मानो भूमिपर अंगारे बिछे हों। यद्यपि इस जीवनमें संसारमें मैंने आपके राजकरण अश्वके समान शुभलक्षण और सुन्दर अश्व नहीं देखा तथा आपके समान कोई सुन्दर नर नहीं दिखायी दिया, पर उस रूप के सम्मुख कुछ भी नहीं, कुछ भी तो नहीं। मीरा बोलते-बोलते रुक गयी। यह सुनकर भोजराज चित्र लिखेसे मीराकी तरफ देखते रहे। भोजराज मीरासे बोले- अब आप ही मेरी गुरु हैं। मुझ मतिहीनको पथ सुझाकर ठौर-ठिकाने लगा दिया। मीरा बोली- उठकर विराजिये। प्रभुकी अपार सामर्थ्य है। शरणागतकी लाज उन्हें ही है। कातरता आपको शोभा नहीं देती। मीराने उठकर उन्हें जल पिलाया। भोजराज बोले- आप ही कोई सरल उपाय बतायें। पूजा-पाठ, नाचना-गानपा, मँजीरे या तम्बूरा बजाना मेरे बसका नहीं है। मीरा हँसकर बोली- यह सब आपके लिये आवश्यक भी नहीं है। आप जो भी प्रभुके लिये करें जैसे सेवक स्वामीकी आज्ञासे अथवा उनका रुख देखकर कार्य करता है जो भी देखें, उसके हाथकी कारीगरी देखें। कुछ समय पश्चात् अभ्याससे सारा ही कार्य उनकी पूजा हो जायगी। भोजराज बोले- युद्ध भूमिमें शत्रु संहार, आखेटमें जानवरोंका वध, न्यायासनपर बैठकर अपराधियोंको दण्ड देना क्या यह सब उन्हींके लिये कर्म किये जाते हैं? मीरा बोली- हां। नाटकमें पात्र तो मरने और मारनेवाले दोनों अभिनय नहीं करते क्या? भोजराज बोले- नाटक में तो मरने और मारनेवाले दोनों भी जानते हैं कि तलवारें लकड़ी की है न मैं मरूँगा, न सामनेवाला मरेगा लेकिन मैं तो साँग लेकर लोगोंके मस्तक प्रात: से सायंकाल तक काटते रहता हूँ। रक्त उबल-उबलकर धरतीको सींचता रहता है। सोचता हूँ कि एक दिन ऐसे ही इस देहका रक्त भी मेरी मातृभूमिको सिक्त कर देगा। मीरा बोली- उन्हीं पात्रोंकी भाँति आप भी यह समझे कि मैं न मरता हूँ न वे मरते हैं। प्रभु की आज्ञानुसार उन्हें मुक्ति दिला रहा हूँ। यह देह वस्त्र ही तो हैं। जब इस देहसे बहुत-सी देहोंको भय उपस्थित हो जाता है तो उसे बदलना प्रभु आवश्यक समझते हैं तो वो किसीको या आपको निमित्त बनाकर उस देह रूपी वस्त्रको फाड़कर नष्ट कर देते हैं। तब वह आत्मा नवीन देह धारण करके शुभ कर्मके लिये प्रस्तुत हो जाती है। इस प्रकार देह ही देहको नष्ट और उत्पन्न करती है। आत्मा तो विशुद्ध परमात्माका अंश है। इसमें राग-द्वेष, क्रोध-मोह कैसे आ सकता है? यह सब त्रिगुणके खेल हैं। जगत् प्रभुका रंगमंच है। जो सर्वत्र है, उसमें अवकाश कैसे, कहाँसे आयेगा? दृश्य और दृष्टा वही है। अपनेको कर्ता मानकर व्यर्थ बोझ नहीं उठायें। कर्ता बननेपर तो कर्म-फल भी भुगतना पड़ता है, तब क्यों न दानकिया की तरह जो वह चाहे, वही किया जाय। मजदूरी तो कर्ता बननेपर भी उतनी ही मिलती है, जितनी मजदूर बननेपर, साथ ही स्वामीकी प्रसन्नता भी प्राप्त होती है। अवश्य ही यह ध्यान रखनेकी बात है कि जो पात्रता आपको प्रदान की गयी है, उसके अनुसार अभिनयमें कमी न आने पाये।

इतने में ही दासीने आकर सुचना दी- महाराजा भोजराज के अनुज कुँवर रतनसिंह पधार रहे है। मीराने पूछा- आज आपके कदम यहाँ कैसे पड़ गये? रतनसिंह बोले- भाभीश्री, आप कभी याद करनेकी कृपा ही नहीं करती। बहुत इच्छा रही है आपके दर्शनोंकी, किन्तु आपको तो भजन-पूजनसे अवकाश ही नहीं मिलता। भोजराज एक बाँह पकड़कर उन्हें अपने समीप गद्दीपर बिठा लिया। मीरा बोली- पहले आप दोनों भाई कुछ जलपान कर ले फिर बादमें आखेट पर चले जाना। पशु वहीं मारे जायँ, जो गाँवों और जनपदोंके लिये विपत्ति स्वरूप हों, जो इतने वृद्ध हों कि भोजन जुटानेमें असमर्थ हों, जो टोलीसे अलग हो जानेपर एकल हो गये हों, ऐसे पशुओंको न मारना राजाके लिये अभिशाप है। वैसे क्या उचित है और क्या अनुचित है, यह बात किसी औरसे सुननेकी आवश्यकता नहीं होती। भीतर बैठा अंतर्यामी ही उचित-अनुचितका बोध करा देता है। उसकी बात अनसुनी करनेसे वह ध्वनि धीमी पड़ती जाती है और नित्य सुननेसे और उसपर ध्यान देकर

उसके अनुसार चलनेपर अन्त:करणकी बात स्पष्ट होती जाती है। फिर तो अड़चन रहती नहीं। कर्तव्यपालन राजाके लिये सबसे बड़ी पूजा और तपस्या है। दोनों भाई अल्पोपहार करके आखेट पर निकल गये।

मीराकी नणंद उदाबाई के उलाहने- थोड़ी देर बाद मीराकी ननंद उदयकुँवर बाई मीराके महल में आयी। उसे देखकर मीराने कहा- आज पश्चिमसे सूर्य यहाँ कैसे निकल आया? उदयकुँवर बाईने कहा- क्या करें, जब आपको ही हमारी सुध लेनेका अवकाश नहीं तो हम ही क्यों न आपके पास हाजिर हो जायँ। आप तो जैसे दूजका चाँद हो गई है। चाँद तो फिर भी प्रत्येक महीने दर्शन देता है किन्तु आप तो उससे भी अधिक दुर्लभ हैं। लगता है कि कुँवर भोजराजका विवाह हुआ ही न हो।

मीरा बोली- बाईजी, प्रयत्न तो करती हूँ कि समयपर सबके चरण-स्पर्श कर आऊँ। जाती भी हूँ पर अधिक समय वहाँ ठहर नहीं पाती। यहाँपर मेरे ठाकुरजीके भोगका समय हो जाता है। दिनको थोड़ा समय मिलता है तो आपके भाई के साथ जोशीजी से शास्त्रपुराण सुनती हूँ। मेरी विनती हैं कि यदि आपको समय हो तो कृपा कर आप ही दर्शन दे दिया करें। नन्द उदयकुँवर बाई बोली- भाभी मेरी तो समझ में नहीं आता कि इस पीतलकी मूर्तिमें आपका कैसे मन लग जाता है और बोलते-चालते मनुष्योंसे आप दूर-दूर रहती हैं। मीरा बोली- विधाता के पास संसारको चलानेके लिये बहुत प्रकारके साँचे हैं बाईजी। जिनसे वह तरह-तरह के जीव मनुष्यों और उनके स्वभाव घडता है। इनमें से एक साँचा भी ऐसा नहीं जो एक-दूसरेसे मिलता हो। माताश्री आपसे बड़ी नाराज हो रही थी। कह रही थी कि घर-आँगन में तो आपको अच्छा नहीं लगता और गाँव में बैठकर गाती नाचती रहती है। हम कहती है तो मना कर देती हैं और अपने महलतें दिन उगते ही धमाधम आरम्भ हो जाती है। दासियों से मालूम पड़ा आप भैयाके साथ बैठती भी नहीं, भोजन भी नहीं करती, अलगसे सोती हैं। क्या मेरे भाई कुरूप हैं? कोई ऐब है उनमें, क्यों आप उनसे इतना अलग-थलग रहती हैं? उनका जी कितना दु:खता होगा। आप उनके बारे में क्यों नहीं सोचती? क्यों नहीं देखती कि उनका मुख कैसा श्रीहीन हो गया है? वे कितने गम्भीर रहने लगे हैं? पहले रनिवासमें पधारते ही कहते थे कि बड़ी भूख लगी हैं कुछ खाने को दो। वे छोटे भाई विक्रमको गोद में लेकर खेलते रहते। अब तो कभी-कभार ही महलोंमें पधारते हैं। कुछ खानेको दे तो कह देते हैं भूख नहीं है। विवाह होते ही उनकी भूख कहाँ भाग गयी। दादीजी हमेशा कहती हैं कि नयी ब्याही हुई बहू आयी है, हँसी-खुशी, राग-रंग करें, पर यहाँ तो बिल्कुल सुनसान है। उन्हें शिकायत हैं कि आप कभी तो दोपहरमें धोक देने जाती हैं। कभी आती हैं और कभी तो आती ही नहीं। ऐसा क्यों करती हो भाभी? उनके धोक देनेसे बड़े-बुढोंका आशीर्वाद ही मिलता है कोई गालीगलौज तो नहीं करते। आप इतनी पढ़ी-लिखी समझदार होकर भी गुरुजनोंको नाराज होनेका अवसर क्यों देती है?

मीरा बोली- आपकी बात शत प्रतिशत सच है। पर बाईजी मैं क्या करूँ? मुझे तो होश ही नहीं रहता। वहाँ उपस्थित होनेमें मुझे विलम्ब हो जाता है। मुझे जैसे अच्छा लगता है वैसे राग-रंग तो मनाती ही हूँ। मैंने आपके भैयाको पहले ही अर्ज कर दी की आप दूसरा विवाह कर लीजिये। आपसे भी अर्ज करती हूँ कि पिताश्री से कहकर उनका दूसरा विवाह कर दीजिये। मेरा तो रास्ता ही न्यारा है। प्रयत्न करके भी मैं दुनिया के व्यवहारको पूरी तरह नहीं निभा सकती। वैसा करनेकी मुझे आवश्यकता भी नहीं। अपनी समझसे मैं किसीको अप्रसन्न नहीं करना चाहती, पर यह बात मेरे वशसे बाहर है, तब क्या हो? माताश्री सासजी सच फरमाती हैं, परन्तु मुझे गाली-गीत आते ही नहीं और भजन तो भगवानको सुनानेके लिये होते हैं। मनुष्यके लिये तो मैं गाती नहीं। मेरा नाचना-गाना, खाना-पीना, सोना-जागना, हँसना-बोलता, तन और मनकी प्रत्येक चेष्टा ठाकुरजीके लिये हैं। मेरे पति गिरधर गोपाल हैं। मेरा चूड़ला अमर है। वह किसीके आशीर्वादके मोहताज नहीं। फिर भी मैं अपनी ओरसे प्रयत्न करती हूँ कि मेरे कारण किसीको कष्ट न हो। मेरी देहकी शक्तिकी सीमा है सबकी

सेवामें मेरा यही निवेदन है कि भगवानकी सेवा-पूजा और भोग रागसे समय बचा तो उसे मैं आप लोगोंकी सेवामें लगा दूँगी। यदि समय न बचे तो आप सभी कृपापूर्वक मुझे क्षमाकर दीजिये।

मीराकी यह बातें सुनकर उदाबाई आश्चर्य में भरकर मीरा का मुख देखती रहीं और क्रोध से बोली- दूसरा विवाह करा दो, यह कहना बहुत सरल है पर जब सौतकी शूल छातीमें लगेगी तब मालूम होगा कि सौत क्या होती है? आप कहती हैं कि आपके पति ठाकुरजी हैं तो फिर मेरे भैया आपके क्या लगते हैं। फिर आपने उनके साथ फेरे क्यों लिये? क्यों आयी उनके साथ आप यहाँ? ब्याह करके ठाकुरजी के साथ क्यों नहीं चली गयीं। फिर चित्तौड़ क्यों चली आयी? क्या उस पीतलकी मूरतसे मेरे भाई गये बीते हैं? क्या कमी है उनमें? कितने बड़े-बड़े राजवंशोंसे सगाईका प्रस्ताव आया किन्तु पिताजी को भी न जाने क्या सूझी कि भुवा गिरजा की बातोंमें आकर अपने बेटेको डुबोया। मीरा बोली- श्यामसुन्दर के रूप-सागरकी एक बूँदसे सारा संसार सुन्दरता पाता है। उस सागरको देखे बिना उसकी कल्पना कैसे हो सकती है और यदि कोई देख ले तो कहेगा कैसे? उनके लिये अक्षर और शब्द कहाँसे आयेंगी जिससे उनके रूपका वर्णन हो। असीमको सीमामें कैसे बाँधा जायँ यह कहकर मीरा अचेत हो गयी। उदाबाई घबरा गई। इतने में मंगला दासी आयी और बोली जब ठाकुरजी इनके सामने पधारते हैं तब यह ऐसे ही अचेत हो जाती हैं। यह देखकर उदाबाई चली गयी।

तीज का त्यौहार आया। झूला महोत्सव शुरू हुआ। सभी राजघराने के लोग झूला झूलनेका आनन्द लेने लगे। मीराको स्त्रियोंने घेरकर उसके पतिका नाम पूछा और मीराने हुलसकर कहा-

राजा है नंदरायजी जाँको गोकुल गाँम। जमना तट रो बास है गिरधर प्यारो नाम।।

स्त्रियाँ बोली हम तो कुँवरसा का नाम पूछ रहे हैं। मीराने कहा- इनका नाम तो भोजराज है। मीरा अपने महलमें चली गयीं और गुनगुना रहीं- **हिडोंरो पड्यो कदम की डाल म्हाँने झोटा दे नंदलाल।**

पपीहरा काहे मचावत शोर। पिया पिया बोले जिया जरावत मोर।।

अंबवा की डार कोयलिया बोले रहि रहि बोले मोर। नदी किनारे सारस बोल्यो मैं जाणी पिया मोर।।

मेहा बरसे बिजली चमके बादल की घनघोर। मीरा के प्रभु बेग दरस दो मोहन चित के चोर।।

मीराने अपनी दासी मंगलाको कहा- मेरे यहाँ तो आज प्रभु पधारे हैं। महाराज कुमारसे निवेदन कर आ कि मैं तो आज अपने गिरधर गोपालके पास ही सोऊँगी। घड़ी भरमें तो मेड़तणीजीके महलमें गाने-बजानेकी धूम मच गयी। दासीने जाकर भोजराजको मीराका हुकूम सुनाया कि आज महारानीजी अपने गिरधर गोपालके मंदिर में ही सोयेंगी उनके प्रभु पधारे हैं। भोजराज गिरधर गोपालके कक्षमें पधारे। वहाँ पर मीराकी प्रेम विह्वल दशा देखी और सोचने लगे कौन है यहाँ क्या हो रहा है? मुझे क्यों नहीं दिखाई दे रहा है? मीराने भोजराज को देखा और बोली- पधारिये महाराजकुमार। मेरे स्वामी गिरधर गोपाल आज यहाँ पधारे हैं। इनसे मिलिये। ये है द्वारिकाधीश मेरे पति। और भोजराजका परिचय कराते हुए कहा- ये हैं चित्तौड़के महाराज कुमार युवराज भोजराज मेरे सखा। भोजराजने पूछा- मुझे क्यों नहीं दिखायी दे रहे है। मीरा हँसकर बोली- आप पधारें हैं ये कह रहे हैं कि आपको दर्शन होनेमें अभी समय हैं। मीरा गाने लगी-

आज तो राठौड़ीजी रे महलाँ रंग छायो। आज तो मेड़तणीजी रे महलाँ रंग छायो।।

कोटिक भानु हुवौ प्रकाश जाणे के गिरधर आया। सुर नर मुनि जन ध्यान धरत हैं वेद पुराणन गाया।।

मीराके प्रभु गिरधर नागर घर बैठ्याँ पिय पाया।।

आज मीराकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं है। आज जीवनका चरम फल प्राप्त हुआ है। आज उसके भव-भवके भरतार पधारे

हैं उसकी साधना उसका जीवन सफल करने। सबसे बड़ी बात यह है कि रँगीले राजपूतके वेशमें हैं प्रभु, केसरिया साफा, केसरिया अँगरखा, लाल किनारीकी केसरिया धोती और वैसा ही दुपट्टा, शिरोभूषणमें लगा मोरपंख, कानोंमें हीरेके कुण्डल, गलेके कंठेमें जड़ा पद्मराग कौस्तुभ, मुक्तामाल वह वैजयन्ती, कटिका वह रत्नजटित कमरबंद, हाथोंमें गजमुख कंगन और सुन्दर भुजबंद, चरणोंमें लंगर और हाथोंमें हीरे पन्नेकी अँगुठियाँ, इन सबसे ऊपर वह रूप, कैसे उसका कोई वर्णन करे। उसे देखकर मन अपनी खुदी बचा ही कहाँ पाता है? यदि रहे भी तो उसकी नन्हीं सीप-सी कायामें वह रूप समंद कैसे समाये? अथाहकी थाह कौन ले? असीमको अक्षरोंमें कैसे बाँधे? बड़ी-से-बड़ी उपमा जहाँ ओछी पड़ जाती है, श्रुतियाँ नेति-नेति कहकर चुप साध लेती हैं, कल्पनाके पंख समीप पहुँचनेसे पूर्व ही थककर ढीले पड़ जाते हैं, वह तो अपनी उपमा आपो-आप हैं। कोई दूसरा हो तो बताया जाय कि ऐसा, किन्तु क्या यही कहकर संतोष मिल जाता है? यदि ऐसा होता तो सरस्वती माता, शेष, सनक, नारद और हर कभीके चुप हो गये होते। किन्तु न उनकी जिह्वाएँ विराम लेती हैं और न मन भरता है। वह इतना मधुर, सदावलोकनीय, प्रियातिप्रिय, नयनाभिराम, सुवासित और सुकोमल क्या कहा जाय, कैसे कहें, कैसे बतायें कि वह क्या है, कैसा है, क्या नहीं है वह? मीरा भी केवल इतना ही कह सकी।

थाँरी छवि प्यारी लागे राज राधावर महाराज। रतन जटित सिर पेंच कलंगी केशरिया सब साज॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल रसिकाँ रा सरताज। मीरा के प्रभु गिरधर नागर म्हाँने मिल गया ब्रजराज॥

रनिवासमें उदाबाई की बातें सुनकर असन्तोष छा गया। धीरे-धीरे भोजराजपर भी अध्यात्म रंग चढ़ने लगा। राणा साँगाने अपने पुत्र रतनसिंहके द्वारा भोजराजसे दूसरे विवाहके लिये पुछवाया। भोजराजने उत्तर दिया- गंगाजल पीनेके पश्चात हिमालय का गंदा पानी पीनेका मन नहीं होता। आप श्री रतनसिंहका विवाह करवा दें, जिससे रनिवास का क्षोभ दूर हों। भोजराजका रहन-सहन सादा हो गया। उन्हें सात्विक भोजन रुचिकर लगने लगा। फरियादियोंके लिये समय की रोक नहीं रही। व्यर्थके हँसी-तमाशे और खेल-कूद छूट गये हैं। बातोंका विषय आध्यात्मिक, देशकी तात्कालिक स्थिति, कर्तव्य, राज्य-प्रबंध, युद्ध-भूमि अथवा शस्त्राभ्यास ही रह गया। मीराकी बुराई सुनना उन्हें सक्त नापसंद हो गयी। सामन्तोंने भोजराजके पिताश्री राणा साँगा से निवेदन किया- ये मेड़तणीजी महाराजकुमारको बाबाजी बना देंगी। फिर वंश कैसे चलेगा? ऐसे योग्य वीर पुरुषकी तलवारें मँजीरे बजाने लगेंगी तो हमारा और मेवाड़का दुर्भाग्य द्वारपर खड़ा है। हमारे राय से महाराजकुमारका एक विवाह कर दिया जाय। यह बात सुनकर महाराणा हँस पड़े और बोले- भले ही मेड़तणीजीके महलोंमें मँजीरे बजे या तम्बूरे बजे पर रणमें तो तलवारें ही चलेगी। मेरे पश्चात भोजराज सिंहासनपर बैठेगा तो निश्चय मानिये, रामराज्य स्थापित होगा। मुझे गुजरातमें एक ज्योतिषी मिला था। वह ललाटकी रेखा देखकर सत्य भविष्य बताया। जिससे तुम्हारा वंश बढेगा उस पुत्र ने तो अभी जन्म ही नहीं लिया। अभी जो हैं, इनमें कोई पुत्र चिरंजीवी नहीं हैं, प्रथम पुत्रकी वधू तुम्हारे वंशको विश्वविख्यात कर देगी। जो उसे कष्ट पहुँचायेगा, वह नष्ट हो जायेगा। भोजराज तो अपने कर्त्तव्य-पालनमें प्रमाद नहीं करते। वे तो मीराकी देखा-देखी ही सही भक्ति कर रहे है। आखिर उनका मानस जन्म सुधर जायेगा। वो स्वयं नियम से खरे उतरते हैं, अखाड़ेमें उतरते हैं, शस्त्राभ्यास करते हैं, आखेटपर जाते हैं, न्यायासनपर बैठकर उस उत्तरदायित्वका पूर्ण रूपसे निर्वाह करते हैं। फिर यह उनका निजी जीवन, उससे किसी अन्यके जीवनमें पीड़ा-कष्ट नहीं देते तो फिर उन्हें अपनी इच्छानुसार क्यों नहीं जीने दिया जाय? मन्त्रियोंने कहा- सरकार, राजा या युवराज का कोई निजी जीवन तो नहीं होता। राजकुमार विशेषकर युवराजको बचपन से अनुशासन की डोरीमें बाँध दिया जाता है। जैसे मूर्तिकार पत्थरको हथौड़ी और छैनीसे मार-काटकर मूर्ति बना देता है, वैसे बालक राजकुमारको राजाके रूपमें गढ़ा जाता

है क्योंकि वह लाखोंका आदर्श होता है। उसके सबल कंधे उत्तरदायित्व वहन करनेके लिये होते हैं। उसका प्रत्येक कार्य अनुकरणीय होता है। यदि उसमें खोट आयेगी तो प्रजामें, राजपरिवारमें वह खोट आयेगी। अत: जो भी निर्णय लिाय जाय, राज्य और प्रजाका हित सोचकर लिया जाय। यह एकलिंगछत्र का आसन हैं। इसके हितपर किसका जीवन न्यौछावर हुआ अथवा किसका नष्ट हुआ, यह विचारणीय नहीं है। इसीलिये मैंने आपके इस बातका निवेदन किया।

राणा साँगा बोले- और सब गुण तो भोज में हैं, केवल यही डर है कि वह भक्त हो जायगा तो प्रजा भी भक्ति करने लगेगी। यही बात आपको कष्टदायक लग रही हैं। मन्त्री बोला- हाँ सरकार, भक्ति बुरी नहीं है, पर यदि सैनिक सबेरे उठकर ताल-मँजीरे, तम्बूरे बजाने लगें तो इसके परिणामपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिए। इस चित्तौड़ राज्यपर तो बहुतोंकी गिद्ध दृष्टि लगी है। प्रजा इतनी समझदार नहीं होती। कर्तव्य भी करें और भक्ति भी। वह तो अन्धानुकरण करती है। यदि राजा ब्रह्मचारी हुआ तो प्रजा या तो नपुंसक होगी या व्यभिचारी। यदि राजा राज्यकार्य के समय भजनमण्डलीमें बैठता है, आखेटसे जी चुराता हैं तो वन-पशु प्रजाकी हानि ही करेंगी।

शत्रुकी अभिसंधियोंसे राज्य और प्रजाको बचानेकी बात सोचना छोड़कर जो राजा आँख मूँदकर ध्यान लगायेगा, इस अनीतिका फल उसे और प्रजाको भुगतना होगा। ध्रुव, अम्बरीष, युधिष्ठिर सतयुग, त्रेता, द्वापरमें हुए होंगे सरकार। कुछ तो युगका प्रभाव भी होता है। कलियुग क्या अपना प्रभाव छोड़ेगा? प्रजाकी सुख, शांति और अनुशासनके लिये राजाको आवश्यक हिंसा स्वीकार करनी ही चाहिये। यदि राजा या राज्य अहिंसक हुआ तो प्रजा अराजक हो जायगी। राज्यको भीतर और बाहर दोनों ओरसे विपत्तिका सामना करना पड़ेगा। इतिहास साक्षी है कि बौद्धोंके प्रभावने ही विदेशी हमलावरोंको आक्रमणके लिये प्रोत्साहित किया था। विष्णुगुप्त चाणक्यने यह बात समझी और समझी पुष्पमित्रने तभी आक्रमणकारी ठेले जा सके। किन्तु जो हानि हो गयी थी, उसे तो किसी प्रकार लौटाया नहीं जा सका। कौन नहीं जानता कि रामगुप्तकी अकर्मण्यता और नपुंसकताने शकोंको आमंत्रण दिया। यदि समयपर ब्राह्मण वररुचि उसे मार न देता तो कौन जाने कितना अनर्थ और होता। देश विक्रमादित्य जैसे योग्य शासकसे वंचित रहता। पृथ्वीराजमें स्त्री-वशता न होती तो कान्ह जैसे नरपुंगव यों न मारे जाते, कैमाष जैसे बुद्धि सम्पन्न महामंत्रीका वध न होता और चामुण्डरायको कारागारका सेवन न करना पड़ता। जयचंद और उनमें शत्रुता न होती तो गौरी जैसे शत्रुसे पराभव भी प्राप्त न होता। राजाका तो कुछ भी अपना नहीं होता, कोई सगा नहीं होता। केवल धर्म और कर्त्तव्य उसके अपने हैं।

राणा साँगा बोले-आपकी बातें सुन बहुत अच्छा लगा। इस राज्यका और मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे सामन्त हमें प्राप्त हैं। अब यदि मृत्यु आ भी जाय तो निश्चित मर सकूँगा कि मेवाड़ आप जैसोंके हाथमें सुरक्षित है। मैंने युवराजके पास विवाह प्रस्ताव भेजा था, पर वे इंकार कर गये। आप और हम प्रयत्न करेंगे कि मेवाड़को अकर्मण्य शासक कभी न मिले, किन्तु समयसे बढ़कर शासक कोई नहीं हैं। आपको ज्ञात है न कि मैं मेवाड़का भावी शासक बनूँगा, इस भविष्यवाणीको सुनते ही माताजीके मंदिरमें मेरे बड़े भाईने मुझपर आक्रमण कर दिया था। उस समय काका सूरजमल आड़े आ गये, पर एक आँख तो जगमालकी तलवारकी भेंट चढ़ ही गयी। चाहता तो मैं भी था कि सब मिलकर उसे मार डालते, पर क्या भ्रातृहन्ता होकर भविष्यमें इस गद्दीपर बैठ पाता। मेवाड़की राजगद्दीसे मुझे बकरी चराना अधिक अच्छा लगा। धर्म और कर्तव्य पालन का प्रयत्न ही हमारे वशमें है। इस अपंग राणा साँगाको कभी आप इनसे विमुख नहीं पायेंगे।

विवाहके छ: महीने पश्चात ही मेड़तामे मीराकी माँ झालीदेवीका देहान्त हो गया। जब यह खबर मीराको मालूम पड़ी तो उनकी आँखे भर आयी और कहने लगी मेरे सुखके लिये वे कितनी चिंतित, कितनी विकल रहती थी। मेरे अनिष्टकी

आशंकासे सदा उनके प्राण काँपते रहते थे। वह इतनी भोली, सरल थी यह जानते हुए भी कि बेटी जो कह रही है, उचित ही है, परंतु दूसरोंके कहनेपर सिखाने चली आतीं। उसकी आत्माको शांति मिले, सर्वेश मंगल हो यह कहकर मीरा स्नान करके अपना शोक उतारा और पहलेकी तरह कार्य में लग गयी। जैसे लोगोंने सोचा था मेड़तणीजीके महलमें रोने-कूटनेकी ध्वनि होगी पर राणा साँगा की पत्नि को लगा कि मीराको किसीने बताया ही नहीं होगा। मीराने दासीको कहा- जाकर सासूजी को अर्ज करना कि उसे यह समाचार मालूम पड़ गया है। प्रभुकी इच्छा थी जो पूरी हुई। उसकी खुशीमें ही मैं खुश हूँ। माँका धरतीपर इतने ही दिनोंका अन्न-जल लेना बाकी था। जाना तो सभीको है, कोई आगे और कोई पीछे। उनकी क्या चिन्ता करें, जो चले गये। अपनी ही कर लें तो बहुत है। मीरा का यह उत्तर सुनकर सब भौंचक्के रह गये और कहने लगे यह कैसी पुत्री है? चैत्र मास में गणगौर आयी। सासकी भेजी हुई दासी आयी और हुकुम सुनाया- सूर्योदय होते ही पूजा का मुहुर्त है तो प्रात: समय पर पधारना है। यदि आज्ञा हो तो मैं आपको लेनेके लिये आऊँ। मीरा चिंतित होकर बोली- अरे, इतनी प्रात:का मुहुर्त है। कुछ देरसे नहीं है? दासी बोली- मुझे तो पता नहीं पंडितजीने बताया होगा। मुझे महारानीकी आज्ञा हुई सो आपकी सेवामें उपस्थित हो गयी। मीरा बोली- ठीक है, तुम्हारे आनेकी आवश्यकता नहीं है। समय मिला तो मैं स्वयं हाजिर हो जाऊँगी और मुझे देर हो जायँ तो मेरे लिये प्रतिक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं प्रयत्न करूँगी समयपर उपस्थित रह सकूँ। मीरा प्रात: उठकर गिरधर गोपालकी पूजा करने लगी। उसे जगाने की आरती करने लगी-

जागो वंशीवारे लालना जागो मेरे प्यारे। उठो लालजी भोर भयो है सुर नर ठाड़े द्वारे।
गोपी दही मथत सुनियत है कँगना के झंकारे।

उसी समय महारानी की दासी फिरसे आयी और बोली- कुँवररानी आप पधारो सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मीरा बोली- दासी, तुम मेरी ओरसे क्षमा माँग लो। मैं गिरधर गोपालकी पूजामें रत हूँ मैं हाजिर नहीं हो सकती। अभी तो भोग और आरती करना शेष है। दासी बोली- कुँवरानी गजर हो जायगा। आज किसी प्रकार की कहल हो, यह अच्छा नही है। एक बार पधार जायँ, लौटकर आप पूजा कर लें। मीरा बोली- यह पूजा नहीं टल सकती। वह टले तो फिर भी खटेगी। मीरा भोग लेकर मंदिरमें जानेको प्रस्तुत हुई। तभी क्रोधमें भरी हुई ननद उदाबाई को आते देखा। उदाबाई बोली- भाभी, आपको महारानीजी ने हुकम याद फरमाया है क्या आपको मालूम नहीं है? देरीसे आनेमें मुहूर्त निकल जायगा। मीरा बोली- मैं भोग लगाकर आरती करके हाजिर हो जाती हूँ। आप सबसे अर्ज कर दो कि वे पूजन कर लें मैं बादमें कर लूँगी। उदाबाई बोली- मुहूर्त निकलने के बाद क्या पूजन करोगी यह अपशकुन होता है। मीरा बोली- तब मैं नहीं पूजूँगी। किसी देवता में इतनी शक्ति नहीं कि मेरा अनिष्ट कर सके। उदा बोली- भाभी, आपके पीहरमें गणगौर नहीं पूजते क्या? क्या आपका पीहर देशसे बाहर है। आप कुछ जानती-समझती नहीं? कुसगुन सुहागका होता है। अनिष्ट तो भैया का होगा। मीरा बोली- बाई, पूजा न करके अपराध मैं कर रही हूँ तो दण्ड भी मुझे ही मिलेगा। आपके भैया को क्यों? मेरा चूड़ा अमर है, मेरे पति गिरधर गोपाल हैं। उनकी सेवाके बाद यदि समय बचेगा तो मैं अन्य देवता और मनुष्योंकी सेवा करनेको तैयार हूँ उसके पहले नहीं। उदा बोली- अगर आपके पति ठाकुरजी हैं तो फिर मेरे भैया क्या है? मीरा बोली- यह बात उन्हींसे पूछ लीजिये और यह कहकर मीरा चली गयी। मीरा और उदाबाई का सम्वाद सुनकर भोजराज जग गये और मीरासे पूछा कौन आया है? मीराने कहा- उदाबाई। भोजराजने बहनका क्रोधसे लाल हुआ मुँह देखा। उदा अपने भाईसे बोली- गणगौर पूजने का मुहूर्त हो गया है। रातको ही भाभीश्री को कहला दिया था, सवेरे दासीको भेज दिया था अब तीसरी बार मैं स्वयं आयी हूँ। सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मुहूर्त निकला जा रहा है। इन्होंने फरमाया कि मेरे पति ठाकुरजी है पहले उनकी सेवा करूँगी फिर समय

बचेगा तो दूसरे काम करूँगी। मेरा सुहाग अमर हैं मुझे किसीकी चिंता नहीं। तो मैंने पूछा कि मेरे भैया आपके क्या लगते हैं। तो उन्होंने कहा- कि उन्हींसे पूछ लीजिये। भोजराज बोले- उदा, बात तो उसने सच ही कही है। जिसका सुहाग अमर है वह क्यों दूसरोंसे सुहाग माँगते फिरेगी। अपन भक्ति और भक्तोंकी बातें नहीं समझ सकते। इसलिये वे जैसे कहें, वैसा ही कर लेना चाहिये। इस घटनासे जैसे घासमें आग लगा दी हो। सास ननदोंके क्रोधकी सीमा नहीं रही। सायंकाल भोजराज माता सोलंकिणीजी के अभिवादनके लिये गये तो माताने उन्हें अपने पास बिठाकर कहा- बेटा, तुम्हारी पत्निने तो हमारे घराने की रीत-मर्यादा सब तोड़ दी। किसी बातको कुछ नहीं समझती। बड़े-छोटे किसीका कोई मान-सम्मान करती नहीं। भोजराज बोले- मैं आपसे क्या निवेदन करूँ मैं तो आपका बालक हूँ। छोटा मुँह बड़ी बात कहते मुझे लाज लगती है। पिताश्री ने यह विवाह सम्बन्ध मेड़तियोंकी भक्ति और वीरतापर रीझ करके किया है। भक्तोंको अपने भगवानके सिवाय कुछ नहीं सूझता। भगवानके सिवाय उनका कोई सगा नहीं। उन्हें अपना-पराया नजर नहीं आता। जिस व्यक्तिको अपनी देहका भान नहीं उसे कुछ भला-बुरा कहकर भी क्या पायेंगे? क्लेश और कलह बढ़ेगा। भगवान भी भक्तोंके सामने दुनिया भूल जाते हैं। भक्तोंका बुरा करने और सोचनेपर भगवान नाराज होते हैं। इसलिये मेरी तो आपसे प्रार्थना है कि जो हो रह है वह होने दीजिये। कहीं ऐसा न हो कि मेवाड़पर विपत्तियोंके बादल घिर आये। पिताश्रीसे निवेदन करे कि रतनसिंहका विवाह करवा दे जिससे स्त्रियोंका मन इन सब बातोंसे हटकर उस ओर लग जाये। माता सालंकिणीजी बोली- किन्तु पुत्र तुम्हारा क्या होगा? भोजराज बोले- माता, मुझे क्या होगा? मेरी चिंता मत करो। लोग तो भक्तोंके दर्शन करने के लिये कितने दूरसे आते हैं। आपके घरमें तो गंगा आ गयी। माता बोली- भोज यह क्या कह रहे हो? चित्तौड़का राजकुँवर तलवारके बदले तम्बूरा बजायेगा? अभी तुम्हारी उमर ही क्या है? भक्ति करनेको तो बहुत समय है। तुम दूसरा विवाह कर लो। क्या यह सत्य है कि तुमने विवाह का प्रस्ताव मना कर दिया। भोजराज बोले- माताश्री, जब तलवार चलानेका समय आया तो मातृभूमि का ऋण चुकानेमें आपका यह बेटा कभी पाँव पीछे नहीं रखेगा। रणशय्यापर शयन कर अमर लोक जानेकी हौंस किस राजपूतमें नहीं होती? फिर आपकी कोखका जाया औरोंसे भिन्न कैसे होगा? भक्ति करनेकी कोई आयु नहीं होती। कौन जाने कब भगवान न् यहाँसे बुलावा आ जाय। यह सुनकर माताकी आँखे भर आयी और बोली- ऐसा मत कहो। भोजराज बोले- आपको दु:खी करनेके लिये नहीं कह रहा पर भगवानके घरकी बात कौन जानता है।

मीरा की कृष्ण भक्ति- मीराने एक दिन भोजराजसे कहा- मैं अर्ज फरमाऊँ आप मानेंगे, तो वचन दीजिये। भोजराज बोले- वचन, क्या बाकी रह गया है। यदि आपको मुझपर अब भी विश्वास नहीं तो फिर मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। मीराने कहा- एक निवेदन है। मेड़तामें संत आते रहते थे पर यहाँ सत्संग नहीं मिलता। भोजराज गम्भीर होकर बोले- महलोंमें तो संतोंका प्रवेश असम्भव है। मीराने कहा- ऐसा करें, कुंभस्यामके मन्दिरके पास एक मंदिर बनवा दें। गढ़में आनेवाले संत वहाँ मंदिरमें पहुँचेंगे। भोजराज बोले- मै भी थोड़ा बहुत ज्ञान पा जाऊँगा। मीराने कहा- आप जैसा उचित समझें। पिताश्री से आदेश मिलते ही मंदिर बनना प्रारम्भ हो गया। अन्त:पुरमें रानियोंने कहा- क्या महलमें स्थानकी कमी थी जो बाहर मंदिर बन रहा है। दूसरी रानियोंने कहा- अब पूजा और गाना-नाचना बाहर खुलेमें होगा? सिसौदियोंका विजय ध्वज तो फहरा ही रहा है। अब भक्तिका ध्वज फहरानेके लिये यह भक्ति स्तम्भ बन रहा है।

जितने मुँह उतनी बातें। मंदिर बना और शुभ मुहूर्तमें प्राण-प्रतिष्ठा हुई। धीरे-धीरे सत्संग बढ़ चला। उसके साथ-ही-साथ मीराका यश भी शीतकी सुनहरी धूप-सा सुहावना होकर पसरने लगा। उनके भजन और उनकी बातें सुननेके लिये भक्तों-सन्तोंका मेला लगने लगा। उनके भोजन आवास और आवश्यकताकी व्यवस्था भोजराजकी आज्ञासे जोशीजी करते।

गुप्तचरोंसे इन सभी बातोंका ज्ञान महाराणाको होता। कभी-कभी वे सोचते- बड़ा होना भी कितना दु:खदायी है? यदि मैं महाराणा अथवा ससुर न होता, मात्र कोई साधारण जन होता तो सबके बीच बैठकर सत्संग-सुधाका पान कर पाता। यह भाग्यहीन साँगा वेष भी बदले तो पहचान लिया जायगा।

जैसे-जैसे बाहर मीराका यश विस्तार पाने लगा, राजकुलकी स्त्री-समाज उनकी निन्दामें उतना ही मुखर हो उठा। किन्तु मीरा इन सब बातोंसे बेखबर अपने पथपर स्थिर पग धरते हुए बढ़ती जा रही थी। उन्हें ज्ञात हो भी कैसे? भोजराज सचमुच उनकी ढाल बन गये थे। परिवारके क्रोध और अपवादके सैल (भाले) वे अपनी छातीपर झेल लेते।

मीराका अधिकांश समय भावावेशमें ही बीतता। विरहावेशमें उसे स्वयंका ज्ञान ही न रहता। पुस्तकोंके पृष्ठ-पृष्ठमें वस्त्रोंके कोने-कोनेमें, धूलके कण-कणमें वह अपने प्राणाधारको ढूँढ़ने लती। कभी ऊँचे चढ़कर पुकारने लगती और कभी संकेतसे बुलाती। कभी हर्षके आवेशमें वे इस प्रकार दौड़तीं मानो सम्मुख भींत या सीढ़ियाँ हैं ही नहीं। मनुष्य या पशु है, उन्हें कुछ भी दिखायी नहीं देता। कई बार टकराकर वे जख्मी हो जातीं। दासियाँ सदा साथ लगी रहतीं, किन्तु कभी-कभी उनकी त्वराका साथ देना अशक्य हो जाता। वे उनकी सराहना करते और चरणरज सिरपर चढ़ाते। नासमझ लोग हँसते और व्यंग करते। मीरा आनंद विह्वल हो कह उठती मेरे प्राणधन, मेरे श्यामसुन्दर, किसीसे लिपटकर वह हँसने लगती। जब-जब भोजराज विजयको वरण करके लौटते, मीराके महलमें उत्सव होता, मिष्ठान बँटते, दास-दासियोंको पुरस्कार मिलते, नजर न्यौछावरें होतीं, गिरधर गोपालका नवीन श्रृंगार होता। नाच-गाना और गरीबोंको अन्न-वस्त्र दिये जाते। राजमहलके द्वारपर पहुँचते ही भोजराजकी विचित्र स्थिति हो जाती। मन चाहता कि दौड़कर अपने महलमें पहुँच जाऊँ, पर बुद्धि एवं कर्त्तव्य सर्वप्रथम पिताके सम्मुख उपस्थित होनेको बाध्य करते।

पिताको प्रणामकर, आवश्यक सूचना निवेदितकर और फिर आदेश पाकर वे अपने महलकी ओर लौटते तो पथमें मिलनेवाले, बधाई और मंगल कामना करनेवाले लोग उन्हें घोर विक्षेप स्वरूप लगते। महलमें वे सबसे प्रथम मीराके सम्मुख उपस्थित होते। यदि वह स्वस्थ होतीं तो उन्हें देखते ही खड़ी होकर हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर प्रणाम करतीं- पधार गये आप? बहुत दिन लगाये। स्वस्थ प्रसन्न हैं न? वहाँकी समस्याओंका समाधान हो गया न? अब पुन: तो नहीं पधारना है? अथवा युद्धमें कहीं कोई कठिन घाव तो नहीं लगा? आदि-आदि कुशल प्रश्न पूछते हुए उन्हें गिरधरलालके पास ले जातीं,वहाँ आरती उतारकर, तिलक लगाकर, चरणामृत प्रसाद देती। स्नान करनेके पश्चात् अपने सामने ही भोजन करवाकर, विश्रामके लिये आग्रह करतीं। भोजराज मीरासे बोले- आपका पूजा-पाठ, सत्संग और भावावेश देखता हूँ तो बुद्धि कहती हैं कि यह सब निरर्थक नहीं हैं। इतने पर भी मुझे ईश्वरपर विश्वास नहीं होता। मीराने कहा- इस स्थितिका कारण? भोजराज बोले- इस अविश्वासके तो बहुत कारण हैं, किन्तु हजार बार समझाने पर भी बिना अनुभवके विश्वासके पैर जमते नहीं। बस यही कि कहाँ हैं? किसने देखा? और है तो उसका प्रमाण क्या है आदि। अनुभव में आये बिना और वह भी ऐसा अनुभव कि कभी भुलाया न जा सके, तभी धारणा दृढ़ होगी। बिना विश्वासके की गयी साधना अपनेको और अन्यको भी धोखा देना है। मीराने पूछा- कोई लालसा इच्छा रहती है मनमें? भोजराज बोले- नहीं, केवल दर्शनकी, प्रसन्न करनेकी ही। विराट पुरुषकी देहमें ही संसार है, जैसे आकाशमें भिन्न-भिन्न आकारके बादल दिखायी देते हैं, वैसे ही आपकी पृष्ठभूमिमें मुझे अपना कर्त्तव्य, राजकार्य दिखायी देते हैं, किन्तु भगवान कभी दिखायी नहीं दिये। मीरा बोली- दृढ़ विश्वास और इच्छा हो तो मनुष्यके लिये क्या दुर्लभ है? भोजराज बोले- मेरी इच्छासे तो कुछ भी होता-जाता नहीं। भक्तोंकी बात भगवान कभी टालते नहीं। यदि आपही कुछ करके दिखा सकती है तो बात अलग है। मीरा बोली- संसारमें कोई ऐसी समस्या नहीं जो हल न हो सके। भोजराज बोले- मैं अँधेरेमें पथ टटोलते-टटोलते थक गया

हूँ आप ही अब कृपा करके कोई सीधा-सादा मार्ग बतायें।

मीरा बोली- हमें कहीं जाना हो, पर हम पथ नहीं जानते। किसीसे पूछनेपर जो पथ उसने बताया, उस पथपर चलनेके बदले हम पथ बतानेवालेको ही पकड़ लें और कहने लगें कि हमें तो गन्तव्य मिल गया, क्या कहेंगे उसे आप मूर्ख या बुद्धिमान? मैं होऊँ या कोई और, आपको पथ ही सुझा सकते हैं। चलना तो, करना तो आपको ही पड़ेगा। गुरु बालकको अक्षर बता सकते हैं, उसके घोटकर तो नहीं पिता सकते। अभ्यास बालकको ही करना पड़ेगा। संसारमें या उसकी किसी भी वस्तुमें महत्त्व बुद्धि है, तब तक ईश्वरका महत्त्व या उसका अभाव बुद्धि-मनमें नहीं बैठेगा। जब तक अभाव न जगे, प्राणप्रणसे उसके लिये चेष्टा भी न होगी। आसक्ति अथवा मोह समस्त बुराईयोंकी जड़ है।

हमें जिससे मोह हो जाता है, उसके दोष भी गुण दिखायी देते हैं। उसे प्रसन्न करनेके लिये कैसा भी अच्छा-बुरा काम करनेको हम तैयार हो जाते हैं। हमें सदा उसका ध्यान बना रहता है। उसके समीप रहनेकी इच्छा होती है। उसकी सेवामें सुख जान पड़ताहै। यदि यही मोह अथवा आसक्ति भक्त अथवा भगवान्में हो तो कल्याणकारी हो जाती है। क्योंकि हम जिसका चिन्तन करते हैं, उसके गुण-दोष हममें अनजाने ही आ बसते हैं। भक्ति करनेसे भक्त प्रसन्न होता है, अत: भक्तमें जिसकी आसक्ति होगी, वह भी भक्त हो ही जायगा। उसकी आसक्तिका केन्द्र भक्त यदि सचमुच भक्त है तो वह सेव्य अपने अनुगतको सच्ची भक्ति प्रदान कर ही देगा। गुरु-भक्तिका रहस्य भी यही है। गुरुकी देह भले पाञ्चभौतिक हो, उसमें जो गुरुतत्त्व है, वह शिव है। गुरुके प्रति आसक्ति अथवा भक्ति उस शिवत्वको जगा देती है, उसीसे परम तत्त्व प्राप्त हो जाता है। गुरु और शिष्य दोनोंमेंसे एक भी यदि सच्चा हो तो दोनोंका कल्याण निश्चित है। मनुष्यका जन्म बाजी जीतनेके लिये मिलता है। कोई हारनेकी बात सोच ही ले तो फिर उपाय क्या है? इतनेमें ही रतनसिंहकी पत्नि आयी और आकर चरणोंमें प्रणाम किया। उसी समय देवर रतनसिंह के साथ छोटे देवर विक्रमादित्य भी आये। रतनसिंह बोले- लोग तीर्थों औरभक्तोंके दर्शनके लिये दूर-दूरतक भटकते फिरते हैं। हमें तो विधाताने घर बैठे तीर्थ दे दिये हैं। जो आपको नहीं समझ पायें और जो भला-बुरा कहें, उन्हें नासमझ मानकर उनपर कृपा रखें। मीरा बोली- सृष्टिके सभी जन मेरे प्रभुके सृजन किये हुए हैं मैं किसको बुरा कहूँ? रतनसिंह बोले- समस्त दृश्य जगत् ईश्वर ही बना है। वही दृश्य और दृष्टा है, फिर गिरधर गोपालकी मूर्तिके प्रति इतनी समर्पित क्यों हैं? हम सबमें उतना ही भगवान हैं जितना उस मूर्तिमें, फिर उसका आग्रह क्यों और दूसरोंकी इतनी उपेक्षा क्यों? संतोंके साथ उछाह क्यों और दूसरों के साथ अलगावका भाव क्यों? भगवानने बुरे लोगोंको और बुरे व्यवहारको क्यों बनाया? सभी भले होते तो संसार कितना सुन्दर होता? कितनी शान्ति और सुख होता?

मीरा बोली- आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है? यह जगत् सत्त्व, रज और तम गुणोंके विकारका परिणाम है। जहाँ एक भी घट अथवा बढ़ जाता है, वहीं अनहोनापन आ जाता है। सृष्टिके संचालकको इनका संतुलन बनाये रखना पड़ता है, अन्यथा किसी एक भी गुणके नष्ट होनेसे संसार स्थिर या नष्ट हो जायगा। गुण और दोष दोनों एक-दूसरेके आधार हैं। बुराईके बिना भलाई अपनी पहचान खो देगी। रावणसे ही रामकी महत्ता सिद्ध हुई। परिवर्तन, संघर्षका नाम ही संसार है। पत्थर और श्मशानकी शान्ति किस कामकी? शान्ति मनकी ही भली होती है, बाहरकी अशान्ति भी मनसे ही निकलकर आती है।

यह तो फिर समस्या हो गयी भाभीश्री। शास्त्र, संत सभी तो अच्छाईकी स्थापनामें लगे रहते हैं। उनका कहना है बुराई मिटानेको स्वयं भगवान अवतार धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त अच्छे बनोका घोष ही तो सर्वत्र गूँज रहा है। यदि सृष्टिके लिये बुराई भी उतनी ही आवश्यक है जितनी भलाई तो फिर इन सब बातोंमें क्या सार है?

आवश्यक तो दोनों हैं लालजीसा। और मनुष्य भी बुराई अथवा भलाई दोनोंमेंसे किसी भी एकको धारण करके मुक्तिका

अधिकारी बन सकता है, किन्तु भलाई अर्थात् अच्छाई उसका सहज स्वभाव है, अत: सहज ही निभ भी जाती है, पर बुराई तो किसी बहुत बड़े कारण अथवा संगतिसे ही धारण करनेको बाध्य होता है, फिर उसे धारण करके ठेठ तक निभा लेना साधारण जनके बसकी बात नहीं हो सकती, अत: कलुषको अपनाकर बढ़नेवालोंको पहले अपनी शक्ति अवश्य तौल लेनी चाहिये। हिरण्यकश्यपु, रावण, कंस आदिने बुराईपर ही कमर बाँधी और मुक्ति ही नहीं, उसके स्वामीको भी पा लिया। मेरी समझसे तो अपने सहज स्वभावानुसार चलना ही श्रेष्ठ है। ज्ञान, भक्ति अथवा कर्म सरल साधन हैं। इन्हें अपनानेवाला इस जन्ममें नहीं तो अन्य किसीमें अपना लक्ष्य पा ही लेगा। जैसे छोटा बालक उठता-गिरता-पड़ता अंतमें दौड़ना सीख ही जाता है, वैसे ही मनुष्य सत्के मार्गपर चलकर प्रभुको पा ही लेता है। इन दोनोंके अतिरिक्त रहे बीचवाले, सो ये ही भगवान पद्मसम्भव ब्रह्माके विशेष कृपापात्र हैं। इन्हींसे संसार आबाद है। ये सदा बीचमें ही रहना पसन्द करते हैं। एक बार इधर-उधर देखते हैं और दूसरे ही क्षण अपने धंधेमें लग जाते हैं। अब रही भगवान्‌के अवतार धारण करनेकी बात सो इनके अनेक कारण, अनेक बहाने हैं। न ये पाप या पापियोंको मिटानेके लिये पधारते हैं और न धर्मकी स्थापना करनेके लिये। ये तो इनके आनुषंगिक खेल हैं। दुष्टोंका विनाश करना और साधुओंका परित्राण करना तो उनके अवतारकालका गौण कार्य होता है। जिसके भ्रू-संकेतसे सृष्टि और प्रलय उपस्थित होते हैं, उनके लिये यह कौन बड़ा काम है? उनके साधारण सेवक भी इतने शक्ति सम्पन हैं कि कोई भी यह काम कर देगा। उन्हें इतनी-सी बातके लिये क्यों पधारना पड़े? पाप प्रभुकी पीठ कहलाता है, उसीसे धर्मके धणीकी पूछ है। प्रभु तो दोनोंके आधार हैं। वे तो पधारते हैं। उनके लिये, जिन्होंने पापका आश्रय ले साधना की है। उनका प्रभुके अतिरिक्त कहीं कोई ठिकाना दिखता है आपको? बैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, स्वर्गको छोड़िये, कोई इन्हें नरकमें भी घुसने देगा? और तो अवकाश ही कहाँ है? ये किसके गले लगें? इन्हींकी साधना सफल करनेके लिये पधारते हैं। जैसे वे असाधारण हैं, वैसी ही असाधारण गति उन्हें देने पधारते हैं, जिन्हें सुनकर, जानकर जगत्तापसे तपते हुए दु:खका हलाहल पान करके तड़पाते हुए मानवके प्राण शीतल हों, जिससे भक्तोंको आधार मिले और लोगोंको भक्तिपथपर आरूढ़ होनेकी प्रेरणा और प्रोत्साहन मिले। सुकृतिजन भक्त हों कि ज्ञानी, वे अपनी ही शक्तिसे सम्पन्न हैं। वे कहीं भी जाना चाहें, सर्वत्र उनका स्वागत है। अखिल ब्रह्माण्ड नायक जिनका अपना है, वे कहाँ विपन्न हैं?

युगधर्मके अनुसार यदि पाप बढ़ जाय तो युग-धर्म पीड़ित नष्ट होता है, उसे बचानेके लिये कृपा करके प्रभु पधारते हैं, इसीके साथ न जाने कितनोंके वरदान और शाप सार्थक करनेके लिये। वह तो मैंने अपनी समझकी बात कही थी। वैसे भी देखिये न, कलियुगमें कितने रावण-कंस-हिरण्यकश्यपु रहते हैं, कोई सीमा है? पर कहाँ पधारते हैं प्रभु? क्योंकि अभी युग-धर्म आक्रान्त नहीं हुआ। कलि स्वयं ही पापका अवतार है। जब अति होती है, तभी आविष्कार होता है।मीराने विक्रमादित्य से पूछा- आपने तो कुछ खाया ही नहीं। विक्रमादित्य बोला- अभी भूख नहीं है। मीरा बोली- सीमासे अधिक लाज तो ससुरालमें भी दु:खदायी होती है। घरमें कोई लाज करता है क्या? क्या सीख रहे हो इन दिनों? विक्रमादित्य बोला- कुश्ती, तलवार, तीर चलाना और घुड़सवारी। मीरा बोली- बहुत कुछ सीख रहे हैं आप। जब सीख जायँ, तब मुझे भी दिखाना कैसे निशानेपर तीर लगते हैं।

पति-गृह जाने के बाद चित्तौड़ राजकुल रीति के अनुसार राजकुमार और राजवधू को जोड़े के साथ कुलदेवी पूजने को जाना आवश्यक था। मीराँ को कहा गया तब उसने अस्वीकार करते हुए यह कहा कि मेरे देवी-देवता सब कुछ मेरे गिरधरलाल हैं। इन्हें छोड़ कर और किसी को मैं पूजना नहीं चाहती। सासू-नणँद आदि बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने अपने सुहाग के लिये कुलदेवी पूजने को चलने के लिये मीराँ को बहुत समझाया, परन्तु उसने कह दिया कि मेरा सुहाग तो सदा अचल है।

जिसे अपने सुहाग में शंका होवे भले ही कुलदेवी पूजें।

इस घटना से चित्तौड़ के राजघराने की महिलाओं में असंतोष फैल गया। उन्हें कल्पना भी नहीं थी कि ऐसी सुन्दर, पढ़ी लिखी, भक्ति भाव में रहनेवाली और नई आई हुई राजवधू इस प्रकार स्पष्ट रूप से यहाँ की परम्परा से चलती आई धार्मिक रूढ़ि का अनादर व गुरुजनों का अपमान करेगी। मीराँ के प्रति अब उन्हें अरुचि होने लगी।

युवराज भोजकुमार भी उसके व्यवहारों से खिन्न रहा करते थे, किन्तु धीरे-धीरे मीराँ की वास्तविक मन:स्थिति को जान लेने के बाद उनके असंतोषादि भाव सब हट गये। यही नहीं उन्हें मीराबाई के प्रति स्नेह होने लगा। एक बार वार्तालाप के प्रसंग में सांसारिक विषयों की आवश्यकता हो तो दूसरा विवाह करने और नहीं तो उसके परमार्थ पथ में सहयोी बनने के मीराबाई के प्रस्ताव को सुनकर उन्हें अपना कर्त्तव्य स्पष्ट हो गया। उन्होंने मीराँ के भजन-भाव में हाथ बँटाने का निश्चय कर लिया और इस प्रकार मीराबाई का मार्ग निष्कंटक हो गया। भोजराज ने मीराबाई के लिये कुम्भ श्याम के मन्दिर के पास एक छोटा सा मन्दिर भी सेवा-सत्संग के लिये बनवा दिया।

महाराणा संग्रामसिंह की ओर से तो मीराबाई को कभी किसी प्रकार से बाधा नहीं हुई। उन्हें अपनी पुत्रवधू के प्रति बड़ा ही आदर भाव था और उसकी बुद्धि, चातुरी, ज्ञान, भक्ति आदि के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। मीराबाई की सासू को पहले-पहले बहू के प्रति कुछ कटु-भाव रहे, परंतु अन्त में पुत्र-वधू के प्रेम, भक्ति, सौजन्य, नम्रता, सेवा आदि गुण-शील को देख व अनुभव कर वह भी उससे प्रेम करने लगी और उसे किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाने की सावधानी रखने लगी।

मीराबाई की एक नणँद ऊदाबाई नाम की थी। वह अपनी भाभी मीराबाई से ईर्षा करती थी। उसकी ससुराल ईडरगढ़ में थी। गुजरात के सुल्तान के अधीनस्थ अहमदनगर जिलाधीश यवन हाकिम ने चढ़ाई कर जब ईडर परगना ले लिया, वहाँ का राजा रायमल सहायता के लिये चित्तौड़ राणा संग्रामसिंह के पास आया। तब राणा ने उसे सहायता देने के साथ-साथ अपनी कुंवरी ऊदाबाई का विवाह भी उसके साथ कर दिया था, परंतु चहुँ ओर अशान्ति का वातावरण होने से ऊदाबाह्न विशेषकर चित्तौड़ में ही रहा करती। मीराबाई के चित्तौड़ में आने के पश्चात् उसके रूप गुणादि तेजोमय व्यक्तित्व को देखकर ऊदाबाई के मन में प्रेम के स्थान पर डाह होने लगा। संसार में सदा से नणँद भौजाई का परस्पर में कलह का नाता चला आता है, उसी श्रेणी में वह उतर आई और अकारण ही वह मीराबाई का अनादर और अपमान करने पर तुली रहती। यह सब कुछ होते हुए भी मीराबाई अपनी ओर से उससे सदा प्रेम का ही व्यवहार करती।

मीराकी अवस्था कई दिनोंतक सामान्य नहीं रहती थीं। कभी मिलनके हर्ष और कभी विरहके आवेशमें जगत् और देहकी सुधको भूली रहती। कभी खिलखिलाकर हँसती, कभी मान करके बैठी रहती, कभी रोते-रोते आँखें सुजा लेती। एकबार रणमें आगराके समीप सीमापर भोजराज घायल हो गये। भोजराजकी सेवा करते-करते मीरा की नींद खुल गयी। भोजराज की नींद खुली तो उन्होंने देखा कि मीरा गिरधर गोपालको पुकारती हुई झरोखेकी ओर दौड़ रही है। भोजराजने सोचा-झरोखेसे टकराकर यह गिर जायगी। इन्हें चोट न लग जाय, इस आशंकासे उन्होंने चौकीपर पड़ी गद्दी उठाकर आड़ी कर दी, किन्तु मीरा उठलकर उस झरोखेमें चढ़ गयीं और मेरे प्रभु, मेरे सर्वस्व कहती हुई एक पाँव झरोखेके बाहर बढ़ा दिया। पलक झपकते ही उछलकर भोजराज झरोखेमें चढ़ गये और सबल भुजाओंमें भरकर उन्हें भीतर खींच लिया। एक क्षण का विलम्ब हो जाता तो मीराकी देह नीचे चट्टानोंपर गिरकर बिखर जाती। पर भोजराजको लगा कि यह क्या किया मैंने मैं अपने वचन को निर्वाह नहीं कर पाया, मेरा वचन टूट गया।

भोजराजकी मृत्यु- भोजराजको वचन टूटनेका पछतावा रहा और मन तड़प उठा। उनकी शारीरिक दशा रुग्ण रहने लगी।

भोजराजने मीरासे कहा- मेरा वचन टूट गया मैं अपराधी हूँ। जो भी दण्ड बख्शोगी मैं झेलनेको तैयार हूँ। अब यह अपराधी परलोक-पथका पथिक है। अब मेरे पास समय नहीं हैं। दण्ड दो तो ऐसा दो कि यही भुगता जा सके। अगले जन्म तक ऋण बाकी न रहे। मीरा बोली- अरे आप क्या कह रहे हो। आप जैसे से तो कोई अपराध हो ही नहीं सकता। जो दण्ड आप इस समय भुगत रहे हैं वो क्या कम है? मेरे मनमें तो तनिक भी रोष नहीं है। मरते हुए मनुष्यको बचाना पुण्य है। यह सब तो मेरी असावधानीसे हुआ। भोजराज बोले- हे द्वारकाधीश, जो भी दण्ड देना हो मुझे देना। इस निर्मल आत्मा को कभी मत सताना। मीरा बोली- गुजरी बातों पर अश्रुपात करेंगे तो बीमारी और नहीं बढ़ेगी क्या। जब आप स्वस्थ हो जायँ तब इस बात पर विचार कर लेना। भोजराज बोले- मेरा अन्त समय निकट आ गया। मुझे एक बार प्रभु का दर्शन करा दो। भोजराज को लगा उनके सामने एक चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ है और उनके बीच खड़ी साँवली मूरत, मानो समुद्र का रूप हो, और कह रही है भोज तुमने मीराकी नहीं मेरी सेवा की। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। स्वार्थसे किये गये कार्य अपराध बनते हैं। नि:स्वार्थके तो सारे कर्मफल मुझे प्राप्त होते है। तुम मेरे हो भोज। आवेगसे भोजराज अचेत हो गये। भोजराज ने अपने अनुज रतनसिंह को बुलाया और कहा- तुम्हारी भाभीका भार मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। मुझे वचन दो कि उसे कभी कोई कष्ट नहीं दोगे। नहीं तो मेरे प्राण सहज ही नहीं निकल पायेंगे। रतनसिंह बोले- भाई, मैं वचन देता हूँ कि मैं भाभीश्री को कुलदेवी बाणमातासे भी अधिक पूज्य मानूँगा। यह सुनकर भोजराज को सन्तुष्टि हुई। भोजराजने देह त्याग दी। धीरे-धीरे परिवार में मेड़तणीजी उपेक्षा ही नहीं घृणिता हो गयीं। दूसरी ओर संत-समाजमें उनका मान बढ़ने लगा। पुष्कर आनेवाले संत मीराके दर्शन-सत्संगके बिना अपनी यात्रा अधूरी मानते थे। उनके सरल सीधे-सादे किन्तु मार्मिक भजन जनसाधारणके मानसको खींच लेते थे।

संसार में कभी एक सी परिस्थिति नहीं रहा करती। स्थिरता का प्रकृति का सिद्धान्त ही नहीं। विवाह के पश्चात् ७-८ वर्ष तक ही युवराज भोजराज मीराबाई के साथ रहे। पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया और मीराबाई एक बड़ा आधार चला गया। मीराबाई संसार की दृष्टि से विधवा हुई, परन्तु वह तो अखण्ड सुहागिन थी। उसका भजन, साधन, सत्संग वैसा ही पूर्ववत् चलता रहा।

राणा साँगाकी मृत्यु- दिल्लीका सुलतान इब्राहीम लोदी बाबरसे पानीपतके युद्धमें हार गया। बाबरका हौसला बढ़ते देख राजपुतानेके सभी शासक इकट्ठे होकर बाबरसे लड़नेका विचार करने लगे। यही निश्चय हुआ कि मेवाड़के महाराणा साँगाकी अध्यक्षतामें सभी छोटे-मोटे शासक बाबरसे युद्ध करें। एक दिन युद्धका धौंसा धमधमा उठा। शस्त्रोंकी झंकारसे राजपूती उत्साह उफन पड़ा। आगराके पास खानवाके मैदानमें रणभेरी बज उठी। आज सिसौदियोंके कलेजेमें महावीर भोजराजका अभाव कसक रहा था। रतनसिंह वीर हैं, किन्तु उनकी रुचि कलाकी ओर अधिक झुकी है। उधर खानवाके मैदानमें घनघोर युद्ध हो रहा था, परन्तु राज्य-प्रबन्धके लिये रतनसिंहको चित्तौड़ रह जाना पड़ा।

एक दिन रतनसिंहने अपनी मेड़तणी भाभीसासे पूछा- भाभीश्री। जब संसारमें सभी मनुष्य भगवानने ही बनाये हैं, उनके स्वभाव और रूप-गुण भी उन्हींकी कला है, फिर किसीको भला और किसीको बुरा कहकर लड़ाई-झगड़ा करना क्या उचित है? सारी पृथ्वी प्रभुकी है, फिर मनुष्य क्यों मेरी-मेरी करके किसीको मारता और मरता है?

लालजी, जिसने मनुष्य और उनके गुण स्वभाव बनाये हैं, उसीने कर्त्तव्य, धर्म और न्याय भी बनाये हैं। इनका सामना करनेके लिये उसीने पाप, अधर्म और अन्यायकी रचना भी की है, जिससे संसार एक रस न रहकर पल-पल बदलता रहे, कोई ऊब न उठे। राजाका धर्म है कि कोई अन्यायी ऊपर आ पड़े तो उससे प्रजाकी और धराकी रक्षा करनेके लिये युद्ध करके उसे राज्यसे बाहर ढकेल दे। यदि बाबर न आता तो अन्नदाता हुकम लड़ने क्यों पधारते?

रतनसिंहने पूछा- मनुष्यको मारना क्या धर्म है?

धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है लालजी। बड़े-बड़े मनीषी संशयमें पड़ जाते हैं क्योंकि जो कर्म एकके लिये धर्मकी परिधिमें आता है, वही कर्म दूसरेके लिये अधर्मके घर जा बैठता है। यही नहीं, एक ही मनुष्यके लिये जो कर्म एक समय धर्म है, दूसरे समय वही कर्म उसी मनुष्यके लिये अधर्म हो जाता है। जैसे संन्यासीके लिये भिक्षाटन धर्म है, किन्तु गृहस्थके लिये अधर्म। ब्राह्मणके लिये याचना धर्म हो सकता है, किन्तु क्षत्रियके लिये अधर्म है। जैसे ब्रह्मचारीके लिये स्त्री-संग अधर्म है, परन्तु वही व्यक्ति गृहस्थाश्रमी हो जाय तो उसके लिये धर्म है। ऐसे ही अपने स्वार्थवश किसीको मारना हत्या है और युद्धमें मारना धर्म-सम्मत वीरता है। समयके साथ नीति-धर्म बदलते रहते हैं। यह सब व्यवहारकी बातें हैं, अन्यथा तो सम्पूर्ण दृश्य-अदृश्य सब कुछ ईश्वरके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अपनी देहके कण-कणमें रोम-रोममें भीतर-बाहर, कर्म, कर्मफल, चित्त-मन और आत्मा, सब कुछ श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अन्यकी कल्पना ही पागलपन है।

फिर सावधान होकर वे बोली- व्यवहार तो व्यक्ति और वस्तुके अनुरूप ही होगा। जब देह-व्यवहार विस्मृत हो जाता है, तो वह पागल अथवा परमहंस होता है।

खानवामें हो रहे भीषण युद्धके समाचार चित्तौड़ आते रहते थे। महाराणा साँगा जी-जानसे युद्ध कर रहे थे कि बाबरको देशसे बाहर निकाल देना है। इस युद्धमें महाराणा साँगाके चेहरेपर एक विषबुझा बाण लगा और वे मूर्च्छित हो गये। कई मेवाड़ी सरदार उन्हें जयपुरके पास बसवा गाँवमें ले जाकर चिकित्सा कराने लगे। इस युद्धमें राजपूतोंकी वीरताको देखकर बाबरको जीतकी तनिक भी आशा नहीं थी, परन्तु भाग्यने उसका साथ दिया। महाराणा साँगाने मूर्च्छा हटनेपर युद्धके समाचार पूछे। सारी बातें जानकर उन्होंने कहा कि बाबरको जीते बिना मैं चित्तौड़ वापस नहीं जाऊँगा। महाराणा बसवा गाँवमें ही सेना इकट्ठी करनेका प्रयत्न करने लगे। यह देखकर किसी नमकहरामने उनको विष दे दिया। महाराणाके निधनसे सचमुच हिन्दुआ सूर्य अस्त हो गया। महाराणाका दाह-संस्कार मांडलगढ़में किया गया।

कुछ ही वर्षों में जहीरूद्दीन बाबर ने दिल्ली पर चढ़ाई की। इब्राहीम लोदी हार गया- मारा गया और दिल्ली के सिंहासन पर बाबर का अधिकार हुआ। इसके कुछ काल पश्चात् राजपूतों के साथ भी उसका घोर युद्ध हुआ। राजपूत सेना का जिसमें कई राजा, महाराजा एकत्रित हुए थे- नेतृत्व राणा संग्रामसिंह ने किया था। देशके-भारत के-दुर्भाग्य से बाबर की विजय हुई। राणा संग्रामसिंह के मस्तक में विषैले बाण के लगने से उन्हें रणक्षेत्र से हटाया गया जिससे राजपूती सेना हताश हो गई। इसके अतिरिक्त राजपूतों में परस्पर फूट, ईर्षा और अव्यवस्था का भी बड़ा कारण था कि जिससे वे परास्त हुए। अनुकूल अवसर पाकर राणा संग्रामसिंह ने जो जयपुर के बसवा ग्राम में ले जाये गये थे, पुन: राजपूतों को संगठित कर बाबर से लोहा लेने का प्रयत्न किया, परन्तु इसी प्रयत्न में, युद्ध से ऊब उठे हुए कुछ दुष्ट राजपूतों ने षडयंत्र कर राणा को विष दे दिया और इस प्रकार वि. सं. १५८४ में महान राणा संग्रामसिंह का देहान्त हुआ।

महाराणा साँगाकी धर्मपत्नी धनाबाईसे कुँवर रतनसिंहका जन्म हुआ था और कर्मावती बाई (करमैती) से कुँवर विक्रमादित्य और कुँवर उदयसिंहका जन्म हुआ था। हाड़ी रानी करमैती बाईपर महाराणाकी विशेष प्रीति थी, इसलिये कुँवर भोजराजकी मृत्युके बाद हाड़ी रानीने महाराणासे निवेदन करके अपने दोनों पुत्रोंके लिये रणथम्भौरकी जागीर लिखवा ली। अजेयगढ़ रणथम्भौर चित्तौड़से अलग रहे। यह कुँवर रतनसिंहको प्रिय नहीं था, परन्तु वे पूज्य पिताके समक्ष नतमस्तक थे।

मेवाड़की राजगद्दीपर बैठनेके बाद एक ओर महाराणा रतनसिंह चाह रहे थे कि रणथम्भौर चित्तौड़का ही अंग बना रहे और उधर सौतेली माँ हाड़ी रानी चाह रही थीं कि मेवाड़की राजगद्दीपर उनका पुत्र कुँवर विक्रमादित्य आसीन हो। यह

पारिवारिक वैमनस्य महाराणा रतनसिंहके लिये अकाल काल बन गया और उनके जीवनके लिये प्राणघातक सिद्ध हुआ। महाराणा रतनसिंहका दाह संस्कार पाटण ग्राममें हुआ और महाराणी पँवारजी सती हो गयीं। इनके एक पुत्री थी श्याम कुँवर बाईसा। राणा संग्रामसिंह के पश्चात् भोजराज के छोटे भाई रत्नसिंह राज्यारूढ़ हुए; परन्तु ४ वर्ष राज्य करने के पश्चात् गृह कलह के कारण वे भी वि. सं. १५८५ मं मारे गये। राणा रतनसिंह के समय भी मीराबाई को कोई कष्ट नहीं हुआ न उसके जीवनक्रम में कोई बाधा ही उपस्थित हुई।

राणा विक्रमसिंह की क्रूरता- चित्तौड़की राजगद्दीपर वि. सं. १५८८ में पधारे कलियुगके अवतार विक्रमादित्य। ये अविश्वासी और ओछे स्वभावके थे। किसीकी भी बात मानना इनके स्वभावमें न था। इतने बड़े राज्यका प्रबंध कठिन हो गया। खिदमतगारोंके नामपर पाँच हजार पहलवान पाल रखे थे। कुटिल मूर्ख और चाटुकार लोग ही उनके आस-पास नजर आते थे। बड़े-से-बड़े सामन्तका अपमान अथवा हँसी उड़ानेमें महाराणाको संकोच न होता। अपना सम्मान बचानेके लिये वफादार नेकनीयत सामन्त और कर्मचारी अपने-अपने घर जा बैठे। महाराणाने अपने जैसे कुबुद्धियोंको ही उत्तरदायित्वपूर्ण पद सौंपे और बुद्धिमान्, ईमानदार, स्वामीभक्त लोगोंको निकाल दिया। राज्यके वे मजबूत सामन्त, जो पीढ़ियोंसे अपने रक्त और सिरोंसे इस राज्यकी चहारदिवारी चुनते रहे थे, अपमानित होकर मुँह फेर बैठे। जो त्याग और बलिदानकी सीढ़िया बने थे, वे आज दूधकी मक्खी हो गये। कोई ऐसा उमराव न बचा, जिसे एकसे अधिक बार अपमानके कड़वे घूँट न पीने पड़े हों, किन्तु मातृभूमिसे द्रोह और स्वामीभक्तिपर दाग न लग जाय, इस भयसे चुप बैठे रहे।

राणा रतनसिंह के देहान्त के पश्चात् राणा विक्रमादित्य गद्दी पर आया। भूतपूर्व महाराणा संग्रामसिंह के हाड़ी रानी से दो पुत्र हुए थे, विक्रमादित्य और उदयसिंह (सुप्रसिद्ध महाराणा प्रताप के पिता)।

राणा विक्रमादित्य बड़ा ही दुर्गुणी था। उसके गद्दी पर आने से राज्य की परिस्थिति सर्वथा बदल गई। मीराबाई के यथार्थ मानस को, उसके भक्ति-भाव को समझने वाले भोजराज, राणा संग्रामसिंह और रतनसिंह के जैसा विशाल एवं उदार हृदय भी उसने नहीं पाया था। मीराँ के पिता रतनतसिंह मेड़तिया भी बाबर के साथ के युद्ध में मारे गये थे और उसकी माता का भी स्वर्गवास उसके मेड़ता छोड़ने के पश्चात् कुछ काल में ही हो चुका था। इस कारण संसार की दृष्टि से मीराबाई अब तो सर्वथा एकाकिनी हो गई थी। विक्रमादित्य बड़ा ही दुष्ट प्रकृति का था। उसकी कुटिल नीति से राज्य में भी अव्यवस्था फैल गई और प्रजाजन तथा ठिकाने के सरदावर व जागीरदार आदि लोग भी सब असंतुष्ट हो गये। ऊदाबाई को अब मन-चाहा संयोग मिल गया क्योंकि विक्रमादित्य ऊदाबाई को बहुत मानता था और राज्य-व्यवस्था में भी उसकी राय लिया करता था।

नणँद ऊदाबाई के भाभीके प्रति रहे हुए ईर्ष्या-डाह, क्रोध आदि हृदय के सूक्ष्म भाव अब शनैः-शनैः साकार रूप धारण करने लगे।

अब तक तो मीराँबाई का भक्ति-भाव निर्विघ्न चलता आया। परन्तु विक्रमादित्य के हाथ में शासन-सूत्र आने के बाद अब विघ्न-बाधाएँ मीराबाई की उपासना में उपस्थित होने लगीं। कुछ तो अपनी अविचार दुर्बुद्धि के कारण और कुछ अपनी कुचक्री मित्र-मण्डली की बहकावट के कारण विक्रमादित्य को मीराबाई का साधु-संतों के दर्शन-सत्संग करना भजन, गाना, तम्बूरा बजाना व ठाकुरजी के आगे नृत्य करना आदि अखरने लगा। साधु संतों से तो वह बहुत ही चिढ़ता था। गद्दी पर आते ही प्रथम ऊदाबाई कीराय से उसने मीराबाई के भजन-सत्संग-साधु-दर्शन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिये। साम, दामादि नीति से काम लेने का उसने निश्चय कर लिया। प्रथम दासियों को, पश्चात् ऊदाबाई को, मीराँबाई को समझाने के लिये भेजा कि कुल को कलंक लगानेवाले गाने-नाचने साधु-संगति आदि कार्यों को वह सर्वथा छोड़ दें। परन्तु मीराबाई भला अपनी नित्य की भक्ति

साधना को कैसे छोड़ती। उसने अपने नित्य के कार्यक्रम में किंचित भी त्रुटि नहीं होने दी। ऊदाबाई ने उसे बहुत कुछ बुरा भला कहा धमकाया, परन्तु मीराबाई अपने स्वीकृत पथ से तनिक भी विचलित नहीं हुई।

राजा विक्रमादित्यने एक दिन अपनी बड़ी बहिन उदयकुँवर बाईको बुलाया और कहा- मीरा भाभी को अर्ज करो कि नाचना-गाना हो तो महलोंमें नाचे वहाँ मन्दिरमें चौड़े चौगान, सन्यासी मोड़ोंकी भीड़में जाकर अपनी कलाबाजी न दिखायें। यह रीत उनके पीहरमें होगी कि बहू-बेटियाँ बाबाओंकी बीचमें घाघरे फहराती नाचती हों, सिसौदियोंके घराने में नहीं है। मैं कल उधरसे निकला तो देखा आरामसे नाच और गा रही हैं, मानो उसको मना करनेवाले सभी मर गये। अब उसे किसका भय है? आज तो यह सब देखकर सह लिया किन्तु फिर कभी देखा तो मुझ-सा बुरा कोई नहीं होगा। यह बात उसे अच्छी तरह समझाकर बता देना। उदाबाईने मीराके पास जाकर अपनी ओरसे नमक-मिर्च मिलाकर कहा- कि आज विक्रमादित्य बहुत आक्रोश में थे। आप मंदिर में मत जाया करें। अपना फर्ज है कि इन्हें प्रसन्न रखें। मीराने पद गाकर यह उत्तर दिया-

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई कर लेसी। म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ हो माई।।
राणोजी रूठ्यों वाँरो देस रखासी। हरि रूठ्या किठे जास्याँ हो माई।।
लोक लाज की काण न मानाँ। निरभै निसाण घुरास्याँ हो माई।।
राम नाम की झाझ चलास्याँ। भौ सागर तर जास्याँ हो माई।।
मीरा सरण साँवल गिरधर की। चरण कँवल लपटास्याँ हो माई।।

उदा बोली- क्या करेगा ये तो मेड़तणीजी मालूम पड़ जायेगा। ये भोजराज नहीं है जो विषकू घूँट भीतर-ही-भीतर पी-पीकर सूख गये। एक दिन भी तो वो सुखसे नहीं रह पाये। जिस दिनसे आपने इस घरमें पाँव रक्खा हैं, सदा विषके बीज ही बोती रही हैं। किसीको सुखकी साँस नहीं लेने दी। मरकर ही छूट पायें। दस-बारह वर्षमें ही उनको ऊपर पहुँचा दिया। दिन-रात हमारे घराने की लाज के झंडे फहराती रहती हो। अरे क्यों नहीं कहा अपने माँ-बापको कि किसी बाबाके साथ ही ब्याह कर देते। मेरे तो अभी दो भाई रह गये हैं। आपके हाथ जोड़कर प्रार्थना करत हूँ इन्हें दु:खी मत करो और अपने ताँगड़े, तम्बूरे लेकर घरमें बैठी रहो। मीरा गाकर बोली-

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ। सुण री सखी तुम चेतन होय के मन की बात कहूँ।।
साधु संगति कर हरि सुख लेऊँ जग सूँ दूर रहूँ। तन धन मेरो सब ही जावौ भल मेरो सीस लहू।।
मन मेरो लागो सुमिरन सेती सब का बोल सहूँ। मीरा के प्रभु हरि अविनासी सतगुरु चरण गहूँ।।

उदाबाई का गिरिधर गोपालकी मूर्ति चुराना- उदाबाई तुनक कर चली गयी। राणा विक्रमादित्यने उदाको समझाया- इसकी गिरधर गोपालकी मूर्ति चुरा लो। सब अनर्थोंकी जड़ यही बला तो है। दूसरे दिन मीराने देखा कि ठाकुरजीका सिंहासन खाली पड़ा है तो उनका कलेजा बैठ गया। गिलहरीकी दौड़ पीपलतक उसने तानपूरा उठाया और गद्‌गद कंठसे गाने लगी- **म्हाँरी सुध ज्यूँ जाणो त्यूँ लीजो।**

पल पल ऊभी पंथ निहारूँ दरसण म्हाँने दीजो। मैं तो हूँ बहु औगुणवाली औगुण सब हर लीजो।।
मैं तो दासी चरण कँवल की मिल बिछड़न मत कीजो। मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित दीजो।।

आसुँओंकी बाढ़से आँचल भीग गया, तभी मिथुलाने उतावले स्वरमें कहा- कुँवरानीजी। और सिंहासनकी ओर संकेत किया। मीराकी आकुल दृष्टि मिथुलाकी ओर उठी। उस ओर देखते ही हर्षके मारे मीराने सिंहासन सहित मूर्तिको छातीसे लगा लिया और कहने लगी- मेरे नाथ, मेरे स्वामी, मुझ दुखियाके आधार, मुझे छोड़कर कहाँ चले गये।

मैं तो थाँरे भजन भरोसे अविनासी। तीरथ बरत तो कुछ नहीं कीणो बन फिरे है उदासी ।।
जंतर मंतर कुछ नहीं जाणूँ वेद पढ़ी नहीं कासी। मीराके प्रभु गिरधर नागर भई चरण की दासी ।।

एकबार मिथुला दासीने मीरा से पूछा- क्या ये भागवत पुराण सब सच्चे हैं कुँवरानीजी। मीरा बोली- क्यों, तुझे झूठे लगते हैं? मिथुला बोली- इनमें लिखी बातें अनहोनीसी लगती हैं। राजा रूक्मांदके दस हजार रानियाँ थीं। रावणके दस सिर थे। उँगलीकी नोकपर कृष्णने पहाड़ उठा लिया। कालिया साँप के सौ सिर और उन सिरोंपर प्रभ नाचे। भगवानके सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थी और उनसे दस-दस बेटे और एक बेटी उत्पन्न हुई। ये इतने मनुष्य प्राणी भला कहाँ रहते? इनके रहनेके लिये कही धरती तो छोटी नहीं पड़ गयी?

मीरा बोली- कालचक्रके साथ संसार, इसके प्राणी, इनकी शक्तियाँ रूप आदि सब कुछ बदलता रहता है। आज हम जो कुछ देख रहे हैं, सम्भवत: पाँच सौ वर्ष पश्चात् लोग इसे झूठ या अनहोनी कहने लग जायँ। द्वापर गये हुए तो पाँच हजार वर्ष बीत गये हैं। निरन्तर परिवर्तित होते हुए संसारमें एक सार कुछ भी नहीं है। जो कुछ शास्त्रोंमें लिखा है, वह दो प्रकारके मनुष्योंके लिये है। एक हैं वे, जो ज्ञानी हैं और जो इन कथानकोंमें छिपे अर्थोंको अपनी बुद्धि-क्षमतासे ढूँढ़ निकालते हैं और इसे हृदयंगम करके आत्मस्वरूपका साक्षात्कार कर लेते हैं। दूसरे हैं वे, जो निपट भोले और अज्ञानी हैं। वे इसमें लिचखे हुएको सत्य मानकर श्रद्धा और विश्वासके बलपर उनका चिन्तन करके पार हो जाते हैं। तीसरे प्रकारके लोग या तो संशयी हैं अथवा व्यर्थ तर्क-वितर्क करनेवाले हैं। ये सदा रोते ही रहते हैं। रही धरतीके ओछी पड़नेकी बात तो बेंडी। (पागल) कालकी ही भाँति देश भी सापेक्ष ही है। एक बात गाँठ बाँध ले मिथुला। सर्वोच्च शक्ति, सिं हम जो चाहें नाम दें, उसकी इच्छापर ही सर्वोपरि है। उसकी इच्छाके सामने सारे सिद्धान्त और नियम धरे-के-धरे रह जाते हैं, थोथे हो जाते हैं, अत: केवल उसकी इच्छाके अधीन होकर रहो। मिथुला बोली- बहुत बरसोंसे मनकी यह उथल-पुथल मुझे खा रही है। यदि आप कृपा करें तो मुझे बताये। सुना है कि प्रभुके मंगल विधानमें जीवका मंगल ही निहित है। उसके अनुसार सबको न्याय ही मिलता है। फिर आप जैसी ज्ञानी और भक्तके साथ इतना अन्याय क्यों? खोटे लोग आराम पात हैं और भले लोग दु:खकी ज्वालामें झुलसते रहते हैं। लोग कहते हैं धर्मको दीमक लगती है, धर्मात्माको भगवान तपाते हैं। इससे तो उलटा भक्तिका उत्साह तो ठंडा पड़ता है। मीरा बोली- मिथुला कृपाकी इसमें क्या बात है। जो सचमुच जानना चाहता है, उसे न बताना जाननेवालेके लिये दोष है और जो केवल अपनी बात श्रेष्ठ रखनेके लिये तर्क-वितर्क अथवा कुतर्क करे, उसे बताना भी दोष है। उनके विधानमें जीवका उसी प्रकार मंगल-ही-मंगल निहित है, जिस प्रकार माँ के हर व्यवहारमें बालकका मंगल निहित है। वह बालकको खिलाती, पिलाती, सुलाती अथवा मारती है तो उसके भलेके लिये ही करती है, उसी प्रकार ईश्वर भी जीवका मंगल ही करता है।

मिथुला बोली- मनुष्य अपने दु:खके लिये दूसरे लोगोंको अथवा ईश्वरको दोषी ठहराने लगता है। यदि हाथों-हाथ उसे कर्मफल मिल जाय तो शिक्षा भी मिले और मन-मुटाव भी कम हो जाय। मीरा बोली- मिथुला, यह भूल न होती। तो अपने कर्मोंका बोझ उठाये मनुष्य कैसे जी पाता? यदि हाथों-हाथ कर्मफल मिल जाय तो उसे प्रायश्चित करनेका अवसर कब मिलेगा? उसके विधानमें सजा नहीं सुधार है। मानव ढूँढ़ता तो है आनंदको, किन्तु मुख-सौम्यके कारण सुखको ही आनंद जानकर अपना लेता है। इस प्रकार उस आनन्दकी खोज उसे जन्म-जन्मान्तर तक भटकाये फिरती है। मिथुला ने पूछा- आनन्दकी कोई पहचान है? उसका ठौर-ठिकाना कैसे ज्ञात हो। पानेका प्रयत्न कैसे किया जाय। मीरा बोली- आनन्द सदा एकसा रहता है, घटता-बढ़ता नहीं। सुख तो मिलनेके साथ ही घटना आरम्भ हो जाता है। जैसे कुँवारा व्यक्ति सोचता

है कि शादी होनेपर बड़ा सुखी हो जायेगा, विवाहके पश्चात् सोचता है कि बच्चे होनेपर सुख मिलेगा, बच्चे होनेपर उनको बड़ा देखना, उनका विवाह, फिर पोते-पोती, अन्तमें वही सुख शून्य हो जाता है और उसका सुखी होनेका सपना पूरा नहीं हो पाता। जैसे सुखके साथ दु:ख आता है उसी प्रकार आनन्दसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है। वह गुरु और संतोंकी कृपासे प्राप्त होती है, इसके लिये सत्संग आवश्यक है। दु:ख और सुखका मूल इच्छा है और इच्छा का मूल मोह है। इच्छा बड़ी बलवती है। एक इच्छा पूरी नहीं हुई कि अन्य दस इच्छायें खड़ी हो जाती है। मनुष्य दूसरेको सुखी समझता है और स्वयं को दु:खी। नि:संदेह सुख यहाँ किसीको प्राप्त नहीं। हमे जो दिखाई देता है वह सच नहीं। हर मनुष्य अपने आगेवाले को देखता है, वहाँ पहुँचनेके लिये दौड़ता है पर यह अंधी दौड़ कभी समाप्त नहीं होती इसका नाम तृष्णा है, यह कभी मरती नहीं। प्रह्लादको उसके पिताने पहाड़से गिराया, समुद्रमें डुबाया। फिर भी भगवान भक्त होनेसे उसे दूसरी दिशा दिखायी नहीं दी। क्यों वे दु:ख पानेके लिये रह-रह करके पिताकी दृष्टिके सामने चले आते थे? क्योंकि उनके लिये घर और वन समान था। उन्हें दु:ख जैसा कुछ लगता ही नहीं था। वे अपने पिता को समझाना चाहते थे कि जो उन्हें मिला, वह सबको मिले। मिथुला ने पूछा- पिछले जन्म में जो दुष्कर्म करके आये है क्या भक्त, धर्मात्मा और भले लोग की वर्तमान में दु:ख पाना उनका भाग्य बन गया और क्या सभी खोटे लोग पिछले जन्ममें धर्मायती थे जो इस जन्ममें मनमानी करते हुए दुष्कर्म करते हुए पिछले कर्मोंके बलपर मौज मना रहे हैं? मीरा बोली- शुभ-अशुभ और मिश्रित कर्म करनेवाले ये तीन श्रेणीके मनुष्य होते हैं। इन्हें मिश्रितकर्म करनेवालोंकी संख्या अधिक है। वे केवल पाप ही नहीं करते, जान-अनजानमें किसी-न-किसी से कुछ न कुछ पुण्य करते हैं। इसीप्रकार पुण्यात्मा के द्वारा कभी-न-कभी, कोई-न-कोई पाप हो जाता है। जब प्रारब्ध बननेका समय आता है तो भक्तके संचित कर्मोंमें से ढूँढ-ढूँढ करके बुरे कर्मफलोंका समावेश किया जाता है कि शीघ्र-से-शीघ्र यह सब समाप्त हो जायँ और वह प्रभु चरणोंमें पहुँच जाय। किसी प्रकार यह सत्संग पाकर सुधर जाय। भगवन्नरूपी चिन्तामणि के बल से वह कठिन दु:ख और विपत्तियाँ सह जायें। मिथुला बोली- जगत्में इतने लालच हैं मनुष्यका मन विचलित न हो, यह असम्भव है।

मीरा बोली- यदि इस पथका पथिक विचलित होकर संसारके प्रलोभनोंकी शिलापर फिसल भी जाय, तब भी उसी जीवनमें ऐसे कई प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं कि वह सँभल जाय। यदि नही सँभले तो अगला जन्म लेनेपर जहाँसे उसने साधना छोड़ी थी, वहींसे आगे चल पड़ेगा। उसके आराध्य बार-बार फिसलनेका खतरा उपस्थित नहीं होने देंगे। अपने भक्तकी सँभाल वे स्वयं करते हैं। दु:खोंकी सृष्टि मनुष्यको उजला करनेके लिये हुई है। दु:खसे वैराग्यका जन्म होता है, क्योंकि सुखकी प्राप्तिके लिये किये गये प्रत्येक प्रयत्नको प्रभु निरस्त कर देते हैं। हार-थक करके वह संसारकी ओर पीठ देकर चलने लगता है। फिर तो क्या कहें? संत, शास्त्र और वे सभी उपकरण, जो उसकी उन्नतिमें आवश्यक हैं, एक-एक करके प्रभु जुटा देते हैं। इस प्रकार एक बार इस पथपर पाँव धरनेके पश्चात् लक्ष्यके शिखर तक पहुँचना आवश्यक हो जाता है, भले दौड़कर पहुँचे या पंगुकी भाँति सरकते-खिसकते पहुँचे। उसके लिये संसारके द्वार बन्द हो गये। जिसने एक बार सच्चे मनसे यह जानना चाहा कि ईश्वर क्या है? अथवा मैं कौन हूं, उसका नाम ज्ञानी या भक्तकी सूचीमें लिख गया। अब वह दूसरी ओर जानेके लिये चाहे जितना प्रयत्न करे, कभी सफल नहीं हो पायेगा। गिर-गिरके उसे उठना होगा। भूल-भूलकर पुन: पथ पकड़ना होगा। पहले और पिछले सब कर्मोंमें छाँट-छूँट करके वे कर्मफल प्रारब्ध बनेंगे, जो लक्ष्यकी ओर ठेल दें। जैसे स्वर्णकार स्वर्णको, जबतक खोट न निकल जाय, तबतक बार-बार भट्टीमें पिघलाकर ठंडा करता है और फिर कूट-पीटकर छीलकर और नाना रत्नोंसे सजाकर सुन्दर आभूषण तेयार कर देता है, वैसे ही प्रभु भी जीवको तपा-तपाकर मार-मारकर महादेव बना देते हैं।

ज्यों-ज्यों विक्रमादित्यका क्रोध बढ़ता जाता, त्यों-त्यों मीराका यश भी बढ़ता जा रहा था। मन्दिरमें और महलकी ड्योढ़ीपर यात्रियों-संतोंकी भीड़ लगी ही रहती, जो मीराके भजन लिखना चाहते थे। राजमहल में चर्चा होती थी पहले ससुर और पति ही कुछ नहीं कहते थे तो अब कुछ कहनेमें क्या सार है? रनिवासमें भी स्त्रियाँ दो हिस्सेमें थीं। कुछ मीराकी और कुछ हाड़ीरानीकी ओर। उदाबाई हाड़ीरानी की तरफ थी। उसे राणाकी शह मिली हुई थी। हाड़ी रानी कहती थी कब मरेगी यह मेड़तणी? यह मरे तो हमारे राज्य में घर और सुख शान्ति आये। जबसे इसका पाँव पड़ा है, तबसे कष्टोंकी कोई सीमा ही नहीं। एक दिन ईडरगढ़से उदाबाई के पति आये और अपनी पत्नी उदाबाई को कहा- तुम्हारी भाभी तो साधु मोड़ोंकी भीड़में नाचती-गाती हैं। यह कैसी कुलरीति है हिन्दूपति राणाके घरकी? यह सुनकर उदाबाई ने दूसरे दिन अपनी सारी भड़ास मीरापर निकाल दी और बोली- क्या जानती हैं आप अपनी करतूतों का परिणाम। आपके घरमें आपके जँवाई पधारे हैं; मुझे कितने उलहने, कितनी वक्रोक्तियाँ सुननी पड़ी। मीरा बोली- बाईजी, जिनसे मेरा कोई परिचय या स्नेह सम्बन्ध नहीं है, उनके द्वारा दिये गये उलाहनोंका मुझपर तो कोई प्रभाव नहीं होता। उदाबाई बोली- आप इन बाबाओंका संग छोड़ती क्यों नहीं? सारे सगे-सम्बन्धियोंमें आपका नाम उछाला जा रहा है। पूरा राज-परिवार लाज से मारा जा रहा है आपके इस व्यवहार पर। मीरा बोली- जिसने शील और संतोषके गहने पहन लिये हैं, उसे सोने और हीरे-मोतियोंकी आवश्यकता नहीं है। उदाबाई बोली- कैसे समझाऊँ आपको कि साधु-संगसे आपका पीहर और ससुराल दोनों लज्जित हो रहे हैं। आपके ये साथी तम्बूरे, चिमटे, करताल खड़काते, गेरुआ वस्त्र पहने, कोई लँगोटिये, कोई भभूतिये, बड़े जटाओंवाले मानो शिवजी की बारात चली आ रही हो ऐसे आते हैं। मीरा बोली- इनके आनेसे मैं अपना भाग्य सराहती हूँ। ये साधुओं का संग तो जगतको तार देता है। उदाबाई यह उत्तर सुनकर तुनककर चली गयीं। इन्हीं दिनों मेड़तासे वीरमदेव का पुत्र जयमल और उसका पाँचवा पुत्र मुकुन्ददास मीराको लेने चित्तौड़ पधारे। महाराणा रतनसिंह की छ: वर्ष की पुत्री श्यामकुँवर को मेड़तेके मुकुन्ददासजी को ब्याही गयी।

वीरमदेव अपने पोते मुकुन्ददासको बोले- राणा सांगा आत्मबल निश्च ही उनमें अधिक था। देहपर अस्सी घाव थे, एक आँख, एक हाथ और एक पाँवसे अपंग थे, किन्तु उनके सामने दृष्टि उठाकर हिम्मत किसीमें नहीं थी। वे सज्जनोंके साथी और दुर्जनोंके काल थे। अपनी जन्मभूमि और प्रजाके लिये सिर हथेलीपर लिये फिरते थे। राणा सांगा टूट गया पर झुका नहीं। कुम्भश्याम के पास जो मंदिर है वह तेरे फुफा भोजराजने ही बुआ मीराके लिये बनवाया है। मुकुन्ददास बोला- महाराणा विक्रमादित्य महा अयोग्य है। भाँड-भवैये इकट्ठे करके भगतण्याँ (वेश्याये) नचाता है और नशा करता हैं। राज्यके सारे स्तम्भ उमराव डगमगाने लगे हैं। परिवारमें खिचखिच चल रही है, प्रजाकी बात तो सुननेवाला कोई नहीं है। राणाजीके मुँह लगे लोग प्रजाको मनमाने ढंगसे लूट रहे हैं। उनकी पुकार कोई नहीं सुनता। मालूम पड़ा की राणाजी बुआजी पर बहुत नाराज है पर चौड़े-धाड़े कुछ नहीं कर सकते। वे उन्हें मरवाना चाहते हैं।

वीरमदेव बोले- पुत्र कौन किसको मरवा सकता है। आयु लिखी हो तो मनुष्य जलती हुई आगसे भी सुरक्षित निकल जाता है, नहीं तो घरमें बैठ-बिठाये गुड़क जाता है। मीराके रखवाले चारभुजानाथ हैं। कैसा अभाग उदय हुआ मेवाड़ का। मीरा मेड़तामें आ गयी। मेड़तामें आकर मीराने जगत्का परिवर्तनशील रूप देखा। श्यामकुंज पुन: आबाद हो गया। मीराने वीरमदेवको कहा- ताऊ आप तो बाबोसा दूदाजी जैसे दिखने लग गये। वीरमदेव बोले- अब तो बुढ़ापा आ ही गया चित्तौड़ के क्या हाल है। सुना है दीवान विक्रमादित्य तो राग-रंगमें डूबे हुए हैं। मीरा बोली- इसकी जड़ तो राजमाता हाड़ीजी है। सभी तो राजमद नहीं पचा सकते। वीरमदेव बोले- सुना है अपने बहादुरशाह गुजराती आक्रमणके लिये उतावला हो रहा

है। सीमाकी चौकियाँ ढीली हैं। सभी उमराव रूठे हुए हैं और वो बहादुरशाह से छिपे-छिपे मिल रहे हैं। मीरा बोली- प्रभु को जो मंजूर है वोही होगा। यह तो ढलती छाया है। इतने समय तक सिसौदियोंका प्रताप सूर्य मध्याह्नमें था अब ढल रहा है। मीराके दर्शन सत्संगके लिये चित्तौड़ गये हुए लोग वापस मेड़ता आने लगे। मेड़तेसे एक वर्ष बाद मीराने पुन: चित्तौड़ पधारनेके लिये प्रस्थान किया। रस्तेमें मेवाड़की सीमा दिखलायी दी। उजड़े गाँव, जली-कुचली खेती, जले हुए घर, सताये हुए नागरिक और पशु, चारों ओर फैली हुई अराजकता। किसी गाँवके पास से वह निकल रही थी तो वहाँ स्त्री-बच्चोंके रोने-चिल्लानेका स्वर सुना। मीराने अपने साथके सरदारसे पूछा- यह कैसा शोर हो रहा है? सैनिकोंके नायकने निवेदन किया सम्भवत: कोई मर गया है। मीरा बोली- नहीं, मालूम करो जाकर। सैनिक नायक ने कहा- हमें क्या लेना-देना हमें छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये। वे लोग किसीकी मर्यादा माननेवाले नहीं है। मीराने आदेशके स्वरमें कहा- अपनी रक्षा करना तो हम जानते हैं तो आँखोंसे देखते हुए किसीपर अत्याचार हो रहा है तो कैसे टाल दे। शीघ्र सेना नायकोंने जाँच पड़ताल कर बताया ये अपने इलाकेके अधिकारी कर वसूली कर रहे है। उसी समय वहाँपर गाँवके दो आदमी आये और मीराको प्रणाम कर बताया- यहाँ पिछले वर्ष अकाल पड़ा- जैसे तैसे गुजर-बसर की। इस वर्ष वर्षा नहीं हुई खाद भी पूरा नहीं मिल पाया। एक बैल मर गया। उधार माँग-ताँगकर खेती की। आश्विन के महिने में डाकू आ गये। खेतोंमें आग लगाकर घरोंमें जो कुछ मिला उसे उठा ले गये। हमारी बहू-बेटियों तक नहीं छोड़ा। वह ग्रामीण रोने लगा और बोला- अभी यह कर उगाने आये है। घरमें एक समय खाने जितना अन्न भी नहीं है। अगर अगली फसल ठीक हुई तो एकसाथ पूरे वर्षका कर चुका दूँगा, किन्तु यह लोग मानते नहीं है। कहते हैं- पैसा नहीं है तो तुम्हारी बेटी, बेटे और स्त्रियाँ ही दे दो और घरसे उन्हें खींच-खींचकर बाहर निकाल रहे हैं। हम गरीब कहाँ जायँ, किसे पुकारें? हमारा तो भगवान ही रूठ गया है, हमारा भाग्य ही अस्त हो गया। पहले इतना अन्याय तो कभी नहीं हुआ।

मीराका हृदय यह सब सुनकर काँप उठा। आँखें भर आयीं और अपने सैनिकोंको भेजकर कर उगाहनेवालोंको बुलाया। सैनिकोंने आकर बताया वे तो मर्यादाहिन व्यक्ति है और कह रहे हैं हम तो अपना हुकुम बजा रहे हैं। तुम कौन होते हो बीचमें पाँव फँसानेवाले। हम कोई मेड़तणीजीको नहीं जानते। जाकर कह दो कि हमें फुरसत नहीं हैं हम नहीं आते। मीरा रथसे नीचे उतरी और अपनी तलवार खींचकर बोली- कहाँ हैं वो अन्यायी? जो इतना अन्याय विक्रमादित्य के सामने हो रहा है तो दूर-दूर सीमाओंपर क्या होता होगा। ग्रामीणोंने बताया- मालवेके सैनिक हर तीसरे चौथे महीने आ धमकते हैं, कोई स्त्रियोंको उठा ले जाते हैं, बच्चोंको चीर-फाड़कर छप्परपर फेंक देते हैं और विरोध करनेवाले को मारकर वापस भाग जाते हैं। मीरा बोली- ऐसे राजा लोग कितने दिन टिकेंगे। जो प्रजाके पेटको अन्न और आँखोंको निश्चिन्त नींद नहीं दे सकते? मीराने देखा- पन्द्रह-बीस आदमियोंको बाँधकर एक ओर पटक दिया है। उनके घरोंसे अन्न, बर्तन और पशु निकाले जा रहे हैं। दो स्त्रियाँ रोती हुई विनती कर रही है। बच्चे डरकर दीवार से चिपके खड़े हैं। बढ़े हुए पेट, नंगे और भूखे है। एक बीस वर्षकी बहू अपनी फटी साड़ीके घूँघटमें हिचकियाँ लेकर रो रही है। एक कर्मचारी बोला- करके बदले इसको दे दे इसके बदले दोनों फसलोंकी माफी कर दूँगा। उसका पति कह रहा है तुम्हारे घरकी बहू-बेटियोंके लिये कोई ऐसी बात कर दे तो। वह कर्मचारी ग्रामीण को गुस्सेसे ठोकर मारकर बोला- कहकर तो देख। तुम्हारे यह घर की अप्सरा कितने दिन यहाँ टिकेगी। हम नहीं तो कोई और उठा ले जायेगा। मीरा सामने जाकर खड़ी हो गयी। किसीने पूछा- यह कौन है? किसीने उत्तर दिया- मेवाड़की महिषी महाराजकुमार भोजराजकी घरवाली मेड़तणीजी अपने पीहरसे ससुराल जा रही है। मीराने उन कर्मचारियोंसे गरजकर पूछा- तुम्हारा नायक कौन है? मीरा जैसे भगवती दुर्गा सामने खड़ी हों। कर्मचारी हाथ

जोड़ काँपता हुआ बोला- चाकर सेवा में उपस्थित है। उसे लगा मानो सारे जीवनके पाप-पुण्यका लेखा-जोखा करेगी। मीरा बोली- ये कहाँकी रीत है। तुम राज्यके रखवाले हो या राक्षस? क्या ऐसे कर उगाया जाता है? कर्मचारी बोले- हम तो हुकुम के ताबेदार हैं। मीरा बोली- हुकुम देनेवाले ने यह फरमाया है कि पैसा न हो तो उनके स्त्रियोंको उठा लाना, पशु और बर्तन उठा लाना, उन्हें मौत के मुँह में ढकेल लेना। क्या ये बर्तन और स्त्रियाँ तुम राजकोषकी पेटियोंमें बन्द करोगे? अरे अन्यायियों, जब मालवे और गुजरातके डाकू इन्हें लूटनेके लिये आते हैं, तब क्यों नहीं रक्षा करते इनकी? मरे हुए पशुपर पड़ते गिद्धोंकी भाँति जो चीथना ही जानते हो? भूत भी दूबले-पतलेको नहीं सताता। हरामखोरों, राजा की आँखें तो कर्मचारी होते हैं। यदि तुम अपने राजाको न बताओ तो वे क्या जानें कि प्रजा सुखी है कि दु:खी। कर्मचारिके नायकने हाथ जोड़कर निवेदन किया। यह सब बातें निवेदन करने का अधिकार महामन्त्री को हैं हम छोटे लोगोंकी वहाँतक पहुंच कहा। यदि हम खाली हाथ लौटे तो हमारी खाल उतरवाकर उसमें भूसा भरवा दिया जायेगा। मीरा बोली- इसीलिये स्त्रियोंको लेकर जा रहे हो। करकी राशिके स्थानपर उन्हें सरकारके सामने खड़ी कर दोगे। एक बार अपने घरकी बहू-बेटियोंको ले जाकर खड़ी करो फिर देखो तुम्हारे हृदयकी क्या दशा होती है। कितना कर बाकी है इस गाँव का? कर्मचारी नायक ने कहा- सात सौं रुपया। मीराने अपने और अपनी दासियोंके गहने उतारकर कहा- ये लो तुम्हारे सात सौ रुपया। जिस राज्य की प्रजा दु:खी हो वह राजा अधिक समय तक टिकता नहीं। राजा प्रजाका सेवक होता है। उसे सुखी रखना राजाका धर्म और कर्त्तव्य है। हम सबकी भलाई उनके सुखमें निहित है। कर उगाहने से पहले यह देख लो इनके जीविका और खेतीपर कोई असर नहीं आयेगा। ये संतोष से रहेंगे तो राजखजाना भरा-पूरा रहेगा। दूसरोंकी बहन-बेटियोंको अपनी बहिन बेटी समझो। जहाँ पर गौ और गौरी सतायी जाती है, वहाँ भगवान् का कोप होता है। ईश्वरने जो जीव और आँख दी है उसे सत्कर्म में लगाओ। अमरताका पट्टा लिखाकर नहीं लाये हो। अन्त में मरकर अपने बापको क्या उत्तर दोगे। उस दिन यहाँके सब व्यापार ब्याज समेत चुकाने पड़ेंगे। यह धन और यौवन तो थोड़ी देर के अतिथि है। अपने पाँव धरती पर रखो ऊपर मत उछालो और मीराने आदेश दिया- प्रत्येक घरके हिसाबसे इन्हें दो-दो रूपये और बालकोंको प्रत्येकको चार आने दो। मीराके इस आदेश से गाँवके मुर्झाये हुए लोग खिल उठे। स्त्रियाँ समीप आकर पांव पड़ने लगी और पुरुष प्रणाम करने लगे। मीराने ग्रामीणोंसे कहा- डाकू आ जाय तो सब मिलकर सामना करो, लूटपीटकर जीवित रहने से तो लड़ते हुए मर जाना अच्छा है। अपनी रक्षा अपने आप करना सीखो। राज-दरबार कहाँ-कहाँ उपस्थित होगा। स्त्रियोंको संबोधित कर कहा- तुम सब दुर्गा और चामुण्डा स्वरूप हो। बिना तुम्हारी इच्छाके कोई तुम्हें हाथ कैसे लगा सकता है। कोई जो तुम्हारी तरफ कुदृष्टि करें उसकी आँख निकाल दो। जो तुम्हारे धर्म और शील पर हाथ डालें उसे बेरहमी से कुचल दो। यदि मार न पाओ तो स्वयं मर जाओ। स्त्रीत्व खोकर रोते-चिखते जीवन से मरना बेहतर है। पापियोंके हाथमें पड़नेसे पूर्व देह त्याग दो। मनमें दृढ़ता और भगवान पर भरोसा करो तो असम्भव कुछ भी नहीं है। तुम्हें लूटनेवाले तो बहुत हैं पर बचानेवाला कोई दिखाई नही देता। दूसरोंके भरोसे मत जीओ। मरायोंका मुख कब तक ताकती रहोगी। प्रजा वर्ग बहुत प्रसन्न हुआ। चित्तौड़ पहुँचनेसे पहले ही छाती बहुत बढ़ गयी। जब राणा विक्रमादित्य ने सुना तो क्रोधसे लाल-पीले होकर मीराके महलमें पहुँचे और बोले- राणाकी पगड़ी आप ही बाँधकर गद्दीपर बिराज जायँ। देवर की बात सुनकर उनकी तरफ देखकर मीरा अपने काम में लग गयी। विक्रमादित्य बोला- यदि आपके पास सोना-चाँदी अधिक हैं उसे राजकोश में दे दीजिये। ऐसे राहोंमें क्यों लुटाती फिर रही है। आप भक्ति करते-करते अब राजकार्योंमें भी हस्तक्षेप करने लग गई है। कर्मचारियोंको भी डाँटकर भगा दिया, क्यों किया आपने ऐसा। सीधे से कौन कर देता है। थोड़ी बहुत तो सक्ती करनी

पड़ती है। ऊपरसे आपने तो उन्हें लड़नेका उत्साह सिखा दिया। ऐसे में राजकार्य कैसे चला पाऊँगा। जिस घरानेकी नारियोंको सूर्य-चन्द्र भी सहजता से नहीं देख पाते वे ही अब मन्दिरोंमें, रास्तोंमें घूमती है। नाचीज लोगोंसे बातचीत करती है। न तो यह मैं सह सकता हूँ, न देख सकता हूँ। कर्मचारी तो अपना काम कर रहे थे आपने वहाँ पधारकर के उनके काम में दखल क्यों दिया। मीरा गोली- लालजी, वे स्त्रियोंको ले जा रहे थे। आपने कर में स्त्रियाँ तो नहीं मार रही थी। गाँव में पिछले वर्ष अकाल और अश्विन महिने में डकैतीने उन्हें भूखे मरनेको विवश कर दिया। राज्य के कर्मचारी उन्हे गालियाँ दे रहे थे, हाथ लगा रहे थे, स्त्रियोंसे मस्करी में बखौल कर रहे थे। तब मैंने उनको बताया कि जाकर अपने हुजूर को प्रजा की, स्थिति के बारे में बताओ। जिसके पास खाने को अन्न नहीं है वह कर क्या देगा। उस गाँवका दो वर्षका कर बाकी था। सो मैंने कर के बदले अपनी दासियोंके आभूषण दिलवा दिये।

विक्रमादित्य बोला- गाँव के लोग तो झूठ बोलते हैं डाकू आये, या अकाल पड़ा। बहानें करनेवालोंको बहानेकी कोई कमी नहीं होती। मुझे मेरा काम करने दो। अब कभी बीच में नहीं पड़ना नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। चारों ओर बदनामी हो रही है कि मेवाड़की कुँवरानी मोड़ोंकी भीड़में नाचती-गाती है। पर आपको इसकी क्या चिन्ता? मुझे जो कुछ कहना था वो कह दिया अब कुछ हो जाय तो मुझे दोष मत देना। यह कहकर विक्रमसिंह चला गया। मेड़तिया राठौड़ने जब सुना तो कहा- इतनी भी अक्कल नहीं है इस स्मृतिहीन राणा में। सारे दिन भाँड भवैयोंसे घिरा रहता है। सीमाएँ दुश्मनोंने दबा ली हैं। इसका भी ज्ञान नहीं हैं। यहाँ घरमें सिंह बना फिरता है। राजा की मूर्खता प्रजाको दु:ख देती है। किसी दिन इसकी भूल व मूर्खता मेवाड़को ले डूबेगी। अगर बाईसाने जरा भी हुकुम से संकेत किया होता तो यहीं धूल चटा देता इसको। फिर जो होना होता होता। छोटे-बड़ोंसे मर्यादा रखना तो इसने सिखा नहीं। न जाने इसे कैसे राजा बना दिया। अपने जँवाईसा भोजराज रुप-गुणोंके समुद्र थे। अपना ही भाग्य रूठा और वे छोटी उमर में ही परलोक सिधार गये।

थोड़े दिनोंमें मीराकी खास दासी मिथुला ने शरीर त्याग दिया। उनकी सेवामें दूसरी दासी नियुक्त हुई। दूसरी दासी चम्पा, चमेली, गोमती और मंगला नियुक्त हुई। एक दिन चम्पा मीराके बिछौने समेट रही थी। उसने देख की चद्दर के नीचे काँच के टुकड़े बीछे हुए है। वह दौड़कर मीराके महलमें पहुँची उस समय मीरा स्नान कर रही थी। उसने मीराको पुकारा। मीराने उसे पूछा- क्या हुआ चम्पा तू इतनी घबरा क्यों रही है? चम्पा बोली- कहीं आपको चोट तो नहीं आयी। कहीं काँच तो नहीं चुभ गया आपको। आपके बिछौनेमें काँच की किरचैं बिछी है। रातको सोते समय आपको चुभी होंगी। मीरा बोली- मुझे तो कुछ नहीं चुभा। मेरे प्रभुकी लीलाका पार नहीं है। मेड़तासे आये गजाधर जोशीजी का एक वर्षके पश्चात देहान्त हो गया। एक-एक करके मीराके सारे बाहरी अवलम्ब टूट गये। जोशीजी का बेटा मंदिरमें भगवान की पूजा-अर्चना करने लगा। मेड़तणीजीका दान-धर्म, दया-माया, भजन-वन्दनकी प्रसिद्धि चारों तरफ फैलती जा रही थी। महाराणा विक्रमादित्यने बहुत प्रयत्न किया कि उनका सत्संग छूटजाय, परन्तु पानीके बहाव और मनुष्योंके उत्साहको कौन रोक सकता है।

सारंगपुरका नवाब व वजीर मीराके दर्शन करने- सारंगपुरके नवाबने मीराकी ख्याति सुनी और वेश बदल करके अपने वजीरके साथ वह मीराका दर्शन करनेके लिये गया। सारंगपुरका नवाब और उसका वजीर मीराके मंदिर में चलकर साधु-संतोंके पीछे बैठ गये। नवाब अपनी देहकी सुध भूल गया। सुख और शांतिका समुद्र हृदयमें हिलोरें लेने लगा। किसीने पूछा- गुरु कौन हैं? कहाँ मिले और कैसे मिलें? किसी सन्तने जवाब दिया- गुरु कौन है? परम गुरु शिव ही हैं। हम गुरुको देह रूपमें भले देखते हों, किन्तु उसमें जो गुरुतत्त्व है, वह शिव ही है। यह ठीक वैसे ही है, जैसे पाहनके शिवलिंगमें शिव ही हैं। हम पूजा-अर्चना शिवलिंगकी करते हैं, जो पत्थरका बना है, किन्तु उस पूजाको स्वीकार करनेवाला शिव ही है। वही हमारा कल्याण

करता है। गुरुकी पाञ्चभौतिक देह पूजा-भक्ति-श्रद्धाका माध्यम है, किन्तु उपदेश देनेवाला या प्रसन्न रुष्ट होनेवाला शिव ही है। गुरु कैसे मिलें? शिव सर्वत्र हैं। यदि सचमुच आपको आवश्यकता है, आतुरता है तो वे किसी भी स्वरूपमें मिलेंगे ही, इसमें संदेह नहीं है। अब घर बैठे मिलें या खोजसे? गुरुकी आवश्यकता महसूस होनेपर वे चाहें तो भी चैनसे नहीं बैठ पायेंगे। जो खोज कर सकते हैं, अपनी समझसे अपने क्षेत्रमें वे खोज करेंगे ही। इस खोजमें वे भटक भी सकते हैं, किन्तु खोज सच्ची है तो गुरु मिलेंगे अवश्य। जो खोज नहीं सकते, उनके लिये प्रार्थना और प्रतीक्षा ही अवलम्ब है। उन्हें वहीं उपलब्ध हों। किस रूपमें उपलब्ध होंगे, यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु उनका मनोरथ पूरा होगा। अब रही बात यह कि ज्ञात कैसे हो कि ये संत है, गुरु हैं। जिनके सानिध्य-सामीप्यसे अपने इष्टकी हृदयमें अपने आप स्फूर्ति हो, वह संत है और भगवन्नाम सुनकर हृदय द्रवित हो जाय, वह है साधक। यह आवश्यक है कि अपनी रुचिका इष्ट और अधिकारके अनुरूप गुरू हो, अन्यथा लाभ होना कठिन होगा। नवाबने मीराको कहा- हुनर और नूर उसके ऊपर खुदाई मुहब्बत, यह सब एक साथ नहीं मिलते। आज आपका दीदार करके और खुदाका ऐसा करिश्मा देखा कि यह नाचीज सुर्खरू हुआ और उसने जेबसे हीरोंका हार निकालकर मीराकी अंजलिमें अर्पण किया और कहा इस नाचीजकी यह छोटी-सी भेंट कबूल करके एहसान फर्मायें। मीरा बोली- प्रजाका धन आप गरीबोंकी सेवामें लगायें। मेरे गिरिधर को धन नहीं भक्ति चाहिये। वजीर ने कहा यह मलिका खुदा के लिये गाती है। बड़े खुशकिस्मत हैं चित्तौड़के बाशिन्दे, जिन्हें ऐसी मलिका नसीब हुई। ये राजपूत बड़े वीर हैं। खुदा जाने किस फौलादसे इन्हें बनाकर भेजा जमीं पर। एक औरतके पीछे सारी दुनियाँ तबाह कर देते हैं। शाह बोला- जिनकी औरतें भी गैर मर्दके हाथमें पड़नेके बदले जिंदा आगमें जल जाना पसन्द करती हैं। ऐसी औरतके पीछे अगर दुनियाँ तबाह करनी पड़े तो कौन बड़ी बात है? लोगोंने जान लिया होगा कि यह मुसलमान हैं। हमको जल्द-से-जल्द अपनी सरहदमें पहुँच जाना चाहिये। ये लोग अपनी औरतका गैर मर्दसे बात करना या नजर पड़ना भी गवाँरा नहीं करते। ये हिन्दू अपने मंदिरोंमें किसी विधर्मीको नहीं घुसने देते। उनका मानना है कि इससे मन्दिर नापाक हो जाता है। खुदा तो पाक परवरदिगार है। वह या उसका घर किसीके आने-जानेसे नापाक कैसे हो सकता है? फिर उस मलकाने तो ऐसा कोई रूख नहीं दिखाया। अब तो मैं जंगमें मारा भी जाऊं तो अफसोस नहीं होगा। मीराकी मंदिरमें खुसर-फुसर होने लगी कि कौन आये थे? बोली से तो मुसलमान जान पड़ते थे किन्तु पहनावा हिन्दु था और मन्दिर भ्रष्ट कर गये। अभी दूर नहीं गये होंगे। बाँध लाओ दौड़कर।

मीराने गम्भीरता से सबको समझाया- क्यों, क्या अपराध किया उन्होंने? आपके पास कौन-सा प्रमाण है कि वे मुसलमान हैं? यदि हों भी तो क्या उन्हें भगवानने नहीं बनाया? बहुत-से हिन्दू मुसलमानोंके यहाँ चाकरी करते हैं, इससे वे उन्हींकी भाषा बोलने लग जाते हैं। बोलीसे कोई मुसलमान हो जाता है क्या? उनका वेष तो हिंदू है। यदि मुसलमान ही मान लें तो अपना उन्होंने बिगाड़ा ही क्या है? क्या किलेमें मुसलमान नहीं रहते? उन्होंने भगवान्के दो नाम सुने और चले गये। रही मंदिर भ्रष्ट होनेकी बात सो मंदिर आपका और मेरा नहीं, भगवान्का घर है। यहाँ आनेवाले सभी उसके बालक हैं। जाति-पाँति मनुष्योंने बनायी है। भगवान्ने तो मनुष्यको केवल मनुष्य ही बनाया है। जाति-पाँति और धर्मका नाम लेकर लड़ना मूर्खता है। यदि वे लड़ने आये होते तो बात समझमें आती है, किन्तु व्यर्थमें युद्धके बीज न बोयें। बेटेके आनेसे बापका घर भ्रष्ट नहीं हो जाता। बैठकर शांतिसे ज्ञानकी बात सुनिये।

जब किसी भी रीति से मीराबाई नहीं मानी तब राणा ने कुछ कठोरतापूर्वक समझाने का निश्चय किया। उदाबाई ने भी यही राय दी। योजनानुसार पहले तो षडयंत्र करके उदाबाई ने रात्रि में मीराबाई की गिरिधर गोपाल की मूर्ति चुराली और राणा को जाकर दे दी। राणा ने उसे राजोद्यान में भूमि खुदवा कर उसमें गड़वा दी। वही सब अनर्थ का मूल है और उसके

खो जाने पर मीराबाई आप ही ठिकाने आ जायगी, राणा की यही समझ थी; परन्तु प्रात:काल पता चलते ही मीराँबाई ने जब विरह भाव से करुण स्वर से तानपूरा-करताल बजाकर प्रभु से प्रार्थना की तब गिरिधर गोपाल की वही मूर्ति सिंहासन पर प्रकट हो गई। उसने अपने प्यारे को हृदय से लगा लिया।

राणा विक्रमसिंह के अत्याचार- षडयंत्र के विफल होने पर राणा ने मीराँबाई को काल कोठरी में रखा जहाँ साँप, बिच्छू व गोयरे आदि जंतुओं की कमी नहीं थी। इस प्रकार गिरिधर गोपाल से उसे पृथक करा दिया। दासियों के मिलने पर भी प्रतिबंध लगा दिया। उसे खाने के लिये भी नहीं दिया जाता था। परन्तु वहाँ भी प्रभु-प्रेम की छत्र छाया में वह सुरक्षित रही। संत सखुबाई और जनाबाई के लिये भीड़ पड़ने पर साकार हो स्वयं सेवा करनेवाले भगवान ने मीराबाई को किसी बात की कमी नहीं पड़ने दी। सातवें दिन द्वार खुलवाने पर राणा ने देखा, मीराबाई पहले से भी अधिक तेजस्विनी दिखाई दी।

तब राणा ने मीराबाई के स्थान पर चौकी व पहरे लगवा दिये और जिस प्रकार लंका में अशोक वाटिका में रखी हुई सीता को दु:खित व आतंकित कर देने के लिये रावण ने दुष्टा राक्षसियों को नियुक्त किया था त्यों उसने चंपा व चमेली नामक दो दासियों की अधीनता में और कुछ ऐसी कठोर हृदय की भयंकर रूपवाली दासियों को भी वहाँ नियुक्त कर दिया। उन्हें यह भी आज्ञा दे दी गई कि मीराबाई को अनेक उपाय द्वारा कष्ट दिया करें। परन्तु उनमें त्रिजटा के समान इन दासियों में भी चंपा व चमेली नाम की दो दासियाँ थी जो पहले से ही कुछ भले स्वभाव की थीं और मीराबाई के दर्शन-सहवास में आकर पूर्णरूप से साधु-स्वभाव वाली बन गई थीं; जिनके नियंत्रण में रहनेवाली दुष्ट दासियाँ कुछ नहीं कर सकती थीं।

विक्रमादित्य उदाबाई से बोला- भाभीश्री ने जो नाक कटवा दी सिसौदियोंकी। सारंगपुरका नवाब आया। मंदिरमें बैठकर उसने भाभी के भजन सुने और बातचीत की। उसने हीरोंकी कंठी भेंट की। मैं तो मुँह दिखानेके योग्य भी नहीं रहा। हे भगवान्, क्या करूँ। मैंने कौनसे पाप किये जो यह कुलबैरणी यहाँ आयी। जिस दिनसे आयी है, एक दिन भी शांति से नहीं रह सकता। एक-एक करके सबको भक्षण कर गयी। महाराणाको अपने प्रबन्धकी ढिलाई दिखायी नहीं दी। शत्रु उनके घरमें आकर चला गया और उन्हें ज्ञात तक नहीं हुआ। सच है, अपनी भूल किसे दिखायी देती है। सारा क्रोध मेणतणीजीसापर उफन पड़ा। उन्होंने निर्णय कर लिया बहुत सबर कर ली मैंने। अब या तो मैं रहूँगा या मेड़तणीजी रहेगी। इसने तो हमारी पगड़ी उछाल दी है। मोड़ों और साधुओंने सलाह करते-करते सुलतानों और विधर्मियोंसे भेंट करने लगी। अरे हीरे जवाहरात चाहिये थे तो मुझे कहना था। मुझे तो कहीं बोलने योग्य ही नहीं रखा इस कुलनाशिनीने। जब मैं घरमें अनुशासन नहीं रख सकता तो राज्य कैसे चलाऊँगा?

राणाका मीराको विष का प्याला भेजना- महाराणाने उदासे सलाह कर राजवैद्य को बुलाया और दयाराम पंड़ाके साथ सोनेके कटोरेमें जगन्नाथजीका चरणामृत भेजा। दयारामके साथ-साथ उदा भी कई। मीराने प्रभुके सामने चरणामृत अर्पित किया। दयाराम पांड़ाने कहा- राणाने जगन्नाथजीका चरणामृत भिजवाया है। मीरा बोली- आज तो सोनेका सूर्य उदय हो गया पंड़ाजी। महाराणाने बड़ी कृपा की। प्रभुसे प्रार्थना करी कि बार-बार राणाको सुमति आवें। पंड़ाजीसे पूछा कि कौन आया है जगन्नाथपुरीसे? दयाराम पंड़ा बोला- मैं नहीं जानता कोई पंड़ा या यात्री आये होंगे। मीरा आँख बन्द कर तम्बूरा पर गाने लगी।

तुम को शरणागत की लाज। भाँत भाँत के चीर पुराये पांचाली के काज॥

प्रतिज्ञा तोड़ी भीष्म के आगे चक्र धर्यो यदुराज। मीरा के प्रभु गिरधर नागर दीनबंधु महाराज॥

भजन पूरा हुआ तो मीराने दोनों हाथोंसे कटोरा उठाया और मुस्कराते हुए मुखसे लगाया। दासियाँ दूर खड़ी हुई भय और लाचारीसे देख रही थीं। अपनी स्वामिनीका भोलापन जो सभीको अपने ही समान सीधा और निश्छल समझती हैं। उनकी

आँखें भर-भर आयीं और आपसमें कहने लगी- क्यों सताते हैं इस देवीको ये राक्षस? क्या चाहते हैं इनसे ये?

उदाबाई भी यह देख रही थीं अपनी भाभीका वह शांत स्वरूप, निश्छल मुस्कराहट, प्रेमपूर्ण नेत्र, दर्पण की भाँति उजले, हृदयके छलहीन बोल और भगवान्‌पर अथाह अड़िग विश्वास। मनमें आया कि भाभी को बता दें कि महाराणा उनपर कितने रुष्ट है। मिथुलाकी मौतसे क्या वो अभी तक नहीं समझी कि किसी दिन उनकी यही दशा होगी। फिर भी यह कितनी निश्चिन्त भगवानके भरोसे? भक्त और भगवान दो नहीं होते भिन्न होते है इन्हीं भक्त का अनिष्ट करने राणा तुला है। यदि भाभी मर गई तो मुझे क्या मिलनेवाला है? केवल पाप ही पाप आयेगा। और यदि नहीं मरी तो? भगवानका कोप मेरे ऊपर उतरेगा। पिछले जन्ममें मैंने न जाने क्या किया न तो पतिकी सेवा मिली और न माँ बननेका सौभाग्य। मेरा तो नारी जन्म व्यर्थ चला गया। न योग सधा और न भोग, अधबिचमें अटकी रह गयी। मेरे भाग्यमें तो घर बैठे गंगा आयी है। जोगभक्ति तो भाभीके साथ रहकर साध सकती है। पर मैंने तो सदा ही उनका विरोध किया। अभी भी मन में आता है प्रायश्चित कर लूँ। मानव जन्म ऐसे ही बीता जा रहा है इसे सँवार ले। इस पारस का स्पर्श करने पर स्वर्ण बन जाऊँगी। यदि कपूर उड़ गया तो सड़े खाद-सी गंध आती रहेगी। यह राणा तो मतिहीन हैं। राणा संग्रामसिंह और भोजराज कोई पागल नहीं थे जो इन्हें सारी सुविधाएँ प्रदान करके प्रसन्न करनेका प्रयत्न करते थे? सारे सामन्त और उमराव इनके ओछेपनसे रूठे बैठे हैं। फिर मैं ही क्यूं इसके साथ जूड़ी रहूँ। क्यों न मैं भाभी के साथ रहकर अपनी कायाका कल्याण कर लूँ। अब भी समय है अवसर बीतने पर केवल पछतावा रह जाता है। भजन पूरा हुआ कि मीरा ने चरणामृत समझकर वो कटोरा होठोंसे लगाया तभी उदाबाई चीख पड़ी और बोली- भाभी रुक जाओ। यह विष है यह मत पीओ। मीरा खिलखिलाकर हँस पड़ी- विष, आप तो जागते हुए भी सपना देख रही हैं। यह तो महाराणाने जगन्नाथजीका चरणामृत पंड़ाजी के हाथ भेजा है। उदा बोली- मैं कुछ नहीं जानती पर यह जहर है। मीरा बोली- ये क्या फरमा रही हैं आप मैं आज भगवान का चरणामृत नहीं लूँ। पता नहीं आज लालाजीको भगवान और अपनी भाभीकी याद आ गयी। प्रभु के चरणामृत के लिये तो मीराका कंठ सदा ही प्यासा रहता है। यदि सचमुच में भी यह विष हो तब प्रभुको अर्पित हो जानेके पश्चात चरणामृत बन गया। आप चिंता न करें प्रभु की लीला अपार है। उनकी सामर्थ्यको कौन पहुँच और आँक सकता है। वे जिसे जीवित रखना चाहें, उसे कौन मार सकता है? मरने और जीनेकी डोर भगवानके हाथ में है। मनुष्यका इसपर जोर नहीं चलता। मीराने कटोरा होठोंसे लगाया और खाली करके पंड़ाजीके सामने सरका दिया।

सूझ मीरा की निराली, पी गई जहर की प्याली, ऐसा गिरधर को बसाया हर स्वांस में।

जब साधारण उपायों से काम नहीं चलता देखा तब दुष्ट राणा ने अपनी भाभी मीराबाई को प्राणदण्ड देने का निश्चय किया। ऊदाबाई भी भाभी को किसी भी प्रकार झुकाना चाहती थीं, परन्तु जब वैसा नहीं कर सकी तब अन्त में सत्ता के कुटिल प्रयोग द्वारा उसे अब मारने के निश्चय पर तुल गई थी। राणा ने ऊदाबाई की व अपने बीजावर्गी वैश्य मंत्री की राय से दयाराम पंडा के साथ श्री द्वारिकाधीश के चरणामृत के नाम से विषय का प्याला मीराबाई के पास भेजा। ऊदाबाई भी पीछे-पीछे हो ली। दासियों ने अपनी स्वामिनी को बहुत रोका कि कपटपूर्वक यह विष भेजा गया है, परन्तु मीराबाई ने तो चरणामृत मान कर उस विष के कटोरे को अपने हाथ में ले लिया और प्रभु से इस कृपा के लिये प्रार्थना करने लगी। ऊदाबाई भी अन्तत: नारी ही थी। अपने हाथ में विष कटोरे को लिए बड़े ही भक्तिभाव से प्रेम पूर्वक भगवद्‌भजन करती हुई भाभी को उसने देखा तब सहसा उसके कुत्सित हृदय में ज्योति प्रकट हुई। उसे अपने हृदय में लगा वह कितनी नीच, अधम है और भाभी कितनी पवित्र और ऊपर उठी हुई है। यह सुन्दर भाव उसके हृदय में उदय तो हुआ पर यह झुँझलाहट

भी उसके मन की कम नहीं थी कि भाभी को मृत्यु स्वीकार है पर अपना हठ छोड़ना नहीं। उसकी जय और अपनी पराजय पर उदाबाई को खीज हुई- मिथ्या, अहंकार का आवरण आया, परन्तु अन्त में उसके हृदय में पश्चाताप हुआ और जब मीराबाई ने विष का प्याला अपने होठों से लगाया तब तो ऊदाबाई उस ओर दौड़ पड़ी और चिल्लाई- भाभी। मत पियो यह जहर है। परन्तु मीराबाई के कंठ में एक घूंट तो जा चुका था फिर भी सुनकर मुसकराते हुए उसने बड़े ही प्रेम से कहा- ऊदाबाई। क्यों चिन्ता करती हो, प्रह्लाद को तो विष कह कर उसकी माता ने पति आज्ञा से उसे पिलाया और उसने प्रसन्नता से पी लिया तो फिर यह तो भगवान श्यामसुन्दर के चरणामृत के नाम से आया हुआ विष ही क्यों न हो उसे पीते हुए भला मुझे तनिक भी शंका क्यों होनी चाहिये। यह कहकर मीराबाई सारा विष पी गई। तब क्षणभर के लये तो मानों अपने अनन्य भक्त का विष अपने अंग में समा लिया हो त्यों ठाकुरजी की प्रतिमा भी नीली सी पड़ गई। प्रभु की इच्छा से मीराबाई के लिये विष भी अमृत समानहो गया। उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

पंड़ाजी ने काँपते हाथोंसे कटोरा उठाया और डगमगाते पदोंसे राणाके पास चले गये। मीराने पैरोंमें घुँघरूँ बाँध इकतारा उठाया और हाथमें करताल ले झंकारके साथ गाने लगी- **पग घुँघरूँ बाँध मीरा नाची रे।**

म्हें तो मेरे साँवरिया की आप ही हो गई दासी रे। लोग कहें मीरा भई बावरी न्यात कहें कुलनासी रे॥

बिस का प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरा हाँसी रे। मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी रे॥

यह सब देखकर उदा उठकर बाहर चली गयीं। सब दासियाँ रोती हुई अपनी स्वामिनी के चरणोंपर जा पड़ी और कहने लगी- यह आपने क्या किया, अब क्या होगा? हम क्या करें? मीराने पूछा- तुम सब क्यों रो रही हो क्या हो गया? मैंने कब जहर पिया मैंने तो चरणामृत पिया। विष पिया होता तो अब तक मर नहीं जाती। भगवानपर भरोसा करना सीखो। प्रह्लादको तो साँपोंसे डँसवाया गया, हाथियोंके पाँव तले कुचलाया और आगमें जलाया गया, पर कुछ नहीं हुआ। जानलो कि मारनेवालेसे बचानेवाला बहुत बड़ा है। चम्पा और चमेली ने कहा- महाराणीजी आप मेड़ता चली जायँ। मीरा बोली- क्या प्रभु मेड़तेमें हैं और चित्तौड़में नहीं हैं? इस सारी धरती पर बसनेवाले जीव भगवान के ही उपजाये हुए हैं। तुम भय त्याग दो। भय भक्तिके साथ नहीं रहता। महाराणा विक्रमादित्य ने दयाराम पांडेसे पूछा- चरणामृत पी लिया मीराने? दयाराम पांडेने कहा- हाँ अन्नदाता, जब कुँवरानीजी पीले लगी तो उदाबाईने अर्ज कर दिया कि इसे मत पीओ। यह तो विष हैं। मेरी तो पिंडलियाँ काँपने लगी सरकार। मेड़तियाँ राठौड़ मेरे टुकड़े-टुकड़े न कर दे। उदाबाई की बात सुनकर कुँवराणी तो हँसने लगी उलटे ऊदाबाई को समझाने लगी- कि आयी हुई मौत टलती नहीं और दूर खड़ी हो तो कोई खिंचकर पास ला सकता नहीं। आप चिंता न करें और मेरी आँखोंके सामने ही उन्होंने पूरा कटोरा होठोंसे लगाकर खाली कर दिया। मैं तो यह देखकर चकित रह गया। विक्रमादित्य बोला-पी लिया तो मेड़तणीजीको जाना ही पड़ेगा। दो घड़ी में मेड़तणी बड़े घर पहँच जायेगी। पर उदाको क्या सूझी जो उसे बचा दिया। जाओ- इस बातकी कहीं चर्चा न करना। दयाराम पाण्डे बोला इसकी खात्री रखे सरकार। उसी समय उदाबाई आयी। राणाने पूछा- काम हो गया है न? उदाबाई ने अस्वीकृतिमें सिर हला दिया। मैं भी दयाराम पांड़ा के साथ गई थी। चरणामृत का नाम सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। प्याले को ठाकुरजीके चरणोंमें रखा। भजन गाया और उस प्याले को उठाकर होठोंसे लगा लिया। न मैंने ही रोकने की कोशिश करी और कहा की यह जहर हैं। परन्तु वे नहीं मानी और उसे सहज ही पी लिया। उनके मुख पर दु:ख व असंतोष की रेखा भी नहीं थी। सहज शांत भाव से वह हलाहल पान कर लिया। और आनंद में मतवाली होकर पाँव में घुँघरू बाँधकर नाचने लगी। वे सचमुच भक्त हैं। उन्हें नहीं सताना चाहिए। जैसा रहना चाहें वैसा रहने दीजिये।

राणाका राजवैद्यको विष देना- विक्रमादित्य बोला- वाह, उदा आप भी आ गयी उस जादूगरनीके जालमें। लगता है वैद्यने कुछ चतुराई की होगी। प्रहरी को पुकारा और आज्ञा करी की वैद्यजीको बुलानेके लिये किसीको भेजो। क्या बात हो गयी वैद्यजी तो कभी झूठ नहीं बोलते। वे तो कह रहे थे कि इतना विष हाथी को पिलाया जाय तो वह भी आधी घड़ीमें मर जायेगा। यहाँ तो दो घड़ी हो गयी। वैद्यजी उपस्थित हो गये और बोले- आज्ञा सरकारजी। महाराणा उफन पड़े और बोले- तुम तो कहते थे कि इस विष से आधी घड़ीमें हाथी मर जायेगा, यहाँ तो मनुष्य का रोम भी गरम नहीं हुआ। राजवैद्य बोला- यह नहीं हो सकता सरकार। उसके लिये तो मनुष्यके लिये तो दो बूँद भी बहुत है। ऐसे लोहेका मनुष्य कौन है। मैं तो किसी प्रकार नहीं मान सकता। राणा दाँत पीसते हुए बोला- चुप रे नीच, हरामखोर। मेरा दिया हुआ खाता है और मुझसे ही चतुराई कर रहा है। भाभी मीराने यह जहर पीया तो था पर वह तो मजेसे नाच-गा रही है। राजवैद्य बोला- भक्तोंका रक्षक तो भगवान है सरकार। चार हाथवाला जिसकी रक्षा करता है वहाँ दो हाथवालों की क्या चलेगी। अन्यथा मनुष्यके लिये तो इस कटोरेमें शेष दो बूँदे ही पर्याप्त है। महाराणा गरजकर बोले- झूठ बोलकर तू मुझे फँसाना चाहता है। ये दो बूँदे तू ही पी। देखूँ तेरी बातमें कितनी सच्चाई और दम है। कमीने मुझे ही धोखा देना चाहता है। वैद्य बोला- सरकार मैंने धोखा नहीं दिया। यह हलाहल है। पीते ही मर जाऊँगा मैं। मेरे बूढ़े माँ-बाप और बच्चे उन्हें कौन रोटी देगा। मेहरबानी करो सरकार। मैंने हुजूरसे कोई दगा नहीं किया है और वैद्य रोने लग गया। विक्रमादित्य बोला- ये त्रिया चरित्र मुझे मत सुनाओ और पीयो इसे। काँपते हाथोंसे वैद्यजीने कटोरा उठाया और होठोंको लगाया और बोला- मेरे नारायण, तुम्हारे भक्तके अनिष्टमें मैंने सहयोग दिया, उसीका दण्ड मुझे मिला। मैं अनजान था। मुझपर दया करो, मेरे अनाथ बालकों और बूढ़े माता-पितापर कृपा करो। कटोराऊपर उठाकर मुँह खोला। विषकी दो बूँदें पी गया। वैद्यजीकी आँखें चक्कर खाने लगीं। मुँह खुल गया और वे भूमिपर जा गिरे। गर्दन लुढ़क गयी, आँखें फट गयीं। महाराणा बोले- क्या यह नखरे कर रहा है, या सचमुच मर गया। उन्होंने प्रहरीको वैद्यजीकी लाश उठाकर उनके घर पहुँचाने की आज्ञा की।

जब विष ले जानेवाले व्यक्ति ने मीराबाई के विष-पान के पश्चात् खाली कटोरा ले जाकर राणा को घटी हुई घटना से परिचित किया तब क्रोधावेश में आकर उसने राजवैद्य को बुलवाया जिसने मीराबाई के लिये विष प्रस्तुत किया था। राणा के पूछने पर उसने कहा कि विष साधारण नहीं था, घोर हलाहल था। उसे पीकर कोई भी प्राणी बच नहीं सकता, परन्तु जब उसने सुना कि विष पी लेने पर मीराबाई का बाल भी बाँका नहीं हुआ तब उसे आश्चर्य हुआ। क्रोधित राणा ने उसे कटोरे की शेष एक दो बूँदें पीकर विष की तीव्रता का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करने को बाध्य किया। मृत्यु के भय से वह टालमटोल करने लगा तब राणा ने बलपूर्वक उसकी जिह्वा पर विष की बूँदें डलवाई और अल्पकाल में ही वैद्यराज के प्राण परलोक की ओर प्रयाण करने को उद्यत हो गये। जिस कटोरे की जहर से मेड़तणीजीको कुछ नहीं हुआ, उसी कटोरेकी शेष दो बूँदोंसे वैद्यजी मर गये। मीरा की भक्ति का प्रताप और राणाजीकी कुबुद्धि दोनोंका परिणाम सामने आ गया।

उदाबाई के जीवन में परिवर्तन- उदाबाई मनमें सोचने लगी इस बिचारे को फालतू में क्यों मारा? किसी कुत्ते या बिल्लीको पीलाकर क्यों नहीं देख लिया। मैं तो मतिहीन हूँ जो इसका साथ देती रही। महलकी ओर जाकर दासीसे बोली- तू ऐसी जगह खड़ी हो जा जहाँसे वैद्यजीकी लाश लेकर उनके घरवाले जाने लगे तो तुम उनसे कहना कि मेड़तणीजीके महल में ले जाओ शायद वे इसे जीवित कर देंगी। स्वयं मीराके महल की ओर गयी और मीरासे बोली- मुझे क्षमा कर दो भाभी। मैंने आपको बहुत दु:ख दिया। मीरा बोली- ऐसा मत कहो कोई किसीको सुख-दु:ख नहीं देता। सुख-दु:ख तो मनुष्यको अपने प्रारब्धसे मिलता है। मुझे तो कोई दु:ख हुआ ही नहीं। प्रभु स्मरण से कोई समय बचे तो दूसरी बला पास आवे।

उदाबाई रोते हुए बोली- मुझे भी कुछ बताये जिससे मेरा जन्म सुधारें। मीरा बोली- मेरे पास क्या रखा है। ये भगवान का नाम है वही आप भी लीजिये। प्रभुपर भरोसा रखो। भगवान के रूप को ही कारीगरी या चाकर मानकर सन्त महात्मा जो कहते हैं वे सुनो और गाओ। उदा बोली- मैं तो कुछ भी नहीं जानती भाभी। मैं तो आपकी बालक हूँ। बालक पेटमें रहते हुए भी लात मारता है। मेरे अपराध क्षमा करो। मीरा बोली- मुझे तो किसीका अपराध दिखायी नहीं देता। भगवान सर्वसमर्थ है उनके चरण पकड़ो। उदा बोली- मैंने तो भगवान कभी देखा नहीं मैं तो बस आपको जानती हूँ। सहसा एकाएक लोगोंके चिल्लानेकी आवाज कानमें आने लगी। उदा बोली- भाभी कुछ नहीं, आपको विषसे न मरते देखकर राणाने यह समझा कि वैद्यजीने दगा किया है। उन्होंने उस प्याले से बची हुई दो बूँदे वैद्यजीको पिला दी। वे मर गये हैं उनका शव उठाकर घरके लोग जा रहे हैं। मीरा बोली- मेरे प्रभु यह क्या हुआ। मेरे कारण इनकी मृत्यु। इससे तो कितने लोगोंका अवलम्ब टूट गया। इससे तो मेरी ही मृत्यु श्रेयस्कर थी। इतने में वैद्यजीके घरवाले वैद्यजीका शव लेकर आ पहुँचे। वैद्यजीकी पत्नी और माँ मीराके चरणोंमें आ पड़ी और मीरासे बोली- अन्नदाता, हम अनाथोंको सनाथ करें। हमें कौन कमाकर खिलायेगा। राणाने हम सभीको जहर क्यों नहीं पिला दिया? हम आपकी शरणमें हैं। या तो हमें जीवन दान करें अन्यथा हमें भी मार डालें।

उड़ते-उड़ते ये समाचार नगर भर में फैल गया। प्रजा में हाहाकार मच गया। राजवैद्य के मृतवत् शरीर को उसकी स्त्री, माता आदि कुल की स्त्रियाँ कुछ भले मनुष्यों की राय से मीराबाई के महल पर ले गये। सारी परिस्थिति को जान लेने के पश्चात् मीराबाई ने तंबूरा लेकर राग मल्हार छेड़ा कुछ विशेष प्रकार से स्वरों के आरोह-अवरोह लेते हुए, मधुर अलाप के साथ वह मल्हार में भगवद् गुणगान करने लगी। मीरा की आँखें भर आयी और मीरा गाने लगी-

हरी तुम हरो जन की पीर। द्रौपदी की लाज राखी तुरत बढ़ायो चीर ।।
भक्त कारन रूप नरहरी धरयो आप सरीर। हिरण्यकश्यप मार लीनो धरयो नाहिन धीर ।।
बूढ़तो गजराज राख्यो कियो बाहर नीर। दासी मीरा लाल गिरिधर चरन कमल पर सीर ।।

चार घड़ीतक रागका अमृत बरसता रहा। मीराकी बंद आँखोंसे आँसू झरते रहे। लोग आपा खोये हुए बैठे रहे। किसीको ज्ञात ही न हुआ कि वैद्यजी कब उठकर बैठ गये और वे भी तन-मनकी सुध भूलकर इस अमृत सागरमें डूब गये हैं। भजन पूरा होनेपर धीरे-धीरे सबको चेतना हुई। माँ, बहू और बालकोंने वैद्यजीको बैठा हुआ देखा। उनके मुखसे अपने आप हर्षका अस्पष्ट स्वर फूट पड़ा। उन सभीने धरतीपर सिर रखकर मीराकी, गिरिधर गोपालकी वन्दना की। चम्पाने सबको चरणामृत और प्रसाद दिया। वैद्यजीकी पत्नीने बारंबार मीराके चरण पकड़े। मनके भावोंको वाणी न मिल पायी। भाषा ओछी पड़ गयी। उन्होंने नेत्र-जलसे मीराके पाँव धो दिये।

आप यह क्या करती हैं? आप ब्राह्मण हैं। मुझे दोष लगता है इससे। उठिये। प्रभुने कृपा करके आपका मनोरथ पूर्ण किया है। इसमें मेरा क्या लगा? आप भगवान्‌का यश गाइये। मीराने अपने पाँव छुड़ाकर उनकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा। बालकोंको दुलार करके और उन सभीको भोजन करवा करके विदा किया। डयोढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते उनके हर्षको मानो वाणी मिल गयी- मेड़तणीजीकी जय। मीराबाईकी जय। भक्त और भगवानकी जय। उस अपूर्व संगीत के प्रभाव से धीरे-धीरे राजवैद्य ने आँखें खोली, फिर उठके खड़े होकर मीराबाई के चरणों में गिर गया और सदा के लिए वह उसका दास बन गया। मल्हार राग गाकर मृतक को भी सजीव करनेवाले मीराबाई के इस चमत्कारी व दिव्य संगीत की प्रशंसा चारों ओर फैलने लगी। उदाबाई बोली- सबके अन्तर सुखको, भीतरके हर्षको प्रकट होने दीजिये। लोगोंने, राजपरिवारने अब तक यही जाना कि यह मेड़तणीजी कुलक्षिणी हैं। इनके आनेसे सब मरे-खुटे हैं। अब उन्हें पता लगने

दीजिये कि मेड़तणीजी गंगाकी धारा है, जो इस कुलका और जगद् प्राणियोंका उद्धार करने आयी है।

इस चमत्कारिक घटना का इस प्रत्यक्ष भक्ति की महिमा का उदाबाई पर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि उसी क्षण से वह अपना मिथ्याभिमान छोड़कर मीराबाई की शिष्या हो गई। उसे आत्मग्लानि हुई और चिन्तन करते हुए उसने यह अनुभव किया।

मैं बौरी अबला रही, डरी किनारे बैठी। जिन ढूँढा तिन पाइयां, गहिरे पानी पैठि ।।

प्रेम तो ऐसो चाहिए, जस मजीठ को रंग। धोये से छूटत नहीं, जाय जिया के संग ।।

ऊदाबाई ने भाभी के आगे आत्म-समर्पण कर दिया। राणा के लिए अब तो और भी बिकट समस्या हो गई; क्योंकि मीराबाई मरी भी नहीं और उसने अब तो ऊदाबाई की प्रकृति को ही बदल दिया। वह अब मीराबाई के निकट रहकर भक्तिभाव से उसकी सेवा और भजन-सत्संग करने लग गई। राणा उस पर भी खीज उठा।

मेड़ताके सलुम्बर रावतने चार-पाँच उमरावोंसे आकर पूछा। चारों ओर क्या बातें सुनायी दे रही हैं। महाराणा ने पूछा- कौनसी बातें? उमरावोंने कहा- सरकारने मेड़तणीजीको जहर दिलवाया है। राणा बोला- किसने कहा आपसे? झूठी बात का क्या उत्तर हो सकता है? यदि मैंने जहर दिलवाया तो मरी क्यों नहीं? किसने उनकी दवा-दारू की? किसने उनको जहर पिलाया और वह ऐसे ही कैसे पी गयी? उमरावोंने कहा- हमें इन बातोंसे क्या लेना-देना? आपने सचमुच उन्हें विष पिलाया या नहीं। यदि पिलवाया तो क्यों? ऐसा कौन-सा अनर्थ उन्होंने कर दिया। वो लाज-पर्दा नहीं करतीं, सो नहीं करती। पर उनको कहीं व्यर्थ आते-जाते नहीं सुना और न देखा। वे केवल रथमें बैठकर मन्दिर जाती है। पर्दा न करनेवाली बात आज की तो है नहीं। बड़े हजूर भी जानते थे और जानकर ही उन्होंने विवाह कराया था। मंदिरमे कोई ज्ञान सुनने चला गया उन्होंने वहाँ कोई घूँघट नहीं किया। उसमें तो उनकी कोई भूल नहीं। राणा बोला- नयी बात तो यह है कि सारंगपुरका नवाब आया। भाभीश्रीसे बातें की और हीरोंका एक हार उपहार में दे दिया। उसने तो तुम्हारी पगड़ियोंमें धूल भर दी। मैं मना कर देता हूँ कि आप महलमें रहकर भजन करें तो उन्हें बुरा लगता है। अब नया समाचार उड़ा दिया है कि मैंने उन्हें विष दिया। मैं कब उनसे जहर पीनेके लिये जोरावरी करने गया। उमराव बोले- यदि भक्ति करने से पगड़ियोंमें धूल उड़ जाती तो उसी दिन घुस गयी, जिस दिन महाराजकुमारका विवाह हुआ और मेड़तणी यहाँ आयी। यह तो आपके शासनकी ढिलाई है कि शत्रु आपके घरमें आये और निकल गये और आप कुछ नहीं कर पाये। कौन जानता है कि वो क्यों आये। खाली भजन सुननेके लिये इतनी बड़ी जोखिम नहीं उठाता। राणा बोला- फिर आप लोग क्या कर रहे है? केवल जागीरीका उपभोग कर रहे है। सलुम्बर रावत बोले आप जागीरीकी क्या बात कर रहे है। हम कोई ब्राह्मण या चारण-भाट नहीं हैं जो जागीरें सरकारने दान में बख्श दी। जागीर हमें बलके मोल मिली है। हमें जागीर नहीं, सम्मान प्यारा है। हम जागीर के लोभ में नहीं है और यदि आप ऐसा समझते हो तो आप जागीर सम्भालिये। राजपूतके बेटेकी जागीर तो उसकी तलवार है। जहाँ वह खड़ा होगा, अपनी जागीर बना लेगा और कमरसे तलवार खोलने लगे कि राजपुरोहितने आगे बढ़कर हाथ थाम लिया और बोला ये क्या कर रहे आप? ये कुँवरसा तो अभी बालक है आप अपने कार्य के लिये पधारे हैं उसकी चर्चा करें। सामंत बोले- हम आपको अपनी मनमानी नहीं करने देंगे। राजा का धन प्रजा है। प्रजा का विश्वास उठनेपर राज्यका टिकना कठिन होता है। राणा बोला- विष तो दिया ही नहीं विष दिया होता तो मेड़तणी देवलोक पधारती। यदि इतनेपर भी सब कहते हैं तो कहने दो। जहर दिया तो मैंने अपनी भाभी को। इसमें दूसरोंका क्या गया? यह मेरे घरकी बात है दूसरोंको दखल देनेका क्या अधिकार है? सलुम्बर रावत बोले- यह बात भूल जायें सरकार। राजाके प्रत्येक कार्यका प्रभाव पूरे राज्य और प्रजापर पड़ता है। अयोग्य व्यक्तियोंके लिये यह आसन नहीं है। महाराणाने अपनी तलवार खींची और

बोले- क्या कहा? सामंत बोले- अपने मुँहसे कहना अच्छा नहीं लगता। आपने यहाँ हजारों-हजार पहलवान पाल रखे हैं। इन पाड़ोंको पालनेके बदले प्रजाको पाला होता तो राज्यके पाँव मजबूत होते। इन भाँड़ों और भगतण्यों वेश्याओं के नाचने, अफीम और भाँगकी मनुहारोंसे राज्य नहीं चला करते। राजगद्दी या सिंहासन सुखकी सेज नहीं, काँटोंका मुकुट है। बहुत दिन हो गये आपके अत्याचार सहते हुए। अब मेड़तणीजीका रोम भी यदि टेढ़ा हुआ तो फिर देख लेना और सामंत लौटनेके लिये मुड़े। राणा भन्नाकर उठ खड़ा हुआ और बोला- नहीं तो भी क्या करोगे तुम। सामंत मुड़े और बोले- किसी भरोसे या अन्देशेमें मत रहिये सरकार। राजा धरती फोड़कर नहीं प्रकट होते। राजाको यह हमारी भुजाएं बनाती है और मुड़कर चले गये। राणा बोला- ये मेड़तणी सारे अनर्थों की जड़ है और दाँत पीसने लगा। इतने में दौड़ती हुई भूरी दासी आयी और राणासे बोली- सरकार कुँवरानीके महलमें किसी पुरुषका स्वर सुनाई दे रहा है। हँसते बोलनेके स्वर बाहर आ रहे है। द्वार बन्द और भीतरसे बातचीतके स्वर आ रहे हैं। नंगी तलवार लेकर महाराणा कक्ष के पास गया और द्वार खटखटाने लगे, कान लगाये सुन रहे थे। फिर द्वार खटखटाने लगा। मीराने अंदरसे पूछा कौन है? राणा बोला- तुम्हारा काल, द्वार खोलो। मीराने हँसते-हँसते द्वार खोला- अरे राणाजी आप पधारे और भीतर आनेका संकेत किया। भीतर प्रवेश कर राणाने चारों ओर देखा। पलंग बिछा हुआ था, नीचे देखा, पासमें चौसर बिछी हुई थी, पांसे बिखरे हुए थे मानो कोई खेलते-खेलते उठ गया हो। मीरा को पूछा- कहाँ गया वो तुम्हारा साथी। मीराने कहा- अभी तो यहीं था चौपट खेलकर सोने गये होंगे। क्या आप उन्हें ढूँढ रहे है। जब चेतना आये तभी सुबह होगी। वे तो ढूँढनेसे नहीं मिलते लालजी। उनकी तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है। वे तो सब जगह है कहाँ ढूँढोगे उनको। राणा बोला- चुप रह, सीधीसी बता। नहीं तो मुझसा बुरा कोई नहीं होगा और तलवार उठाकर सामने करके बोले। मीरा बोली- मैं कहाँ बताऊँ उनको लालजी, वे कहाँ नहीं है, वे क्या किसीके बसमें आते हैं? राणा बोला- तुमने तो हमारे मुँहपर कालिख पुतवा दी। मैं कहता हूँ वो कहाँ है जो अभी-अभी आपसे बातें कर रहा था। तू तो कुलनाशिनी है, कुलकलंकिनी है। राणाजीका क्रोध सीमा पार कर गया। वे राजघरानेकी मर्यादा ही भूल गये और तलवारका वार करते हुए भयानक स्वरमें बोले- अपनी करनीका फल भोग। मीराकी देहसे तलवार यों पार हो गई जैसे शून्यसे पार हुई हो। मीरा तो जहाँ-की-तहाँ खड़ी मुस्करा रही थी। यह देखकर राणा भौचक रह गया। उसने दुगने वेगसे अंधाधुंध वार किया। मीरा को हँसते देखकर राणाका हाथ रुक गया। राणाने देखा- एक नहीं दो मीरा खड़ी हैं। राणा असमंजस में पड़ गये कि कौनसी सच्ची है और कौनसी झूठी। दूसरी बार देखा तो चार मीरा खड़ी दिखाई दी। राणाने घबराकर आँखें बन्द कर ली और तलवार फेंककर चींखते हुए बाहर भागे कि अरे यह तो डाकिनी है, जादूगरनी है पूरे मेवाड़को खा जायेगी। राणा चला गया। थोड़ी देर बाद मीराने तलवार उठाकर भूरीबाई को दी और कहा कि राणाजीको दे आओ हम इसका क्या करेंगे। चम्पा दासीने पूछा- क्या हुआ? मीरा बोली- लालाजी ठाकुरके दर्शन करने पधारे थे किन्तु वह छलिया तलवारके जोरसे थोड़े ही बसमें आता है। मनुष्य का दुर्भाग्य कैसा है गंगातटपर भी प्यासा रह जाता है।

चारों ओर बातें फैलने लगी कि मेड़तणीजीको मारने राणा पधारे किन्तु तलवार उनका देह भी स्पर्श नहीं कर सकीं और वे एक से अनेक हो गयी। महाराणा का अपयश और मीराकी भक्ति का प्रताप बढ़ गया। महाराणाने फिर उनको अगवा किया कि वे साधु समाज में नाचना-गाना छोड़ दे अन्यथा उन्हें जिन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा। मीराने उत्तर दिया-

मीरा जनमी मेड़ते लेख लिख्या चित्तौड़। धन मीरा धन मेड़तो धन धन हो राठौड़॥

एक दिन उड़ते हुए समाचार राणा के कान पर आये कि मांडु का सुल्तान और उसका दीवान दोनों हिन्दू साधु के भेष में मीराबाई के दर्शन करने तथा उसका अपूर्व गीत सुनने आये थे और उसके गिरिधर गोपाल के लिये अमूल्य रत्नहार तथा कुछ स्वर्णमुद्राएँ भी भेंट कर गये थे। गुप्तचर ने भी इस बात का अनुमोदन किया। यह सुनकर राणा की स्थिति कंस जैसी

हो गई। कंस को जहाँ तहाँ अपना काल कृष्ण ही दिखाई देता था। विक्रमादित्य को भी मीराबाई अपनी महान सत्ता की अवरोधक और दुर्भेद्य किले जैसी अगम्य, अविचलित और अपने सामर्थ्य व मान का मर्दन करनेवाली प्रतीत होने लगी। उसे कुल की मर्यादा मिट्टी में मिली सी दिखाई देने लगी। ज्यों प्रह्लाद को मारने के लिए प्रयोग पर प्रयोग किये गये पर वह प्रभु की कृपा से अभेद्य और निर्भय ही रहा- इसके विपरीत हिरण्यकशिपु की मन:स्थिति ही अधिकाधिक वैरभाव भरी, भयभीत, चंचल और क्रोधावेशयुक्त होती गई- त्यों आज विक्रमादित्य भी वैराग्नि की ज्वाला में जल रहा था। उसे नींद भी नहीं आती। उसका क्रोध पराकाष्ठा को पहुँच गया।

अन्त में राणा ने स्वयं मीराबाई को मारने का निश्चय किया। वह योग्य अवसर की ताक में रहा। एक रात्रि को उसके गुप्तचर ने आकर उसे कहा कि मीराबाई अपने कक्ष में किसी पुरुष से बातें कर रही है। यह सुनकर क्रोधान्ध हो राणा उसकी दृष्टि में कुल कलंकिनी मीराबाई को मारने लिये हाथ में खड्ग लेकर वहाँ गया। द्वार बन्द था। खोलने को कहा पर जब कोई उत्तर न मिला तब राणा ने लत्ता प्रहार द्वारा किवाड़ को तोड़ डाला और भीतर देखता है तो मीराबाई के सिवाय और कोई नहीं। गर्ज कर राणा ने पूछा बोल तेरा वह जार कहाँ गया, उसे तूने कहाँ छिपा रखा है कुलटा। परन्तु मीराबाई तो अपनी ही धुन में थी। वह चौकन्नी होकर इधर-उधर देखती हुई बोली- वे कहाँ चले गये? अभी तो यहीं थे। मेरे साथ चौपड़ खेले, मेरा नैवैद्य स्वीकार किया और प्रेम की बातें करते हुए सुधा-धाराओं में नहा रहे थे। राणा तुम आये और वे चले गये। तनिक पहले आते तो तुम्हें भी उनके दर्शन हो जाते। कैसी उनकी वह कृष्ण कमनीय व घुंघराली अलकावलि, वह मोर मुकुट, वह उनकी बाँकी छटा और उनकी वह मुरली की माधुरी तान और उनके... । बस करो तुम्हारी बातें- कड़ककर राणा कहने लगा- मुझे सीधी रीति से कहती हो या नहीं, वह कहाँ है? आज तुम दोनों को मेरे खड्ग कास्वाद चखाकर अन्तिम निर्णय कर देता हूँ। यह कहकर बड़बड़ाता हुआ राणा इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। दाँत होठ चबाकर शय्या पर उसने दृष्टि डाली तो वहाँ दुपट्टा ओढ़े हुए किसी को सोते हुए पाया। भयंकर अट्टहास करता हुआ राणा आगे बढ़ा और खड्ग से दुपट्टे को उठाया तो एक भयंकर नरसिंह रूप को देखा। राणा से भी अधिक भयंकर अट्टहास करते हुए उस स्वरूप ने कूद कर ओ धँसकर, तीक्ष्ण नखवाले दोनों हाथ, राणा को पकड़ने को फैलाये त्यों ही- अरे बाप रे चिल्लाता हुआ भयभीत राणा भागकर कमरे से बाहर हो गया। जब वह कुछ स्वस्थ हुआ तब फिर उसका क्रोध उमड़ आया और क्रोध से काँपते हुए उसने मीराबाई को उसके कमरे के बाहर बुलवाया और तेरे जैसी कुलघातिनी नारी का जीवित रहना ही इस पृथ्वी पर भार रूप है, अब तुझे मैं ही स्वयं मार कर इस कलंक को मिटा कर ही रहूँगा, यह कहकर ज्यों ही वह मीरा पर खड्ग का प्रहार करने उद्यत हुआ त्यों ही उसने एक मीरा के स्थान पर दो मीराँ को देखा। किंचित् घबराकर किस मीरा को मारूँ, इस विचार में पड़ता है, उतने तो दो की चार मीरा हो गई। राणा ठिठक जाता है और फिर देखता है तो सहस्त्रों मीरा ही मीरा उसे अपने चारों ओर दिखाई देने लगीं। अनेकों मीरायें हँसती हुई नजर आने लगीं। राणा के हाथ से तलवार गिर पड़ी, वह सिर पर हाथ पटकने लगा और हाय पिशाचनी कहकर वहाँ से पगला सा लड़खड़ाता हुआ भाग कर अपने महल में चला गया।

महाराणाका सम्मान दाँवपर लग गया। वे सोचने लगे एक स्त्रीने मुझे साँसतमें डाल दिया? अवश्य ही जादूगरनी है। मेड़तणी तुझे मरना तो पड़ेगा। राजमाता हाड़ीरानी आयी और पूछा- क्या बात हैं कुँवर, भोजन नहीं कर रहे हो? आपका कोई क्या बिगाड़ सकता है। राणाने अपनी माँको रातकी सारी बातें बतायी। हाड़ी रानी बोली- यह उसकी भक्ति का प्रताप हैं आप व्यर्थ में उससे क्यों उलझ रहे हैं। राणा बोला- मेड़तणी कोई मोहिनी मन्त्र जानती हैं। उन्होंने तो उदाबाई को भी

अपनी वश में कर लिया और आप भी उनकी ओरसे बोलने लग गयी। हाड़ी रानी बोली- ऐसी बात मत कहो। मैं तुम्हारी माँ हूँ, तुमसे बढ़कर प्रिय मुझे दूसरा कौन होगा। आप बहूको ठुकरा रहे हैं वह आपके योग्य नहीं। वह आपके माँ के बराबर बड़ी भाभी है। सम्मान तो शत्रुका भी करना चाहिये। जिस एकलिंगके आसनपर आप विराजे हैं, उसपर पहले आपके पूर्वज विराज चुके हैं। आप उनका अनुसरण करें। इन ओछे लोगोंकी संगति छोड़ दीजिये। संगका रंग अनजाने में ही लग जाता है। दारु, भाँग, अफीम और धतूरेका सेवन करनेपर जब नशा चढ़ता है, तब मनुष्यको मालूम हो जाता है और मनुष्य गाफिल हो जाता है। आप संग करिये उन उमरावोंका जो बल और बुद्धिके धनी है और उनकी रायसे राज्य कीजिये। आपकी आयु छोटी है। उनकी राय लीजिये न कि इन पहलवानों और भाँड़ोंकी। आपके पिताश्री उनकी राय ही नहीं उनका सम्मान भी करते थे और समय-समय पर उन्हें पुरस्कृत भी करते थे। राज्य अकेले राजासे नहीं चलता और मेड़तणीजीको भूल जाओ मानो इस जगत में हैं ही नहीं। राणा बोला- राजमाता, यह कैसे हो सकता है? क्यों नहीं मेड़तणीजी घरमें बैठकर राम-राम करती, क्या महलका आँगन छोटा पड़ता है? क्या अपनी कलाबाजी इन बाबाओंको बतानी है? या तो मैं रहूँगा या भाभीश्री यहाँ रहेंगी। हाड़ी रानीने कहा- यह क्या कह रहे हो? राणा बोले- राजमाता मुझसे अब सहा नहीं जाता। हाड़ी रानी बोली- यदि ऐसा ही है कोई ऐसा उपाय कर लो आपकी बदनामी भी नहीं हो कल आपको इतिहास हत्यारे की पदवी न दें।

राणाका मीराको भूतमहल में भेजना- राणाने माँ की ओर देखकर पूछा- राजमाता, भूत महल में क्या सचमुच भूत रहते हैं? रानी बोली- कहते तो सभी यही हैं कि जो उस ओर जाता है वो मर जाता है। राणा बोला- तो कल फिर आप भाभीके साथ भूतमहल को देखने पधारें। हाड़ी रानी बोली- और उनके बदले भूत किसी और को खा गया तो? महाराणा हँसे और बोले- इतने लोगोंके बीच कभी भूत नहीं आते, फिर भगतोंके साथ रहनेवालोंके पास तो आयेंगे कैसे?

रतनसिंह की माता धनाबाई की दासी ने मीराको आकर कहा- कुँवरानीजी, राजमाता धनाबाईने बुलाया है। किस समय आऊं आपको बुलानेके लिये। मीरा बोली- दिन ढलनेपर मैं स्वयं उपस्थित हो जाऊँगी। रातको मीरा सास धनाबाईके महल में पधारीं वहाँ सभी राजपरिवारकी स्त्रियाँ उपस्थित थीं। राजमाता बोली- तुमसे मिलना सहज नहीं हो पाता। मीरा बोली- बड़ी कृपा हुई मैं तो हजूरकी बालक हूँ। दुर्भाग्य मेरा की आपकी कोई सेवा नहीं बन पायी मुझसे। हाड़ीरानी बोली- भक्तोंका भगवानसे पिंड छूटे तो दूसरा कोई याद आये ना। मीरा बोली- प्रभु समर्थ हैं उद्धार उनकी कृपासे होता है। वहाँ बैठे हुए किसीने पूछा- मरनेके बाद क्या सचमुच मनुष्य भूत बन जाता है, यदि बनता तो दूसरोंके सिर क्यों लगता फिरता है? क्या हमको भी कभी भूत बनना पड़ेगा? मीरा बोली- भूत ही क्यों, जगतमें जितने भी प्राणी दिखायी देते हैं, वे सब मनुष्य योनिसे निकले जीव हैं। मानव-जीवनमें किये गये कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही दूसरी जूण (योनि) बनी है। अब रही दूसरोंको लगनेकी बात, सो मरनेके पश्चात् भी स्वभाव तो साथ रहता है। जिसका स्वभाव संतोषी और भला है, वह भूत बने कि पशु, वह भला ही रहेगा और जिसका स्वभाव दुष्ट है, वह मरनेपर भी दुष्ट ही रहेगा। मन साथ रहनेसे तृष्णा बनी रहती है, उसी तृष्णाके वश होकर वह लोगोंके पास जाता है। मैंने तो कभी देखा नहीं, किन्तु सुना है कि भूतोंके मुँह सूईके छेद जैसे होते हैं। वे कुछ भी खा-पी नहीं सकते। सड़े फलोंका रस, मोरीका पानी, ऐसा ही कुछ वे ग्रहणकर सकते हैं अथवा मानव जन्मके उनके सगे-सम्बन्धी पिंड दें तो वह उन्हें प्राप्त होता है। सम्भव है कि इससे उन्हें मानसिक तृप्ति न होती हो। इसी कारण वे किसीकी देहको माध्यम बनाकर उसके मिससे खाते-पीते और पहनते हों। हाड़ीरानी बोली- तभी तो भूत महलकी ओर कोई नहीं जाता। जो भी जाता है, वह या तो बीमार हो जाता है या मर जाता है। मीरा बोली- भगवानका नाम

लेनेपर कोई भूत पास नहीं आते। मनुष्य कहीं भी जायें भूतप्रेत की कोई मजाल नहीं जो उसके पास आये। हाड़ीरानी बोली- क्या सच। मीरा बोली- मनुष्य भगवान का नाम लेकर तो भवसागरको भी पार कर जाता है फिर बेचारा भूत क्या चीज है? भगवान से भी भगवान का नाम बड़ा है। हाड़ी रानी बोली- हमें तो भूत महल दिखादो। सुना है कि भूतमहल बहुत सुन्दर बनाया हुआ है। आपके साथ रहेंगी तो भूत हमें भी कुछ नहीं कर पायेंगे। मीरा बोली- आप आज्ञा करें मैं तो कभी भी तैयार हूँ। हाड़ी रानी ने कहा- अभी चलें। दासियोंको आज्ञा दी तुम मशालें तैयार कर दो। हाड़ी रानी- पचास-साठ स्त्रियोंके साथ मीराको लेकर भूतमहल की ओर गयी। रातभर मीरा महलमें नहीं आयी। मीराकी दासियाँ चम्पा और चमेली धनाबाई के महल में दौड़ी गयी और पूछा- राजमाता कुँवरानी मीरा नहीं आयी। राजमाता धनाबाई बोली- हाड़ीरानीके महल में पूछो। हाड़ीरानीने कहा- भूतमहल से वापस लौटते समय रातको हमारे साथ थी फिर अचानक कहा गयी हमें क्या पता। वह तो भक्त हैं इनकी माया को कौन जान सकता है? चम्पा और चमेली दासियाँ बोली- हमें भूत महल जानेकी आज्ञा दें। अवश्य ही कुँवरानी इसमें कैद हो गयी होगी। वहाँ के उपस्थित लोगोंने कहा- तू कहाँ जायेगी और कैसे जायगी? उस महल की चाभियाँ तो राणाके पास हैं क्योंकि वे भी रातको भूतमहल गये थे। दासियाँ जोर-जोरसे रोकर कहने लगी- हमारी कुँवरानी तो भोली-भाली है। छलप्रपंच इन्हें छू भी नहीं गया। क्या बिगाड़ा उन्होंने किसीका? क्यों मारना चाहते हैं वे उन्हें। हम मेड़ते चले जायँगे या किसी तीर्थमें जा बैठेंगे। जहाँ हमारी कुँवरानीजी होगी वहीं हमें पहुँचा दो। राजमाता हाड़ी रानी बोली- चुप रह, तेरे बिलखतेसे कुछ भी ठंडा नहीं होगा। तेरे होहल्ला करनेसे तेरी बाई कल मरती होंगी तो आज ही मर जायें। विधाता के आगे किसका जोर चलता है तू जा मुझसे जो हो सकेगा सो करूँगी, पर ध्यान रहें घरकी बात बाहर न जाय। राणासे कोई पूछता था- तो कहते थे मेड़तणीजी अपनी पीहर गयी गई, कोई कह देता तीर्थयात्रा पर गयी, कोई कहता स्वास्थ्य ठीक नहीं है। किसीको भी उनकी जानकारी नहीं मिली। चारों ओर खलबलाहट मच गयी धीरे-धीरे बात फैलने लगी। द्वारपालने लोगोंको बताया आज चार दिन हो गये। साँझके समय राजमाताजीसे मिलने पधारीं और अभी तक वापस नहीं लौटी। हमने तो सबकुछ करके देख लिया। हमारी शक्ति ही कितनी है? कोई कहता कि वे लोप हो गयीं, कोई कहता है कि हमें कुछ नहीं मालूम। कोई सच्ची बात नहीं बताता। सब राणासे डरते हैं। दूसरे दिन सलूम्बर रावत धनाजी के महल में आये। आज पाँच-छ: दिन हो गये दासियोंने बताया- हमारी महारानीको भूतमहल के किसी कक्ष में बन्द कर दिया। न उनको जल है न अन्न। ऐसी सीधी सरल भली आत्माको यह लोग सता रहे हैं। अब हमसे सहा नहीं जाता। हमारी महारानीने यहाँ पधारकर किसका बुरा किया? किसे ओछी बात कही? और किसका कुछ छीन लिया? भक्ति छोड़ना तो उनके बस में नहीं है। मनुष्य का भला-बुरा सोचनेका उनके पास समय ही कहा है? इस घरकी बेटी गिरजा मेड़ता घरकी बहू हैं यह बात भी राणा को मालूम हैं। जानते हुए यह सम्बन्ध स्वीकार किया गया फिर भक्ति छुड़ानेके लिये इतने अत्याचार क्यों कर रहे हैं? आप किसीप्रकार हमारी कुँवरानी मीराको छुड़ा दीजिये हम मेड़ते चले जायँगे। सलूम्बर रावत ने कहा- क्यों चले जायँगे मेड़ते? यहीं सिसौदिये यहाँ उनको लेकर आये हैं तो जीवनभरके लिये आधी आयुके लिये नहीं। मैं जाकर खोज करता हूँ। सफल होता हूँ या नहीं, यह भगवान के हाथमें है। जिस अवस्थामें जहाँ भी होंगी, उन्हें महल पहुँचानेका प्रयत्न करूँगा। सलुम्बर राव दौड़कर महाराणा विक्रमादित्य के पास गया और कहा- भूतमहल की चाभियाँ दें सरकार। कुँवरानी मेड़तणीजी अपनी महल में नहीं है सुना है सब रानियोंके साथ वे भूतमहल में पधारी थी वहाँसे लौटकर महलमें नहीं आयी। आप पाँच-छ: दिन हो गये। यदि उन्हें कुछ हो गया तो क्या होगा यह भगवान ही जाने, किन्तु

इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा। एक बार भूत महलमें देख लिया जाय। कहीं भूलसे किसी कक्षमें न रह गयी हों। राणा बोला- भाभी महलोंमें नहीं हैं यह बात मुझे आजतक किसीने नहीं बतायी फिर आपको इतनी दूर अर्ज करने कौन गया? सलुम्बर रावत बोला- कौन आया और कौन नहीं आया यह विवाद तो बादका है। समझ में नहीं आता कि घरमें से मनुष्य लोप हो जाय और हमें ज्ञात नहीं होता बाहर का तो राम ही मालिक है। राणा बोला- ज्ञात तो सबकुछ है पर हम किसीका नाम नहीं ले सकते। भक्तोंकी बात कौन करें, हमारी तो पहले ही बहुत बदनामी हो चुकी है। कुछ स्त्रियाँ कह रही थी- लौटते समय दरवाजे पर से ही भाभी लोप हो गयी। तब हमें क्या करना चाहिये। सलुम्बर रावत बोला- आपको तो मालूम ही है सरकार स्वयं पधारे थे वहाँ। जो भी हुआ होगा सरकारकी नजरसे होकर ही हुआ होगा। चाभियाँ दे दें तो एक बार जाँच कर लें। लोप हो गयी हों तो बड़ी खुशीकी बात है, अन्यथा जीवित-मृत जैसी भी होगी मिल ही जायँगी। राणा बोला- आप क्यों कष्ट करते हैं मैं स्वयं जाकर देख लेता हूँ। सलुम्बर बोला- ऐसा क्यों फरमाते है? यदि आपको चलनेकी इच्छा हो तो अवश्य पधारे। भूतमहल के नाम से तो यों ही लोग डरते हैं। एकसे अधिक हो तो हृदयमें बल रहेगा, राणाने चाभियाँ फेंक दी और कहा- लो यह चाभियाँ सचमुच कही भीतर रही होगी तो सब मेरे सिर पड़ जायेगी। भूतमहलके कक्षमें भूमिपर पद्मासन लगाये नेत्र बन्द किये मीरा विराजी थी उसके तेज से पूरा अन्धेरा कक्ष देदिप्यमान हो रहा था। रावत ने दरवाजा खोला उसका यह अलौकिक रूप राशि और तेज देखकर आश्चर्यचकित रह गये। दासियोंको रथ लानेके लिये भेजा। उस ध्यानमग्न मीराको उठाकर रथपर विराजित किया और राजमहल पहुँचाया।

राणा ने मीराबाई को भूतमहल में निवास दिया। जिस पुराने महल में भूतों का वास माना जाता था और उसी भय से वहाँ कोई नहीं रहता था, उस जन-शून्य भूत-भवन में रहने से अवश्य ही मीराबाई का अन्त हो जायगा, राणा यही समझ रहा था; परन्तु मीराबाई जैसी प्रभु की अनन्य भक्त के पवित्र सानिध्य से, उसके भक्ति के व भजन के प्रभाव से एक ही रात्रि में मीरा को डराने आये हुए सब भूतात्माओं की ही मुक्ति हो गई।

राजमाताओंने पूछा- इतने दिन बिना खाये पीये कैसे रह सकी। मीरा बोली- मनुष्य का मन जिसओर लगा रहता है वही बात उसे सूझती है। राजमाता पुँवारजीसा बोली- दीवानजी तुमसे इतने रुष्ट क्यों हैं? नित्यप्रति तुम्हें मारनेके लिये कोई न कोई प्रयास करते रहते हैं। किसीदिन सचमुच ही कर गुजरेंगे। सुन-सुनकर जी जलता पर क्या करें। रानी हाड़ीजीके अतिरिक्त तो यहाँ हमारी किसीकी चलती नहीं। अच्छा हो तुम अभी पीहर चली जाओ। मीरा बोली- हम कहीं भी चले जायें कुछ भी कर लें, प्रारब्ध तो भोगना ही पड़ेगा। दुःख देनेवालेको ही पहले दुःख सताता है, क्रोध करनेवालेको पहले क्रोध जलाता है। जितनी पीड़ा वह दूसरेको देना चाहता है वही उतनी पीड़ा पहले उसे स्वयंको भोगनी पड़ती है। मुझे तो राणापर तनिक भी रोष नहीं है। आप चिंता न करें। प्रभुकी इच्छाके बिना कोई कुछ नहीं कर सकता और प्रभुकी प्रसन्नतामें मैं प्रसन्न हूँ। राजमाता बोली- इतना विश्वास, धैर्य तुममें कहाँसे आया? मीरा बोली- इसमें मेरा कुछ भी नहीं है राजमाता। यह तो संतोंकी कृपा है। सत्संगने मुझे सिखाया। प्रभु ही जीव के सबसे निकट और घनिष्ट आत्मीय है। वही सबसे बड़ी सत्ता है। राजमाता बोली- तुम सत्य कहती हो। तुम इतने दुःख झेलकर भी सत्संग नहीं छोड़ती , किन्तु मेरी समझमें यह बात नहीं आती कि भगवानके घरमें यह कैसा अँधेरा है। निरपराध आदमी अन्यायकी चक्कीमें क्यों पीसते रहता है और अपराधी लोग क्यों मौज उड़ाते है। यह तुम नहीं जानती कि ये हाड़ी रानी जबसे ब्याह करके आयी हैं, उसी दिनसे हम सौतोंके पैर तलें अँगारे बिछाये हैं। इन्हें तो केवल अपनी ही सूझती है। ये राजनीतिमें पटु है। राणा सदा इन्हींकी बात सुनते हैं। अपने स्वयंका बेटा उनका दीवान है। मीरा बोली- आप चिंता न करें

राजमाता। बीती बातें याद करके दु:खी होनेमें क्या लाभ? बीत गयी सों बीत गयीं वापस नहीं लौटेगी। दूसरोंके दोषोंसे हमें क्या? भगवान कोई अंधे और बहने नहीं है। समय पाकर ही खेती फल देती है और कर्म पकते हैं। अपने दु:ख अपने कर्मोंके फल है। दु:ख-सुख कोई वस्तु नहीं हैं कि दूसरा हमें दे सके। सभी अपनी ही कमाई खाते हैं, दूसरे तो केवल निमित्त मात्र हैं। मीराने सासूको खिला-पीलाकर ससम्मान विदा किया।

समाचार मिला बहादुरशाह गुजराती चित्तौड़पर चढ़ाई करनेके लिये चला आ रहा है। जिन पहलवानोंपर महाराणा विक्रमादित्यको नाज था वे भयभीत होकर इधर-उधर छिपने लगे। गुजराती फौजने चित्तौड़गढ़को घेरकर भैरवपोलपर संवत १५८६ वि. की माघ पूर्णिमाके दिन अपना कब्जाकर लिया। आश्चर्य यही है कि ये किलेके ऊपर नहीं पहुँचे। ऊपर सेना तो थी नहीं, केवल पहलवान और सेवक थे। वे अपने प्राणोंके भयसे बंदूकें चला रहे थे। कहते हैं कि टूटी कमान दोनों ओर डराती है। राजमाता हाड़ीजीने हुँमायूसे सहायताके लिये राखी भेजी। हुँमायू सहायताके लिये सेना लेकर चला भी, किन्तु ग्वालियर तक पहुँचते-पहुँचते उसे बहादुरशाहका पत्र मिला- मैं जिहादपर हूँ। तुम विक्रमादित्यकी मदद करोगे तो खुदाको क्या जवाब दोगे।

इस पत्रको पढ़कर हुमायूँ दुविधामें पड़ गया और वह ग्वालियरमें ठहर गया। अब राजमाता हाड़ीजीके पास संधिके अतिरिक्त कोई उपाय न रहा। बचे-खुचे उमरावोंसे विचार-विमर्श करके उन्होंने संधिका संदेश भेजा। महाराणा साँगाके समय माँडू राज्यका जो इलाका जीत लिया गया था, वह इलाका और जड़ाऊ कमरपट्टा एवं ताज देकर संधि की गयी। इस संधिमें सौ घोड़े, दस हाथी और बहुतसे सिक्के भी दिये गये। बहादुरशाह वि. सं. १५८६ के चैत्र कृष्ण १३ को चित्तौड़से लौटा।

इस समय महाराणा विक्रमादित्यके चाल-चलनमें सुधार आनेकी कुछ आशा लोगोंके मनमें हुई, किन्तु इनका स्वभाव जैसा था, वैसा ही रहा। ये न किसीका विश्वास करते और न किसीका सम्मान। रात-दिन चाटुकारोंसे घिरे रहते। मन-ही-मन कूढ़े हुए मानधनी राजपूतोंके चिन्तनकी धारा ऐसी थी कि या तो आत्मगौरवका मान बनाये रखें या मान तजकर महाराणाके साथ रहें। विवश होकर उन्होंने चित्तौड़ छोड़-छोड़ अपने-अपने गाँवोंकी राह ली।

नीम न मीठा होय, सींच गुड़ घी सूँ। ज्याँका पड्या सुभाव क जासी जीव सूं।।

मीराके पास हिंसक शेर भेजना- अपने षडयंत्र में असफल होने से झुँझलाए हुए राणा ने वन में से एक व्याघ्र पकड़वा मंगाया और तीन दिन तक उसे भूखा रख कर तब कोट के अहाते के भीतर, एक ओर तो व्याघ्र का पिंजरा मँगवाया और दूसरी ओर मीराबाई को बुलवाया। मीराबाई उस घेरे में चली गई तब उस व्याघ्र को पिंजरे के बाहर खुला निकलवाया। क्षुधातुर व्याघ्र दहाड़ता हुआ छलांग मारकर मीराके निकट आया। कक्षके द्वारपर युवा केशरी शेर खड़ा था। उसे देखकर गोमती दासी सहसा चिल्लाकर बोली- कुँवरानीबाईसा, व्याकुल दृष्टिसे स्वामिनीकी ओर देखकर द्वारकी ओर हाथसे संकेत किया। चम्पा द्वार बन्द करने लगी और बोली- द्वारपर प्रत्यक्ष काल खड़ा है। चार दिन पहले ही इसे जंगल से पकड़कर लाया गया है। मीरा बोली- डर मत, इसी कालके समीपसे होकर तू अन्दर आयी हैं द्वार खोल आज तो नृसिंह भगवान पधारे हैं। मीराबाई को इसकी कल्पना तक नहीं थी फिर भी धैर्यपूर्वक भगवद्-स्मरण करते हुए उसने कहा- अहो मेरे श्यामसुन्दर, आज क्या इस नरसिंह रूप में दासी को दर्शन देने पधारे हो नाथ। इस प्रकार पूरे वेग से धंसकर जबड़ा फाड़कर आता हुआ व्याघ्र मीराबाई के निकट आकर शान्त हो गया। सिर नीचे झुकाकर, पूछ पैरों में दबाता हुआ वह मीराबाई के चरणों के निकट आकर पालतू श्वान के जैसे शान्ति से बैठ गया। तब मीराबाई ने दासी को पुकार कर कहा-

मेरे ठाकुरजी आज नरसिंह रूप में पधारे हैं, शीघ्र पूजा की सामग्री ले आओ। राणा और उसके कपटी साथी जो कोट के ऊपर से देख रहे थे, आश्चर्य विमूढ़ हो गये। मीराने वनराज को कुंकुल तिलक किया और लाल कनेर के पुष्प चढ़ाये। तब तो राणा को पूरा विश्वास हुआ कि मीरा अवश्य ही मंत्र-तंत्रादि में निपुण है।

पूजाकी थाली हाथमें लेकर मीराने पुकारा- पधारो प्रभु, आज तो दासीपर असीम कृपा की। बड़ी कृपा की प्रभु। कहते-कहते गला भर आया उनका।

जैसे वनराज उन्हींकी इजाजतकी प्रतीक्षा कर रहे हों, देहरी लाँघकर वे निश्चिन्त भावसे कक्षमें पधारे। ऊपर उठी पूँछ उनपर चँवर कर रही थी। जीभसे होठ चाटकर एक लम्बी उवासी ली और शांत खड़े हो गये। स्वामिनीको निर्भय देखकर दासियोंने भी थोड़ा धीरज थामा। वे आरती, भोग, माला, ताम्बूल, धूप, दीप, फूल आदि शीघ्रतापूर्वक स्वामिनीके पास रखने लगीं। मीराने तिलक करनेको हाथ उठाया तो मृगराजने मस्तक झुका दिया। माला पहना करके उन्होंने आरती की और दूध, मलाई, मिठाईको भोग लगाया। केशरीने मिठाई खाकर जीभसे लपर-लपर दूध पिया। मीराके साथ सभी दासियोंने धरतीपर मस्तक धरकर प्रणाम किया और मन-ही-मन कहा- हमारी स्वामिनीका बाल भी बाँका मत होने देना प्रभु। सिर झुकाकर नाहरने मीराका सिर सूँघा और पलटकर चल पड़ा। देहरीके पास खड़े होकर उसने सिर घुमाकर मीराकी ओर देखा। मीराने हाथ जोड़कर सिर झुकाया। उसी समय पहरेवाला भैरू सिंह दौड़ा आया- मेरी भूल क्षमा हो सरकार। मुझे अन्नदाता हुकमने याद फरमाया था। अभी लौट आऊँगा, यही सोचकर बिना किसी अन्यको पहरा सौंपे चला गया। लौटकर देखा। तभी ड्योढ़ीपर नाहरके दहाड़नेकी आवाज आयी। भैरू अपनी अधूरी छोड़कर उधर भागा। वहाँ जाकर उसने देखा कि ड्योढ़ीके बाहर इधर-उधर दुबके पिंजरा लानेवालोंको नाहरने दबोचकर मार डाला है। फिर एक बार और जोरसे दहाड़ मारकर उसने छलांग भरी और वनकी ओर दौड़ चला।

भैरू भी दौड़कर भीतर आया और स्वामिनीके चरणोंमें जा गिरा- आज मेरी चूकके कारण यह विपत्ति आयी। उन्होंने नीचे बैठकर उसके सिरपर हाथ रखा- भैरू। क्या पुरस्कार दूँ तुझे भाई। आज तेरे कारण नरसिंह भगवानके दर्शन मिले। दु:ख मत कर मेरे वीर। उठ प्रसाद ले। चम्पा। प्रभुके पधारनेका उत्सव मनावो। विपत्ति में मीराबाई का प्रेम अधिकाधिक उज्ज्वल होता गया।

चम्पा और चमेली ने मीराके चरण पकड़कर कहा- हमारी अर्ज है यहाँ तो तमाशे रोज ही होते रहते हैं। बहुत समय हो गया मेड़तेकी याद आने लगी अब हमें यहाँसे मेड़ता चलना चाहिये। शेरने तो मेड़तणीजीका स्पर्श भी नहीं किया। वहाँ तो नृसिंह भगवानके पधारनेका उत्सव मनाया जा रहा है। मेड़तणीजीने उसकी पूजा की, भोग लगाया और आरती करके प्रणाम भी किया। वह तो पाले कुत्तेकी भाँति खड़ा-खड़ा पूँछ हिलाता रहा। वापस लौटकर उसने पिंजरा ले जानेवालोंको मार डाला। यह खबर सुनकर राणाजी को अपने कानोंपर विश्वास नहीं हुआ। अपने आप विचार करने लगे वह शेर तो नरभक्षी था। चार दिन पूर्व ही पकड़ा गया था, वह भी डर गया इस वशीकरणीसे? पशुओंपर भी इसका मंत्र चल गया। अब क्या होगा इस कुलका, इस राज्यका? यह सबका भक्षण कर जायगी। जिस दिनसे यहाँ आयी है, सुख शांति विदा हो गयी। पिताश्री को न जाने क्या कुमति उपजी, जो इस डाकिनीको यहाँ ले आये। यह सबको खा जायेगी। कैसे दिन थे वे। राणा साँगाका नाम सुनते ही बड़े-बड़े शूरवीरोंको पसीना आ जाता था और दूसरे कार्तिकेय जैसे भोजराज, उनके तलवारका स्वाद जिसने चखा, उसकी तो आँख खुली की खुली रह जाती। वे सज्जनोंके साथी और दुश्मनोंके काल थे। अपनोंके

लिये नीलकंठ और रणमें प्रलयंकर। इस मेड़तणी भाभीने एक दिन भी गृहस्थ सुख कैसा होता है, यह उनको जानने ही नहीं दिया। ये तो रात-दिन उस धातुकी मूरतको चिपकी रहीं औरबाबाओंके बीच बैठकर नाचते-गाते हुए कौन जाने किस परलोकको सवाँरती रही। भोजराज तो भोले भण्डारी थे। इसकी हाँ में वे भी हाँ मिलाते रहे। इसी राँड़ने कुछ न कुछ करके उन्हें मार दिया। हे भगवन्, मेरी इस खोटी मेड़तणी भौजाई से मुझे बचाओ। इस नीच राँड़को चित्तौड़से निकालो प्रभु। जिससे बाकी बचे परिवारके इने-गिने लोग शांतिसे जी सकें।

मीराका पत्रद्वारा तुलसीदासजी से सम्पर्क- महाराणाके मनका परिताप परिवारके पारस्परिक सम्बन्धको संतप्त बना रहा था। सौहार्दसे शून्य वातावरणको देखकर मीराके मनकी उदासीनता बढ़ती गई। प्राणाराध्यकी भक्ति तो छूटनेसे रही, भले सारे अन्य सम्बन्ध टूट जायँ। परिवारकी विकट परिस्थितिमें क्या किया जाय, किससे राय ली जाय, कुछ सूझ नहीं रहा था। रामभक्त गोस्वामी तुलसीदासजीकी भक्ति-महिमा और यश-चर्चा सुनकर मीराने उन्हींके पास पत्र लिखा-

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हरण गुँसाई। बारहि बार प्रणाम करऊँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घरके स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई। साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
बालपन में मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई। सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई। मोंको कहा उचित करिबो अब सो लिखियो समुझाई॥

पत्र लिखकर मीराने सुखपाल ब्राह्मणको दिया और कहा- इसे तुलसीदास गुँसाईके पास पहुँचा दो। मैंने पिता सम मानकर उनसे अपनी राय पूछी है, अत: मेरे लिये जो उचित लगे, सो आदेश करे। मीरा को बचपनसे ही भक्तिकी जो लौ लगी है, सो तो अब कैसे भी नहीं छूट पायेगी। यह तो प्राणोंके साथ ही जायेगी। भक्तिके प्राण सत्संग है और घरके लोग इस सत्संगके बैरी हैं। संतोंके साथ मीराका उठना-बैठना, गाना-नाचना और बात करना उन्हें घोर कलंकके समान लगता है। ये नित्य ही मीराको क्लेश देनेके लिये नये-नये उपाय ढूँढ़ते रहते हैं। स्त्रीका धर्म है कि घर नहीं छोड़े, कुलकानि रखे, शील न छोड़े, अनीति न करे, घरवालोंके विचारके अनुसार घरके अतिरिक्त सब कुछ छोड़ दिया है। अब मीराको आप आदेश करें उसके लिये करणीय क्या है। इस समय तुलसी गुँसाई चित्रकूटमें बिराज रहे हैं। मैं आपकी प्रतिक्षा करूँगी। सुखपाल ब्राह्मण द्वारा लाया गया तुलसीदासजीका पत्र पढ़कर मीराका रोम-रोम पुलकित हो उठा और मीराने तुलसीदासजी का पत्र पढ़ा-

जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु भरत महतारी। बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितनि भये मुद मंगलकारी॥
नातो नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं। अंजन कहा आँखि जेहि फूटे बहु तक कहौं कहाँ लों॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो। जासो बढ़ सनेह राम पद ऐसो मतो हमारो॥

वीरमदेव अपने पुत्र जयमलको बोले- मीराका पत्र आया है। जयमलने पूछा- फिर राणाने कोई अनित्य कर दी क्या? वीरमदेव बोले- अनीतिके अतिरिक्त राणाको और आता ही क्या है? साँगाके ऐसे मतिहीन बेटे? अमृतबेलपर विषफल उगे। मूरखताकी क्या हद? मीरा की भक्ति अच्छी नहीं लगती कोई उसको यहाँ ले आओ। भविष्य की कल्पना करके कलेजा काँप उठता है। ये हिन्दुपति तो अफीम भाँगके नशेमें मग्न हैं। तुम जाकर मीराको लाओ।

मुकुन्ददास जयमलका पुत्र चित्तौड़ अपनी पत्नी श्यामकुँवरबाई के साथ गया और राणा विक्रमादित्य से बोला- अपनी बुवा मीराको पीयर पधारनेकी आज्ञा करें हम उनको ले जानेके लिये हाजिर हुए है। विक्रमादित्य बोला- भला इसमें आज्ञा

की क्या बात है? मुकुन्ददास बोले- अभी जो युद्ध हुआ और बहादुरशाहसे सन्धि हुई, यह बात राजा वीरमदेव को पसन्द नहीं आयी। हिन्दूपतिको सन्धि करनेकी आवश्यकता क्या पड़ी? सादड़ीके झाला सामन्त बोले- आपकी बात और अपनत्व देखकर हमारा उत्साह, प्रेम दुगना हो गया। किन्तु आप अभी बालक हैं राजनीतिमें सन्धि का महत्व रणसे तनिक भी कम नहीं है। परिस्थिति विपरीत होनेके कारण हमें सन्धि करनी पड़ी। हमारे राणा अभी बालक हैं, दूसरे खानवाके युद्धमें जो धर-जनकी हानि हुई, उसकी पूर्ति अभी तक नहीं हो पायी। कल समय अनुकूल आयेगा तो स्वयं आक्रमण करके सारी हानिकी पूर्ति कर लेंगे। समय से बढ़कर कोई शासक नहीं है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें बड़े-से-बड़े बुद्धिमान और महावीर परवश हो जाते हैं और अनुकूल समय कायरको वीर तथा मूर्खको पंडितकी उपाधि दिलवा देता हैं। हमें समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। मुकुन्ददास बोले- मेरी समझमें तो शौर्य और बुद्धि सहायक हों तो कर्त्तव्यके अग्नि-पथपर चलकर मनुष्य नियतिका मुँह फेर देता है। जिस दिन से मेड़ताके सम्बन्धी पधारे थे, उसी दिन महाराणाका स्नेह जैसे अपनी भाभीपर उमड़ पड़ा। दूसरे ही दिन मीराके महलमें ठाकुरजीके दर्शन किये और प्रणाम किया और अपनी भाभीको अभिवादन करके बोले- मुझे माफ करना भाभी। लोगोंके कहनेमें आकर मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। मीरा बोली- ऐसा क्यों कहते हैं लालाजी। मेरे मन में तो आप पर तनिक भी रोष नहीं है। कौन किसको सुख-दुःख दे सकता है। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार दुःख सबको भोगना पड़ता है। ये सब तो मेरे प्रारब्धका फल है। आप तनिक भी दुःखी न हो। हम सभी एक ही प्रभुकी संतान है और उसे हमारा सबकुछ पता है। राणा ठाकुरजीके लिये कुछ-न-कुछ उपहार भेजने लगे। मानो अपनी पिछली भूलोंका प्रायश्चित कर रहे हो। मीरा बोली- भगवानने लालाजीको सुमति दी भले ही देरसे दी हो बहुत बड़ी बात है। ये उमरावोंको और प्रजाको प्रसन्न रखें। ध्यानपूर्वक राज-काज चलायें। सरल हृदय मीराके ही विचार थे पर उनकी दासियोंको तनिक भी विश्वास नहीं था। गंजेकी गंज जा सकती है, परंतु मनुष्यका स्वभाव नही बदल सकता।

राणाका मीराके पास काले नाग भेजना- मीराके पास एक दासीने आकर बाँस की बनी हुई छबड़ी रखी और बोली- राणाने शालीग्रामजी और फूलोंकी माला भिजवायी है। मीराने पूछा- यह शालीग्राम कौन लाया। दासीने कहा- ये तो मुझे नहीं मालूम मैं तो सरकारके हुकुम से यहाँ हाजिर हुई हूँ। श्यामकुँवर बाई वहींपर बैठी थी। मीराने कहा- ये खोलो। तब तक मैं अपने गिरिधर गोपालजी की पूजा कर लेती हूँ। श्यामकुँवर बाईने जैसेही डलियाँ खोलनेके लिये हाथ बढ़ाया। उस दासीने कहाँ बहुत मजबूतीसे बँधी हुई हैं आप रहने दीजिये हाथ छिल जायेगा मैं ही खोल लेती हूँ। दासीने डलियाँ का ढक्कन उठाया तो बड़े-बड़े दो काले साँप फण उठाकर खड़े हो गये। दासियाँ और श्यामकुंवर बाईके मुखसे चीख निकल पड़ी और वो बेहोश होकर लुढ़क गई। मीरातो मुस्कुरा रही थी मानो बालक का खेल हो। पलक झपकते ही एक साँप शालिग्राम के रूप में गलेमें लटककर रतनहारके रूपमें बदल गया और एक शालीग्रामका वेष धारण कर मीराकी गोदमें चढ़ गया। शालीग्रामजीको उठाया और सिरसे लगाकर सिंहासन पधराया और बोली- हे मेरे प्रभु, कितनी करुणा है आपकी इस दासीपर। दासी बोली- मैं क्या जानती थी सिरपर अपनी स्वामिनीकी मौत ले जा रही हूँ। यदि पहले से ही इसके बारे में जानती तो भगवान इसी समय मुझे अंधी कर दे या मेरे प्राण हर लें। श्यामकुँवर बाई बोली मैं जाकर राणाकाका से पूछती हूँ। ये क्या बदतमीजी है। आज आँखोंसे देख ली मैंने करतूत। मीरा बोली- नहीं पुत्री कुछ मत पूछना। हमारे पास प्रमाण ही क्या है कि उन्होंने ही साँप भेजे हैं। हमारे यहा तो अपने शालीग्राम प्रभु पधारे है उत्सव मनाओ। जोशीजी को बुलाकर प्रतिष्ठाका मुहूर्त बनाओ। दासी बोली- आप तो अपने पीहर मेड़ता पधार रही है। कौन

जाने वापस पधारना कब होगा। इस गरीबको भी कुछ सेवा प्रदान करे। बिल्लीके भागसे छींका टूटा भी तो कुत्तेसे सामना हो गया। न जाने किस जन्मका पाप उदय हुआ जो ऐसे कार्यमें निमित्त बनी। यदि आपको कुछ हो जाता तो मुझे नरकमें भी ठिकाना नहीं मिलता। भगवान का नाम लो यह कोई कठिन काम नहीं है। आदत नहीं होनेसे आरम्भ में कठिन लगेगा। आदत बन जानेपर तो लोग घोड़े ऊँटपर नींद ले लेते हैं। उदा आई और पूछी- आज यह कैसा उत्सव हो रहा है। मीरा बोली- आज शालीग्राम प्रभु पधारे है। उदा बोली- मैंने तो भगवानको देखा नहीं है। मैं तो केवल यह जानती हूँ कि आपको भगवानसे जान-पहचान है। मैं खोटी-खोड़िली जैसी भी हूँ, आपकी हूँ। उदाबाई को जब मालूम पड़ा तो क्रोध में भरकर बोली मैं तो समझी थी कि राणाको अक्कल आ गयी है पर लगता है कुत्ते की पूँछ बारह वर्ष भी नली में रख लों तो सीधी नहीं होती। मैं जाकर पूछती हूँ कि यह क्या किया आपने, क्या मेड़तियोंको अपना शत्रु बनाकर ही मानेंगे। मीरा बोली- नहीं, बाईजी। कुछ मत पूछो। सोते-उठते-बैठते लड़ाई छिड़ जायेगी। मेड़िते भी यही है। मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा पर श्यामकुँवर बाई का पीयर खो जायेगा। मैं तो वैसे भी परसो मेड़ता जा रही हूँ अपनोंपर क्या रोष करना। उदा बोली- आप तो समुन्दर हो भाभी और विह्वल स्वरमें लिपट गई।

राणा ने तब मालिन के साथ फूल और शालिग्राम के नाम से पिटारे में दो काले नाग भेजे। भगवान का नाम लेकर मीराबाई ने उसे खोला। उसमें एक तो शालिग्राम मिले और एक नाग फण उठाकर बाहर आया और मीराबाई के शरीर पर चढ़, उनके गले में लिपट कर, फण उठाकर सिरपर डोलने लगा; फिर हार के जैसा कंठ के आस-पास लपेटा लेकर देखते-देखते ही रत्न हार बन गया।

आया जब काला नाग बोली धन्य मेरे भाग्य, प्रभु आये आज सांप के लिबास में।
मीरा ताँई राणाजी ने अद्भुत शब्द सुनाया, ये ले मीरा खोल पिटारी तेरा ठाकुर मिलने को आया।
मीरा ने जब खोली पिटारी नाग फूंकार चलाया, मीरा बोले रे सांवलिया ये क्या रूप बनाया।
आया जब काला नाग बोली धन्य मेरे भाग्य, प्रभु आये आज सांप के बिलास में।
आवो आवो बलिहारी काले कृष्ण मुरारी, बड़ी करुणा है करुणा निधान की।
धन्यवादी हूँ मैं आपके एहसान की, जर्रे जर्रे में है झांकी भगवान की।
किसी सूझ वाली आंखों ने पहचान ली॥

चित्तौड़का परित्याग- संवत १५६१ वैशाख मास (अर्थात् सन १५३४) में सदाके लिये चित्तौड़ छोड़कर मीरा मेड़तेकी ओर चल पड़ी। एक दिन भोजराजके दुपट्टेसे गाँठ जोड़कर इसी वैशाख मासमें गाजे-बाजेके साथ वे इस महलकी देहलीपर पालकीसे उतरी थी। आज सबसे मिलकर उसी प्रकार गाजे-बाजेके साथ इस देहलीसे विदाई ले रही हैं। ये वे महल चौबारे थे, जहाँ उन्होंने कई उत्सव किये थे, जहाँ उनके गिरिधरलालने अनेक चमत्कार दिखाये थे, जहाँ उनकी प्रिय दासी मिथुलाने प्राण त्यागे थे, जहाँ उनके प्रिय सहचर कलियुगी भीष्मने देह छोड़ी थी, जहाँ विक्रमादित्यने उनपर कराल असि-धारके घातक वार किये थे और जहाँ थे कितने ही विरोधी और कितने ही सहायक। एक बार भरपूर नजरसे सबको देखा, उस कक्षको देखा जिसमें भोजराज विराजते थे और जहाँ उनका पलंग लगता था, वहाँ उस कक्षमें जाकर वे खड़ी हुई। पचरंगी लहरियेका साफा, गलेमें जड़ाऊ कंठा-पदक, सिरपर सिरपेंच, कमरके कमरबंदमें लगी कटार-तलवार बाँधे, हँसते-मुस्कराते, भोजराज मानो मूर्तिमान कामदेव सम्मुख आ खड़े हुए। मीराकी आँखें भर आयीं- सीख बख्खाओ, महाराजकुमार। विदा, विदा, मेरे सखा। मेरे सुदृढ़

कवच। मुझसें जो भूलें, जो अविनय, जो अपराध हुए हों, उनके लिये क्षमा प्रार्थना करती हूँ। कहते हुए उन्होंने धरतीपर मस्तक रखा। मैं अभागिनी आपको कोई सुख नहीं पहुँचा सकी, कोई सेवा नहीं कर सकी। अपने अशेष गुणों और धीर गम्भीर स्वभावसे आपने मेरी जो सहायता और रक्षा की, जो भीष्म प्रतिज्ञा आपने की और अंततक उसे निभाया, उसके बदले मैं अकिंचना आपको क्या नजर करूँ? किंतु मेरे मीत। मेरे स्वामी समर्थ हैं। वे देंगे आपको अपनी इस दासीकी सहायताका प्रतिफल। आपका मंगल हो मेरे सखा। आपका मंगल हो। उनकी आँखें बह चलीं। हाथ जोड़कर उन्होंने पुन: सिर झुकाया। चम्पाने सूचित किया उनकी पालकी आ गयी है चलने की तैयारी करें।

आँसू पोंछकर मीरा उस कक्षसे बाहर आयी। आवश्यक सामान गाड़ियों, ऊँटोंपर लदकर जा चुका था। अनावश्यक सामान जहाँ-का-तहाँ पड़ा था। अपने सेवक-सेविकाओंमें, जो यहाँ रह रहे थे, उन्हें आवश्यक भूमि, द्रव्य और आवास देकर जीविकाका प्रबन्ध कर दिया था। जो साथ चल रहे थे, उनका सामान बँधकर चला गया था। रहनेके नामपर तो उनका पावन-स्नेहमय साथ छोड़कर कोई भी चित्तौड़में रहना नहीं चाहता था, किन्तु कुछ ऐसे भी लोग थे, जिनकी जड़ें चित्तौड़में जम गयीं थीं। कुछ सेवक-सेविकाएँ यहींसे उन्हें मिली थीं, उनका सबका प्रबन्ध उन्होंने कर दिया। यद्यपि अपने मुखसे किसीने यह नहीं कहा कि मेड़तणीजीसा अब चित्तौड़से अंतिम विदा ले रहीं हैं, किन्तु फिर भी भीतर-बाहर अधिकांश लोगोंको यही लग रहा था कि अब इनकी सवारी चित्तौड़की ओर पुन: मुँह नहीं फेरेगी। पहले तो कभी भी इतना सामान साथ नहीं गया था, पहले तो सेवकोंकी जीविकाका प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी थी, यही सब सोच-सोच करके प्रियजनोंके प्राण व्याकुल थे। अपनी सभी सासों और गुरुजनोंकी चरणवंदना की उन्होंने। धनाबाई, जो महाराणा साँगाकी रानी, जोधपुरके जोधाजीकी पोती और महाराणा रतनसिंहजीकी जननी थीं, वे धनाबाई मीराको हृदयसे लगाकर बिलख पड़ीं- बेटा, मुझ दुखियारीको तुम भी छोड़ चली? मेरा तो तुमसे पीहर-ससुराल दोनों ओरसे सम्बन्ध है। सास समझो या बुआ, इस पति-पुत्र विहिना वृद्धाको भूल मत जाना। अब मैं किसके आसरे दिन काटूँगी। कभ दो घड़ी बैठकर तुम्हारी बात सुनती तो हृदयकी जलन ठंडी होती थी। अब किसका मुख देखकर जीऊँगी? कौन मुझ दु:खिनीको धीरज देगा?

मीराने धनाबाईके आँसू पोंछकर पुन: पैरोंमें सिर रखा- हम सबके स्वामी भगवान हैं। हुकम। उनका स्मरण सब दु:खोंकी औषधि है। संसारमें सुख ढूँढ़नेसे निराशा और दु:ख ही पल्ले पड़ते हैं।

राजमाता हाड़ीजी (कर्मावती) के चरणोंमें प्रणाम करके मीराने विनय की- मुझसे जान-अनजानमें जो अपराध-अविनय हुए हों, अपनी बालिका जानकर क्षमा करावें और सीख (विदा) बख्शावें। हाड़ी रानी हृदयसे लगाकर बोली- पहले तो मैं समझती थी कि तुम जान-बूझकर हमारी सबकी अवज्ञा-उपेक्षा कर रही हो, परन्तु बादमें समझ गयी कि अपनी भक्तिके आवेशमें तुम्हें किसीका ध्यान ही नहीं रहता। अब मैं तुमसे एक इच्छा माँगती हूँ। मीराने हाड़ीजीकी ओर देखते हुए कहा- आपके ये हाथ किसीके सामने फैलानेके लिये नहीं बने हैं। ये हाथ तो अपने आश्रितोंपर छत्रछाया करने और मुझे आशीर्वाद देनेके लिये बने हैं। आप समस्त मेवाड़की स्वामिनी है, हिन्दुआँ सूर्यकी जननीके हाथ हैं। इससे राजमाताके पदका अपमान होता है। आप आज्ञा कीजिये। मेरे मनमें तो कभी किसीके लिये तो रोष आया ही नहीं। मनुष्य अपने कर्मोंका फल स्वयम् भोगता है। दूसरा कोई भी उसे दु:ख या सुख नहीं दे सकता। फिर किसपर क्रोध करूँ और क्रोध करने जैसा हुआ ही क्या। आप निश्चिन्त रहें, भगवान कभी किसीका बुरा नहीं करते। उनके विधानसे सबका मंगल भी होता है। अपना और राणाजी का ख्याल रखना। सभी राजमाताओं का ख्याल करना। अपने कर्त्तव्यसे बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म और कर्त्तव्य मत छोड़ना। मुझसे कुछ अपराध हो गया हो तो मूर्ख समझकर माफ कर देना। धनाबाईने

श्यामकुँवरका हाथ थामकर मीराको सौंप दिया। यह तुम्हारी बेटी भी है और बहू भी। इस बिना माँ-बापकी बालिकाकी पीहर और ससुराल तुम्हीं हो। मीरा बोली- आप तनिक भी चिंता न करें यह बड़ी भाग्यशालिनी है। यह तो रानी बनेगी। सबको आशीर्वाद दिया। सबको चाँदी अथवा स्वर्णके आभूषण, यथायोग्य कुछ-न-कुछ देकर पालकीमें बैठ गयी। उसी समय उदाबाई उनके चरणोंमे लिपट गई। मीरा बोली- ये क्या? आप ठाकुरजीके चरण पकड़े, उनपर विश्वास करें, मनुष्यकी कितनी शक्ति है? धीरज धारण करें। उदा बोली- मैं ठाकुरजीको नहीं जानती, मेरे ठाकुरजी तो आप हैं मुझे मत छोड़ो मैं आपके साथ चलूँगी। मीरा बोली- ऐसे कोई धैर्य थोड़े ही छोड़ता है। थाप मारने से पानी अलग नहीं होता। माताओंकी सेवा करना आपका कर्त्तव्य है राणा अभी बालक है। उन्हें आपके सहारेकी आवश्यकता है। उदा बोली- भाभी, मुझे तो आपका ही सहारा है। मीराकी पालकी भोजराजके बनाये हुए मन्दिर की ओर चली। प्रभु के दर्शन कर आँखोंसे आंसू पोंछकर उस चौककी चरणरज सिर में लगायी। अपने नन्हें देवर उदयसिंहको दुलार किया। ब्राह्मणोंको दान, सेवकोंको पुरस्कार और गरीबोंको अन्न-वस्त्र देकर वे पालकीमें सवार हुई। सन १५६१ में चित्तौड़को छोड़ चली गई, मानो चित्तौड़का जीवंत सौभाग्य विदा हो गया। स्त्रियाँ विदाई गाती हुई कुछ दूर तक साथ चलीं। मीराने पालकी रुकवाकर सबको लौटनेको कहा। महलोंकी सीमा पार होते ही मेड़तेके नगारे आगेकी ओर एवं मेवाड़के नगारे पीछेकी ओर धमधमा उठे। महाराणा और उमराव नगरके बाहर तक पहुँचाने आये। महाराणा पालकीके समीप पहुँचे और हाथ जोड़कर झुककर बोले- भाभीश्री। मीरा बोली- सदा के लिये विदा दीजिये अपनी इस खोटी भौजाईको। अब यह आपको कष्ट देने पुन: हाजिर नहीं होगी। मुझसे जान-अनजानमें जो अपराध बन गये हो, उनको क्षमा करें। राणा घबराकर बोले- आप क्या फरमाती है भाभीश्री? कुल-लाज की खातिर कभी कबार अर्ज कर दिया तो उसके लिये क्षमा कीजिये। मीरा बोली- भगवान आपको सुमति बख्शें। मेरे मन में तो आपके कार्य के लिये कोई बात, या अपराध जैसा लगा ही नहीं फिर क्षमा किस बात की। बहुत लोग मीराके साथ-साथ चल पड़े। संतों और यात्रियोंकी टोली साथ चली। मेड़तेका श्यामकुंज पुन: आबाद हुआ। तीस वर्षकी आयुमें मीराने चित्तौड़का परित्याग कर दिया और पुन: मेड़तामें वास किया। कथा-वार्ता, उत्सव और सत्संगके दरवाजे खुल गये।

मीराबाई ने भी इस भूमि में अन्न जल न लेने का निश्चय करके चित्तौड़ छोड़ा। चित्तौड़ वासियों को इससे बड़ा ही दु:ख हुआ, परन्तु विवश थे। बहुत भारी संख्या में नगर के नर-नारी आबाल वृद्धादि आँसू बहाते हुए उसे पहुँचाने सीमा तक चले गये। मीराने सदा के लिये चित्तौड़ छोड़ दिया। कालान्तरमें राजनैतिक परिस्थितियाँ करवट बदलने लगी।

मीराके चित्तौड़-त्यागके बाद बहादुरशाह गुजरातीने चित्तौड़पर आक्रमण कर दिया। राजपूत वीरोंने रावत बाघसिंहके नेतृत्वमें घमासान युद्ध किया, परन्तु सफलता नहीं मिल पायी। यह युद्ध ८ मार्च १५६४ को पूरा हुआथा। इस युद्धमें बत्तीस हजार राजपूत वीरगतिको प्राप्त हुए और तेरह हजार स्त्रियाँ राजमाता हाड़ीरानीके साथ जौहरकी धधकती ज्वालामें कूदकर स्वाहा हो गयीं। चित्तौड़ दुर्ग राजपूतोंके हाथसे निकल गया। इसके तुरन्त बाद विजय-गर्वसे फूले हुए बहादुरशाह गुजरातीके हौसलेको पस्त करनेके लिये दिल्लीके बादशाह हुमायूँने उसपर चढ़ाई कर दी। अपनी जान बचानेके लिये बहादुरशाह रातको भाग निकला। बहादुरशाहकी पराजयका लाभ उठाया राजपूतोंने। फिरसे सेना इकट्ठी करके राजपूत वीरोंने मुसलमानी सेनापर हमला बोल दिया। विजयी राजपूतोंके अधिकारमें चित्तौड़ दुर्ग पुन: आ गया।

मीराबाई का नाम सुन-सुनकर गाँव गाँव से अनेकों नर-नारी जहाँ जहाँ वह जाती उसका दर्शन करने जाया करते थे। यही नहीं बड़े-बड़े जागीरदार-नरेश तथा सन्त-महात्मा भी उसके दर्शन कर अपने को धन्य समझते। प्रवास में भी मीराबाई की साधु-सेवा-सत्संग एवं भजन कीर्तन होते जाते थे।

एक बार किसी साधु के मन में मीराबाई के प्रति बुरा भाव आया। पूर्ण यौवनवती, अलौकिक रूप-लावण्य व गुणवती फिर साधु-सन्तोंकी सेवा करनेवाली, मीराबाई से वह एकान्त में मिलना चाहता था। अपनी स्वार्थ पूर्तिके लिये वह योग्य अवसर की ताक में रहता था। एक दिन अनुकूल समय देखकर अकेली मीराबाई जहाँ बैठी थी, वहाँ जाकर उसने कहा कि श्रीकृष्ण ने मुझे स्वप्न में तुम्हारे लिये सन्देश कहलाया है कि, हे मेरी प्रेयसी, तुम्हारे भक्ति-प्रेम से मैं बहुत प्रसन्न हो गया हूँ और मेरी ओर से मेरे इस अंतरंग भक्त को तुम्हारे पास भेजता हूँ। इनकी शरीर सेवा द्वारा मनोकामना पूर्ण करने से अवश्य ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मीराबाई ने शान्ति से कहा- अच्छी बात है महाराज। प्रभु की दासी पर बड़ी कृपा है। आप स्नान, भोजनादि से निवृत्त हो जाइये बाद में जैसा आप कहेंगे वैसा किया जायगा।

स्नान, भोजनादि के पश्चात् मीराबाई ने दासी को खुले चौक में पलंग बिछाने को कहा। तब उस शय्या पर बैठ मीराबाई ने उस साधु से कहा- पधारिये महाराज और अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये। उस साधु ने निकट जाकर मीराबाई के कान में कहा- एकान्त में चलना चाहिये। यह सुनकर सहज सात्विक आवेश से पर शान्त भाव से मीराबाई ने कहा- महात्माजी ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ कोई भी न हो अथवा पूर्णतया एकान्त हो। सूर्यादि-देवतागण-धर्म औरसर्व व्यापी परमात्मा सदा सर्वदा जीवों के प्रत्येक कार्य के साक्षी हैं। जब भगवान ही की आज्ञा है तो छिपाव की क्या आवश्यकता है। यह सुनकर उपस्थित साधु सन्त एवं ग्रामवासी लोग वास्तविक बात को जान गये और उस साधु को दण्ड देने लगे तब उसने क्षमा माँगी और मीराबाई के पवित्र सत्संग से उसका जीवन पलट गया और वह अपनी दुर्वृत्तियों को छोड़कर सत्य अर्थ में साधु बन गया।

मीराँ के सत्संग में सम्मिलित होनेवाले साधु-सन्तादि, नर नारी (भक्त) श्रद्धापूर्वक मीरा के भजनों को उसकी दासी द्वारा, जो अपनी स्वामिनी के पदों को समय-समय पर लिखकर एकत्रित किया करती थी, प्राप्त कर अपने साथ ले जाते थे तथा सुन-सुनकर भी याद कर गाने लग जाते। इस प्रकार मीरा के भजनों का देश-विदेश में प्रचार होने लगा।

एक बार गुप्तचर द्वारा राणा ने सुना कि जहाँ मीराबाई जाती है वहीं जंगल में भी मंगल हो जाता है। मीराबाई के नाम में वह जादू हैं कि लोग खिंचे हुए उसके दर्शन को दौड़े आते हैं और उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। नित्य सत्संग, भगवच्चर्चा, नाम संकीर्तन आदि होते हैं और इस प्रकार गाँव-गाँव, नगर-नगर, वन-वन में व मन्दिर-मन्दिर में जहाँ-जहाँ मीराबाई जाती लोग उसके दर्शन कर धन्य हो जाते हैं और उसके सत्संग से ही अपना जीवन सफल समझते हैं। परन्तु, विवेक हीन उस अविचारी राणा के चित्त में यह सुनकर विक्षोभ भी हुआ। मीराबाई, जिसका पद किसी समय महाराणी का था, उसका इस प्रकार लोगों के सम्मुख नाचना, गाना, बैठना, बोलना उसकी दृष्टि में पाप था तथा उसके इस प्रकार के निर्लज्ज व्यवहार से राजकुल में कलंक लगना अधिकाधिक प्रमाण में बढ़ता जा रहा था। एक प्रकार से मीराबाई धीरे-धीरे चित्तौड़ के जगत् प्रसिद्ध सूर्यकुल की अपकीर्ति का साधन बनती जा रही थी। यह तभी मिटेगा जब मीराबाई पृथ्वी पर से ही उठ जायगी।

यह निश्चय कर राणा ने दूत के साथ मीराबाई को पत्र लिख भेजा कि यदि हमारे कुल में तुम कलंक रूप बनना नहीं चाहती और मेरे ज्येष्ठ भ्राता भोजराज और पूज्य पिताजी की परलोक गत आत्मा को वास्तव में शान्ति देना चाहती हो तो नदी में डूबकर मर जाओ। पत्र पढ़कर मीराबाईने किसी को कुछ कहा नहीं और प्रवास में किसी अरण्य में जब इन यात्रियों का डेरा नदी के तट पर लगा था तब एक रात्रि में सबको सोते हुए छोड़कर वह एक निकट की ऊँची चट्टान पर चढ़ी। नीचे अथाह जल द्रुत वेग से बह रहा था। उसने चहुँ ओर झाँका और तब श्यामसुन्दर, श्रीकृष्ण, हे गिरिधरगोपाल, यह नाम स्मरण करती हुई वह भयंकर प्रवाह में कूद पड़ी।

जब यह मूर्च्छावस्था से जागृत हुई उसे याद आया कि श्यामसुन्दर जल में खड़े थे और उन्होंने उसे अपने हाथों में लेकर

किनारे उतार दिया था। वृन्दावन जाने का भी संकेत हुआ था। अपने प्रियतम के मधुर स्पर्श से वंचित होने से व्याकुल होकर उन्हें कुछ प्रार्थना करने लगी थी, भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और वह विरह ताप से मूर्छित हो गिर पड़ी थी।

जागृत होते ही मीरा ने देखा उसकी दासियाँ तथा कुछ साधु-सन्त उसे घेरे हुए बैठे हैं। मैं कहाँ हूँ? उसने पूछा। तब दासी ने कहा कि रात्रि को सहसा मेरी आँखें खुल गई और देखा तो आपकी शय्या खाली है। मैं चारों ओर ढूँढ़ने लगी त्यों ही दूर चट्टान पर आपको खड़े देखा तब आपको पुकारती ही रह गई और आप नदी में कूद पड़ीं। यह तो अच्छा हुआ कि भगवान की कृपा से कहीं चोट नहीं आई और इसी किनारे पर लग गईं। आपको तब डेरे पर ले आये और तभी से बराबर आपको जागृत करने की चेष्टा हम सब कर रहे हैं। यह गिरिधरगोपाल की ही कृपा है जो आपकी मूर्च्छा अब दूर हो गई है।

इतनी विपत्तिके बाद भी महाराणा विक्रमादित्यको न कुछ अक्ल आयी और न उनका स्वभाव बदला। सामंतोंके साथ दुर्व्यवहार पूर्ववत् बना रहा। इन्हीं दिनों पासवान पुत्र वनवीरकी राज्य-लिप्सा बढ़ चली और उसने एक रात महाराणा विक्रमादित्यको तलवारसे मार डाला। राज्यका अकंटक स्वामी बननेकी लोलुपतामें वनवीर तो महाराणाके छोटे भाई उदयसिंहको भी मार डालना चाहता था, परन्तु पन्ना धायने अपने पुत्रकी बलि देकर उदयसिंहके प्राणोंकी रक्षा की।

मेवाड़ छोड़कर मीराबाई की इच्छा डाकोरजी जाने की थी, परन्तु राव वीरमदेव तथा जयमल का मेड़ते चलने के लिये अत्यन्त आग्रह होने से वह अपनी दासियों के साथ मेड़ते गई। ऊदाबाई ने अपनी भाभी के साथ जाने के लिये बहुत आग्रह किया, परन्तु मीराबाई ने उसे फिर बुला लेने की आशा देकर वहीं रहने के लिये कहा। मेंड़ते में राव वीरमदेव और उनके युवराज जयमल ने मीराबाई को बड़े ही प्रेम से रक्खा। जयमल को अपनी ज्येष्ठ भगिनी मीराबाई पर बहुत श्रद्धा थी। मीराबाई के सत्संग से बालपन से जयमल में भक्ति के संस्कार बोये गये थे, जिन्होंने भविष्य में जयमल को महान् भक्त भी बना दिया।

जिस तरह चित्तौड़पर घोर संकट छा रहा था, उसी तरह मेड़ता पर भी भीषण विपत्ति टूट पड़ी। मीराको मेड़ता आये हुए अभी दो वर्ष ही हुए थे कि जोधपुरके राव मालदेवने सं. १५९३ में मेड़तापर चढ़ाई कर दी। परिस्थितिकी प्रतिकूलताको देखकर वीरमदेवजीको जोधपुरके सामन्तोंने समझाया- परस्परमें व्यर्थका संघर्ष उचित नहीं। आप एक बार मालदेवजीको मेड़ता सौंप दीजिये। जब उनका आवेश शांत हो जायगा, तब मेड़ता वापस दिलवा देंगे।

सरल हृदय वीरमदेवजी उन सामन्तोंपर विश्वास करके मेड़तासे अजमेर चले आये। अजमेरमें भी चैनसे नहीं रह पाये। अभी भाग्यकी रेखाएँ वक्र थीं। उनको जगह-जगह भटकना पड़ा। वे नराणा आ गये। मीराबाई वीरमदेवजीके साथ थी। फिर वि. सं. १५९५ में वे नराणासे पुष्कर चली आयीं।

मेड़तेमें मीराबाई का सत्संग चलता रहा, परन्तु मेड़ते में भी अधिक समय तक शान्ति से रहना उसके भाग्य में नहीं लिखा था क्योंकि जोधपुर के राव मालदेव और मेड़ते के राव वीरमदेव के परस्पर के सम्बन्ध बिगड़ जाने से तनातनी हुई जिसका परिणाम युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा मीराबाई ने मेड़ता भी छोड़ दिया। उसके जाने बाद मेड़ता राव वीरमदेव के हाथ से चला गया तब वे लोग भी अजमेर की ओर चले गये और मेड़ते पर राव मालदेव का अधिकार हो गया।

मीराका वृन्दावन धाम में वास- पुष्करमें निवास करते समय मीराके चिन्तनमें मोड़ आया। प्रेरणा देनेवाले जीवनाराध्य वे गिरिधर गोपाल ही थे। मीरा सोचने लगी कि दर-दर ठोकर खानेकी अपेक्षा यही उचित है कि अपने प्राण प्रियतमके देश वृन्दावन धाममें वास किया जाय। उन्हें मन-ही-मन बड़ी ग्लानि हो रही थी कि ऐसा निश्चय वे अब तक क्यों नहीं कर पायीं। पुष्करसे वृन्दावनके लिये प्रस्थान करनेका निश्चय हो गया। कुछ सैनिकों और अपने लवाजमें सहित तीर्थयात्रियोंके साथ वे वृन्दावनके लिये चल पड़ीं। उन्होंने कहा- अपने प्रियतमके देश, अपने देश पहुँचनेकी सोयी हुई लालसा हृदयका

बाँध तोड़कर मानो गगन छूने लगी। ज्यों-ज्यों वृन्दावन निकट आता जाता था, हृदयका आवेग अदम्य होता जाता। कठिन प्रयाससे वे अपनेको थामे रहती। उनके बड़े-बड़े नेत्रोंकी पुतलियाँ वन-विजनमें अपने प्राणाधारकी खोजमें विकल हो चंचलतापूर्वक इधर-उधर नेत्र सीमाकी मानो परिक्रमा-सी करने लगतीं। वे बार-बार पालकी रथ रुकवाकर बिना पदत्राण धारण किये पैदल चलने लगीं। बड़ी कठिनाईसे चम्पा, चमेली, केसर आदि उन्हें समझा करके और मनुहार करके यह भय दिखा पातीं कि अभ्यास न होनेसे वे धीरे चल पाती हैं और इसके फलस्वरूप सब धीरे चलनेको बाध्य होते हैं। मंजिल पर पहुँचनेमें विलम्ब होनेसे सभी यात्रियोंको असुविधा होती है। इसके बाद भी वे कभी-कभी पैदल चलनेसे विरत नहीं होतीं। उनके पद छिल गये थे, उनमें छाले उभरकर फूट गये, किन्तु वे उन सब कष्टोंसे बेखबर थीं। दासियों, सेवकोंकी आँखें भर-भरआतीं। वे उनके चरणोंपर माथा रखकर आँसू ढ़हाते हुएसवारी स्वीकार करनेकी प्रार्थना करते। मीरा हँसकर उन सभीको अपनी सौगन्ध दे रथपर, गाड़ी घोड़े अथवा ऊँटपर चढ़ा देती। उनके हृदयका हाल कौन कहै? जिनकी प्राणाधिका स्वामिनी, जिन्होंने कभी सरे राह पाँच पद भी नहीं रखे, वे ऊबड़-खाबड़, काँटों-कंकणोंसे भरी भूमिपर नंगे पैरों चल रही हैं। छालोंके फट जानेसे जहाँ वे पाँव धरती हैं, रक्तकी छाप उभर जाती है। वे भजन गाती, करताल बजाती चलती है। रात होनेपर दासियाँ उनके घायल तलवोंपर औषध लेप करतीं, चरण चाँपकर थकान मिटानेकी चेष्टाा करतीं, किन्तु मीराके मुखमें एक ही बात थी कि वृन्दावन अब कितनी दूर रह गया। किसीसे पूछकर तो आ। जो यात्री पहले कभी वृन्दावन गये थे, उन्हें बुलवाकर दूरी पूछतीं, वहाँके घाट, बाट, वन, कुंज और मंदिरोंका यमुनाका हाल पूछतीं।

कहीं एक साथ नदी पर्वत वन देखतीं तो उन्हें वृन्दावनकी स्फुरणा हो आती। वे गाने-नाचने और प्रणिपात करने लग जातीं। दासियाँ पद-पदपर उनकी सँभाल करतीं। बहुत कठिनाईसे समझा पातीं उन्हें कि यह वृन्दावन नहीं है, वृन्दावन तो अभी दूर है। व्रजकी सीमामें पहुँचकर यात्रा रोक देनी पड़ी। मीरा धरापर लोट गयीं। अपना घर, अपना देश देखते ही संयम के बाँध टूट गये। विवेक प्रेम-प्रताड़ित होकर कहीं जा दुबका। आँखोंसे बहती गंगा-यमुना उस पावन धराका अभिषेक करने लगीं। देह धूल-धूसरित हो उठी। वह निरन्तर अस्पष्ट कंठसे अपने प्राणप्रियतमको पुकारतीं, निहोरा करतीं। बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे प्रकृतिस्थ नहीं हुई। किसी प्रकार भी उन्हें दो कौर अन्न और दो घूँट पानी नहीं पिलाया जा सका। अपनी प्रेम दीवानी स्वामिनीको घेरकर दासियाँ सारी रात कीर्तन करती रहीं।

वृंदावन धाम, यह तो है प्रेम-परवश प्राणोंका आधार, उनके हृदय सर्वस्वकी लीलास्थली, रसिकोंका निवास-स्थल। दूर-दूरसे प्यासे प्राण इस लीलाधामको ताकते हुए चले आते हैं। बड़े-बड़े राजाओंके मुकुट यहाँ धूलमें लोटते नजर आते हैं। महान दिग्विजयी विद्वान रजस्नान करके वृक्षोंसे लिपटकर आँसू बहाते हुए दिखते हैं। कहीं नेत्र मूँदे-मूँदे आँसू बहाते, प्रकम्पित पुलकित देह, किसी घाटकी बुर्जीपर या कहीं विजन कुटियामें अथवा किसी झाड़ीकी या वृक्षकी छायामें बैठे हुए भक्त प्रेमी जन लीला-दर्शन-सुखमें निमग्न हैं।

सेवाकुंजके पीछेकी गलीमें एक घर लेकर दो सेवक और तीनों दासियों सहित मीरा रहने लगीं। यद्यपि वे आरम्भसे ही नहीं चाहती थीं कि वृन्दावन-यात्रामें कोई साथ आये, पर जिन्होंने अपनी जिन्दगीकी डोर उनके चरणोंमें उलझा दी है, उनका वे क्या करें? उन्हें कैसे छोड़ें?

चम्पाने विवाह किया ही नहीं था। वह मीराकी दासी ही नहीं, अंतरंग सखी भी थी उनके भावोंकी वाहिका, अनुगामिनी, अनुचरी। कभी-कभी जब अंतरंग भावोंकी चर्चा होती तो उसके भावोंकी उत्कृष्टता देखकर मीरा चकित हो उठतीं। उससे उन्हें स्वयं चिन्तनमें सहायता मिलती। कथा, सत्संग, मन्दिरोंके दर्शन और भजन, कीर्तन, नृत्य आदिका उल्लास

और उत्साह ऐसा था मानो कि परमानंद सागरमें डुबकी-पर-डुबकी लग रही हो। मीराकी भजन ख्याति यहाँ तक पहुँच चुकी थी। जिसने भी सुना, वही दौड़ा-दौड़ा आया। आकर कोई प्रणाम करता और कोई आशीर्वाद देता। व्रजके संतोंसे विचार-विनिमय और भाव-चर्चा करके मीरा तीव्रतापूर्वक साधन-सोपानोंपर चढ़ने लगीं। यद्यपि वे स्वयं सिद्धा संत थीं, पर यहाँ इस पथमें भला इति कहाँ है?

अपने भजन-सत्संग, दर्शनादि से अनेक जीवों का उद्धार करती हुई मीराबाई वृन्दावन पहुँची। ब्रजभूमि के दर्शन से उसके हृदय में आनन्द समाता नहीं था। वहां की गौएँ, मधुर यमुना जल, कदम्ब वृक्ष, श्याम तमाल आदि ब्रजरस वैभव की सामग्री को देख-देख कर उसे अपनी पूर्वजन्म की स्मृति जागृत होने लगी। गौएँ बड़े प्रेम से रम्भाती हुई उसके निकट आ आकर उसे सूँघने लगतीं मानो कोई खोई हुई वस्तु फिर से पाई हो। गोप ग्वाल उसके लिये दूध ले आते, गोप वधुएँ मीराबाई केभजन-नृत्य में भाग लेतीं। मीराँ का भजन-सत्संग, उसका कृष्ण प्रेम, विरह भाव में अश्रुमोचन, प्रेमोन्माद आदि बातों को देख-देख कर वृन्दावन के नर-नारी समझने लगे कि यह अवश्य ही कोई पूर्वजन्म की गोपी व राधा का अवतार है। चारों ओर से स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड मीराबाई के दर्शन को आते, उसकी पूजा करते और उसकी जय जयकार बोलते। विरह में डूबी हुई मीरा को शरद पूर्णिमा की मध्य रात्रि में नि:कुञ्ज में भगवान श्यामसुन्दर के और उनकी रास लीला के भी दर्शन हुए, यह नहीं नरसिंह मेहता के समान वह स्वयं भी उसमें सम्मिलित हुई हो ऐसा उसने अनुभव किया। वह कृत्यकृत्य हो गई, उसका जीवन कृतार्थ हो गया।

वृन्दावन में श्रीजीव गोस्वामी से मिलन- एक दिन किसीसे पूज्य श्रीजीव गोस्वामीपादका नाम, उनकी गरिमा, उनकी प्रतिष्ठा, उनकी ख्याति सुनकर उनके दर्शन करनेके लिये मीरा बाईसा पधारीं। सेवक द्वारा उनकी भजन कुटियामें सूचना भेजकर वे प्रतीक्षा करने लगीं। गोस्वामीपद किसी स्त्रीका दर्शन नहीं करते। सेवकने कुटियासे बाहर आकर कहा।

मीरा हँसकर खड़ी हो गयीं- धन्य हैं। गोस्वामीपाद। मेरा शतश: शिरसा प्रणाम निवेदन करके उनसे अर्ज करें कि मुझ अज्ञ दासीसे यह भूल हुई कि मैंने दर्शन देनेके लिये विनती की। मैंने अब तक यही सुना था कि वृंदावनमें पुरुष एक मात्र रसिकशेखर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। अन्य तो जीव मात्र प्रकृति-स्वरूपा नारी है। आज मेरी भूलको सुधार करके उन्होंने बड़ी कृपा की। आज ज्ञात हुआ कि वृंदावनमें दूसरा पुरुष भी अवतीर्ण हुआ है। अंतिम वाक्य कहते-कहते उन्होंने पीठ फेरकर चलनेका उपक्रम किया।

मीरा द्वारा सेवकको कही गयी बात भजन कुटियामें बैठे श्रीजीव गोस्वामीजीने भी सुनी। अविनय क्षमा हो मात:। कहते श्रीजीव गोस्वामीपाद कुटियामेंसे दौड़ते हुए बाहर आये और उनके चरणोंमें दण्डवत करते हुए पड़ गये। आप उठें आचार्य। वे इकतारा एक ओर रखकर हाथ जोड़ते हुए झुकीं- मैंने तो कोई नयी बात नहीं कही प्रभु। यह तो सर्व विदित सत्य है, जैसा संतोंके मुखसे सुना है।

सत्य है, सत्य है कहते हुए श्रीगोस्वामीजी उठे- सत्य और सर्वविदित होनेपर भी व्यवहारमें जब तक नहीं उतरता, जानकारी अधूरी रहती है माँ। और अधूरा ज्ञान अज्ञानसे बढ़कर दु:खदायी होता है। उन्होंने दोनों हाथोंसे कुटियाकी ओर संकेत करते हुए विनम्र स्वरमें कहा- पधार करके कृतार्थ करें दासको।

ऐसी बात न फर्मायें गोस्वामीपाद। आप ब्राह्मण कुल भूषण ही नहीं, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके लाड़ले परिकर हैं। यह क्षत्रिय कुलोत्पन्न देह चरण-रज-स्पर्शकी ही अधिकारी है कहते हुए उन्होंने झुककर श्रीगोस्वामीजीके चरणोंके समीप मस्तक रखा। वे हाँ हाँ कहते रह गये।

अब कृपा करके पधारें। गोस्वामीजीने अनुरोध किया। आगे आप, गुरुजनोंके पीछे चलना ही उचित है मीराने मुस्कराकर कहा। मैं बालक हूँ, पुत्र तो सदा माँके आँचलसे लगा पीछे-पीछे ही चलता है। गोस्वामीजीने विनम्र आग्रह किया। इस समय तक कई संत महानुभाव एकत्र हो गये थे। वे यह विनय-प्रेम-पूर्ण अनुरोध और आग्रह देखकर गद्‌गद हो गये। एक वृद्ध संतके सुझावके अनुसार कुटियाके बाहर चबूतरे पर सब बैठ गये। सबने मीरासे आरंभ करनेका अनुरोध किया।

अब तो हरी नाम लौ लागी। सब जग को यह माखन चोरा नाम धर्यो बैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली कित छोड़ी वह गोपी। मूँड़ मुँड़ाइ डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी।
मात जसोमति माखन कारन बाँधे जाके पाँव। स्यामकिसोर भये नव गौरा चैतन्य जाको नाँव।।
पीतांबर को भाव दिखावै कटि कोपीन कसै। गौर कृष्ण की दासी मीरा रसना कृष्ण बसै।।

पुन: आग्रह करनेपर उन्होंने गाया-

आली म्हाँने लागे वृंदावन नीको। घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविन्दजी को।।
निरमल नीर बहे जमना को भोजन दूध दही को। रतन सिंघासण आप विराज्या मुगट धर्यो तुलसी को।।
कुंजन कुंजन फिरूँ साँवरा सबद सुणत मुरली को। मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको।।

श्रीजीव गोस्वामीपादने मीराके पूछनेपर श्रीचैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्त और प्रेम-भक्तिका वर्णन किया। अन्य संतोंने भी चर्चामें भाग लिया। श्रीजीव गोस्वामी मीराके विचारोंकी विशदतासे, भक्तिकी अन्नन्यता और प्रेमकी प्रगाढ़तासे बहुत प्रभावित हुए। पुन: पधारनेके आग्रहके साथ कुछ दूरतक पहुँचाकर उन्होंने मीराजीको विदाई दी।

वृन्दावन वास की अवधि में एक बार मीराबाई ने सुना कि यहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु के शिष्य श्रीरूप और सनातन गोस्वामीजी के भतीजे श्रीजीव गोस्वामी रहते हैं। वे बड़े ही धुरन्धर पंडित और ज्ञानी हैं। यह सुनकर मीराबाई उनके दर्शन को गई परन्तु उसे दर्शन नहीं हुए क्योंकि वे महात्मा पर्दे के भीतर थे। उनके शिष्य ने बाहर आकर कहा कि आपको गोस्वामीजी के दर्शन नहीं हो सकेंगे क्योंकि स्वामीजी महाराज कभी प्रकृति रूप स्त्री मात्र का मुख नहीं देखते यह सुनकर कुछ मुस्कराकर मीराबाई ने निर्भीकता से उस शिष्य को सुना दिया कि- तुम्हारे गुरु महाराज को कह देना क मैं समझती थी कि वासुदेव: पुमनेक: स्त्रीमयमितरज्जगत् (श्री भागवत) ब्रज में तो वासुदेव, कृष्ण, ही एक मात्र पुरुष और शेष सब गोपियाँ हैं। परन्तु आश्चर्य है कि आज दूसरे भी कोई उनके पट्टीदार पुरुष प्रकट हुए हैं जो इस ब्रज में स्त्री का मुँह नहीं देखना चाहते। ठीक है- गोस्वामीजी पुरुष हैं तो मैं भी दूसरे पुरुष से मिलना नहीं चाहती। पुरुषत्व के अभिमानी से भाषण भी करना मैं नहीं चाहती। यदि स्वरूप को पहचानते तो गोस्वामीजी कभी ऐसा नहीं कहते कि मैं पुरुष हूँ। जब तक पूर्ण ब्रह्म से भिन्नता है तब तक सबके सब स्त्री हैं। यह ब्रज और विशेषकर वृन्दावन तो श्री गोपीश्वरी राधारानी की राजधानी है। इस वृन्दावन में श्रीकृष्ण ही एक मात्र पुरुष हैं बाकी सर्व प्रकृति। यहाँ रहकर यदि साधना करनी है तो श्री राधा और गोपियों की शरण लेकर ही सफल हो सकती है नहीं तो जिन्हें अपने पुरुषपन का अहंकार हो उन्हें चाहिए कि वे इस ब्रजभूमि के बाहर कहीं जाकर साधना किया करें।

उन गोस्वामीजी महाराज ने भी मीराबाई के मार्मिक और ज्ञान भरे वचन सुने। वे समझ गये कि यह कोई सामान्य स्त्री नहीं, कोई पहुँची हुई उच्चकोटि की आत्मा है। उसी क्षण उनका अहंकार गल गया और वे पर्दे के बाहर निकल आये और मीराबाई के चरणों में गिर पड़े। मीराबाई ने उनका बड़ा आदर किया। विशेष कर श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य होने के नाते मीराबाई को उनसे मिलकर बड़ा ही आनन्द हुआ। श्री चैतन्य महाप्रभु का नाम, उनके गुण-गान और उनकी अवतारिक दिव्यता आदि बहुत सी बातें, श्री पुष्करजी व मेड़ता होकर वृन्दावन जानेवाले महाप्रभु के किसी दक्षिणी भक्त के मुख से उसने पहले से सुन रखी थीं।

पाँच वर्ष तक वृन्दावन धाममें वास करते हुए मीरा व्रजमें नित्य दिव्य लीलाका रस लेती रहीं। आरम्भमें कुछ समय तक ललिता उन्हें लेने आतीं। कुछ समय पश्चात् वहाँके आह्वानपर वे स्वयं उठकर चल देतीं और प्राप्त संकेतके अनुसार निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच जाती। वहाँ रहकर उन्होंने असंख्य लीलाओंके दर्शन किये और उनमें सम्मिलित हो लीला-रसका आस्वादन किया। उनका स्वभाव सर्वथा बदल गया था। चमेलीको आश्चर्य होता- पहले चित्तौड़में बाईसा हुकमको भावावेश होता तो कभी-कभी आठ-आठ दिन तक वे अचेत रहतीं, किंतु सचेत होनेपर वे अपनी दिनचर्यामें लग जाती। चित्तौड़में रहते समय हम दास-दासियोंके पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने और भाव-अभावकी खबर रखतीं। उत्सवोंमें सबके यहाँ प्रसाद पहुँचाने, पुरस्कार देने, गरीबोंकी सहायता करने और ब्राह्मणोंको दान देनेका उत्साह रखतीं। उनकी जागीर पुर-मांडलके खेतीहर किसान आते, हिसाब रखनेवाले कामदार आते और उनकी स्त्रियाँ-बेटियाँ आतीं तो उन सबकी समस्याएँ तथा अभाव सुनतीं। विवाह, मरण आदिके अवसरोंपर उन्हें कुछ देनेका हुकम करतीं। चित्तौड़से मेड़ते आ जानेपर भी ऐसा ही व्यवहार रहा, किन्तु यहाँ वृन्दावनमें जिस दिनसे चम्पा लुप्त हुई है, इन्हें जैसे संसार सर्वथा विस्मृत हो गया है। अब कभी नहीं पूछतीं कि खाद्य-सामग्री कहाँसे आती है? द्रव्य है कि समाप्त हो गया है? तुमने प्रसाद पाया कि भूखी हो? पूरे दिन ब्राह्मज्ञान-शून्य बैठी, या लेटी हुई मुस्कराती या रोती रहती हैं। हम मुखमें कुछ दे दें तो जैसे-तैसे चबाकर निगल लेती हैं। जलपात्र मुखसे लगायें तो पी लेती हैं। कीर्तनके स्वर या संतोंकी उपस्थिति ही इन्हें सचेत करती है। ऐसे यह देह कितने दिन चलेगी? किससे पूछें? एक दिन उनको तनिक सचेत देखकर चमेलीने पूछा- यह चम्पा कहाँ मर गयी बाईसा हुकम? मीरा बोली- जहाँसे वे पधारी थीं, वहीं वे चली गयी।

एक दिन उन्होंने अपने सेवक-सेविकाओंसे कहा- यह वृंदावन साधारण भूमि नहीं है। यहाँ ठाकुरजीकी कृपासे बिना निवास नहीं मिलता। तुम किसीके प्रति मन, वचन और काया द्वारा अवज्ञा मत कर बैठना। इन नेत्रोंसे जैसा दिखायी देता है, वैसा ही नहीं है। यह परम दिव्य-ज्योतिर्मय धाम है। इसके कण-कणमें पेड़-पत्ते और प्रत्येक जनके रूपमें स्वयं ठाकुरजी ही हैं।

भोजन-पान उचित परिणाममें न लेनेसे मीराकी देह दिन-दिन क्षीण होती जा रही थी, किन्तु उनका तेज, भक्तिका प्रताप और हृदयकी सरसता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। वे बहुधा देहाध्याससे शून्य रहतीं। संतों, सत्संगियोंके आनेपर उन्हें कीर्तन द्वारा सचेत किया जाता था। बार-बार वे चमेलीसे पूछतीं- ललिता आयी? धीरे-धीरे वे चमेलीको ही ललिता कहने लगीं। चार-पाँच वर्षमें लोग भूल गये कि उनका नाम चमेली था। मीरा उससे ऐसे देश-स्थान और लोगोंकी चर्चा करतीं, जो उसकी समझमें किसी प्रकार नहीं आती। वह बहुधा इस चिंतामें रहती कि यदि धन समाप्त हो गया तो क्या खाया-पीया जायगा और कैसे संतों-अतिथियोंका सत्कार होगा? उसे कहीं कूल-किनारा नहीं दिखायी देता। ऐसे ही पाँच वर्ष बीत गये।

बादशाह अकबर और तानसेन- मीराके सत्संग कक्ष के बाहर दो आगंतुक साधारण नागरिक वेशमें अभिवादन कर रहे थे। दासीसे बोले- सुयश सुनकर श्रवण कृतार्थ करने हेतु सेवामें उपस्थित हुए हैं। मुखमुद्रामें झलकता रौबे-हुकूमत उसे विशिष्ट बनाये दे रही थी। वह सेवक बनकर आया था, परंतु उसकी बैठक राजा जैसी थी। सिंहके समान निश्शंकता और उत्सुकतापूर्वक मीराकी ओर देख रहा था। मीराने मुस्कराकर कहा- यश बहुत भारी चीज है उसे झेलनेकी शक्ति चाहिये। साधारण जनोंका यश उन्हें पतनकी ओर ढकल देता है। उस व्यक्तिने कहा- साधारण जन तो धन और यशकी लिप्सासे ही उधर प्रवृत्त होते हैं। मीरा बोली- मैंने साधारणजन लिये नहीं, शाहके लिये कहा है। राजकर्म सेवकका धर्म है। सेवक तो फिर भी सेवक होता है, परन्तु राजा होकर भी स्वयंको सेवक मानना, प्रजाजनका चाहे वे किसी भी धर्मको

माननेवाले हों, समान रूपसे पोषण करना और अपना यश जै-जैकार सुनकर प्रमत्त न होना, राज्यको ईश्वरकी धरोहर मानना, गुणीजनोंका संग्रह और सम्मान करना, प्रजा धन-धान्यसे खुशहाल रहे, यही उसका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है अपने अवगुण बतानेवाले हितैषियोंपर क्रोध न करे, सच सुननेको सदा तत्पर रहे, सदा अपने-परायेका भेद त्याग करके न्यायको महत्त्व दे और गुप्त रूपसे मंत्रियों, गुप्तचरों और अन्य पदाधिकारियोंकी जाँच करता रहे। समय-समयपर प्रभुके प्रेमियोंके मुखसे उनका सुयश सुनता रहे और भोग, धन, पदके मदसे निरपेक्ष रहे। दोनों आगन्तुक चकित हो हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले- माते, हरी यशगान सुननेकी अभिलाषा ही आपके श्रीचरणोंमें खींच लायी है। राजनीतिका यह उपदेश हम अनधिकारियोंको भ्रान्त कर देगा। मीरा बोली- प्रभु किसके द्वारा किसको क्या कहलवाना चाहते हैं, यह हम कैसे जान सकते हैं। कौन राजा है और कौन भिखारी, यह तो वह स्वयं भी नहीं जानता। अधिकतर भिखारीको राजा और राजाको भिखारी होनेका भ्रम होता रहता है। सच यह है कि दाता केवल एक है और तो सब भिखारी ही हैं, भले वह राजा हो कि कृषक। जौहरी जहाँसे, जिधरसे भी गुजरे, रत्नोंका संग्रह करते चलता है। वह नहीं देखता कि किस स्थानसे उठा रहा है। उसकी दृष्टि जवाहरातपर रहती है। गंदगी, कूड़े-कचरे अथवा स्वच्छतापर नहीं। मीराने पद सुनाया-

परम सनेही राम की नित ओल्यूँडी आवै। राम हमारे हम हैं राम के हरि बन कछु न सुहावै।।
आवण कहि गया अजहुँ न आया जिवड़ो अति अकुलावै। तुम दरसण की आस रमैया कब हरि दरस दिखावै।।
चरण कमल की लगन लगी नित बिन दरसण दु:ख पावै। मीरा कूँ प्रभु दरसण दीजो आनंद बरण्यों न जावै।।

आगन्तुक ने कहा- धन्य है सरकार। मीरा बोली- प्रभुने आपको अशेष संपदासे निवाजा है। जिसको उसने जो दिया है, उसीसे उसकी सेवा की जाय। आगन्तुक बोले- कृपा-मेहरबानी होगी यदि एक और पद बख्शें। मीराने फिर गाया-

सुण्या हरि अधम उधारण।
अधम उधारण भय भय तारण सुण्या हरी अधम उधारण। गज बूड़ताँ अरज सुण धाया भगताँ कष्ट निवारण।।
द्रुपद सुता रो चीर बढ़ायो दुसासन मद मारण। प्रह्लाद री प्रतिज्ञा राखी हरणाकुश उदर विदारण।।
रिखि पतनी किरपा पाई विप्र सुदामा विपद निवारण। मीरा री प्रभु अरजी म्हाँरी अब अबेर किण कारण।।

मीरा बोली- संगीताचार्य। मानव-तनकी प्राप्ति ही ईश्वरका सबसे बड़ा अधिकार है, सबसे बड़ी पात्रता है। अन्य पात्रताएँ हों या न हों, अगर वह न चाहे, यह बात अलग है। आगन्तुकोंने कहा- क्या चाहते ही मानवको भगवद्दर्शन हो सकते है? मीरा बोली- हाँ, एक यही तो उसके बसमें है। अन्य सभी कुछ तो प्रारब्धके हाथ है। जैसे वह धन, नारी, पुत्र यश चाहता है, वैसे ही यदि हरिदर्शन चाहे, उसकी अन्य चाहें तो प्रारब्धके हाथों कुचली जा सकती हैं, किन्तु इस चाहको कुचलनेवाला यदि वह स्वयं न हो तो महाकाल भी ऐसी हिम्मत नहीं कर सकता। पधारें, आप दर्शन कर लें। मीरा उठ खड़ी हुई। मंदिर-कक्षमें जाकर उन्होंने प्रभुके दर्शन किये। प्रौढ़ व्यक्तिके प्रमाणका अनुकरण-सा करते हुये युवकने खीसेमेंसे हीरेकी बहुमूल्य कंठी निकाली और आगे बढ़कर उसे प्रभुके अर्पण करने लगा। तभी मीरा बोल पड़ी- नहीं, शाह। यह प्रजाका धन है, इसे उन्हीं दरिद्रनारायणकी सेवामें लगायें। जिस राज्यमें प्रजा सुखी रहती है, उस राज्यका नाश नहीं होता। आप उदारता और नीतिपूर्वक प्रजापालन करें। ये तो भावके भूखे हैं-

भावना रो भूखो म्हाँरो साँवरो भावना रो भूखो। शबरी रा बेर सुदामा रा चावल भर भर मूठ्याँ ढूको।।
दुर्योधन रा मेवा त्याग्या साग विदुर घर खायो। करमाबाई रो खीच आरोग्या खायो गण्यो नहीं सूखो।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर औसर कबहुँ न चूको।।

उन आगन्तुकोंने पूछा- एक अर्ज करूँ। मीराने कहा- बताइये। आगन्तुक बोले- आपने अभी इन्हें शाह कहकर सम्बोधन किया। मीरा मुस्कराकर बोली- क्या यह ठीक नहीं है? क्या ये इस देशके शासक और आप इनके दरबारी गायक नहीं है? आगन्तुक बोले- धृष्टता क्षमा हो सरकार। मैं यही जानना चाहता था कि यह रहस्य आपको कैसे ज्ञात हुआ? हम दोनों तो छद्मवेषमें हैं और हमारे अतिरिक्त कोई तीसरा व्यक्ति इसके बारे में जान नहीं सकता। मीरा बोली- मेरे भीतर भी कोई बसता है।

नवीन दुर्गका निर्माण करनेके विचारसे बादशाह अकबर अपने दरबारके मुख्य उमरावोंके साथ स्थानका निरीक्षण करनेके लिये आगरा आया। वहीं उसने मीराकी प्रशस्ति सुनी। उनके रूप, वैराग्य, पद-गायन और चित्तौड़ जैसे प्रसिद्ध राजवंशकी पर्दानशीन रानी होकर भी सब कुछ छोड़कर वृंदावनकी वीथियोंमें इकतारा ले गाते हुए नाचती हैं तो सुनने और देखनेवाले सुध भूल जाते हैं। किसी-किसीको उसके घुँघरूओं और इकतारेकी ध्वनिके साथ कृष्णकी वंशी भी सुनायी दी। कोई कहते हैं कि वह गाते समय संसार भूल जाती है। कोई कहते हैं वह कवयित्री हैं और गाते समय अपने आप पद बनते चले जाते हैं। उसकी आँखोंसे धारा प्रवाह आँसू बहते हैं। वह इस लोककी स्त्री नहीं लगती, आदि आदि। बाईस वर्षका युवक बादशाह उस राजपूती नाजनीनको देखनेके लिये आतुर हो उठा। अपने दरबारी गायक तानसेनसे उसने मनकी बात कही।

हुजूरेआली। अगर जनाब बादशाही तौर-तरीकेसे उस मलिकाके दीदारको तशरीफ ले जाते हैं तो वह कभी भी मिलना कबूल नहीं करेगी। माना कि उसने पर्दा छोड़ दिया है, मगर वह खुदाकी दीवानी है, उसे आपके रुतबेका कोई ख्याल नहीं होगा। हो सकता है कि वह जहाँपनाहसे मिलनेसे इंकार कर दे। लेकिन मैं उसके दीदारके लिये बेताब हूँ तानसेन। इतना ही नहीं, मैं उसका गाना भी सुनना चाहता हूँ। यह तो और मुश्किल काम है। आलमपनाह। अगर आप मेरे साथ सादे हिन्दू वेशमें पैदल अकेले तशरीफ ले जायँ तो मुमकिन है कि हुजूरकी ख्वाहिश पूरी हो जाय। कोई खतरेका अंदेशा तो नहीं होगा। नहीं, आलीजाह। खुदाके दीवाने औलिया और फकीरोंकी ओर उठनेवाले पाँवोंके सामने आनेका खतरा, खतरे कभी नहीं उठाते। अलबत्ता वैसा करनेकी हिमाकत गर कर ही लें तो उनकी अपनी शख्सियत खतरेमें पड़ जाती है।

यहाँसे घोड़ोंपर चला जाय और फिर वृन्दावनमें पैदल। मैं जैसा कहूँ-करूँ, हुजूरको नकल करना होगा। वे हँसे।

मंजूर है मौसिकी आलिया। जैसा तुम कहो हम यह भी देखेंगे कि कोई तुमसे ज्यादा बेहतर गा सकता है कि नहीं और राज्य, जर, जमीन सब होते हुए भी उसने फकीरी लेकर क्या हासिल किया है?

पूछते-पूछते वे पहुँच गये। जो कुछ देखा, शहंशाह अकबरने उसकी कल्पना भी नहीं की थी।

तानसेन। औरत जातमें इतनी अक्ल, हुस्न और हुनर होनेके बावजूद भी वह सब कुछ छोड़ चुकी है। इतना ही नहीं, वह हम-तुमसे ज्यादा खुश नजर आती है। उसपर नजर पड़ते ही दिलोदिमाग थम गये थे। एक अजीब ठंडक, सुकून महसूस होता था वहाँ। अकबरने लौटसे समय तानसेनसे कहा। खुदाके दीवानोंकी दुनियाँ ही और होती है आलीजाह। उसका गाना, खुदाके हुजूरमें उसकी वह बंदगी, आह। वह मिठास दुनियाका कोई गानेवाला नहीं पा सकता।

तुमने जो वहाँ गाया तानसेन। वह भी तुम्हारे गाये सभी गानोंसे बेहतर था। मैं तो हैरान था कि तानसेनने आज तक हमारे हुजूरमें ऐसा क्यों नहीं गाया। वह सब उस मलिकाका कमाल था। हुजूर। गुलाम तो उसके सामने किसी काबिल नहीं है। याद है जहाँपनाह। उसने जब हमें बिना कहे पहचान लिया, तब उसने हुजूरेवालाको एक बादशाहके फर्ज भी बताये।

ओह। वे बातें बड़ी बेशकीमती हैं तानसेन। माबदौलत उनपर अमल करना चाहेंगे, कोशिश करेंगे। यह तो सचमुच हैरानियतकी बात है कि उसने हमें पहचान लिया।

हुजूर। खास बात तो यह है कि उसने अपना खुदासे ताल्लुक-रसूख जाहिर किया। बेनजीर है तानसेन। यह वतन और

यहाँके बाशिन्दे। हम कोशिश करेंगे कि इनको और इस वतनको अमन-चैन हासिल करा सकें। अब आगराका किला फख्त जगों-जदलके लिये ही नहीं, इन फकीर औलियासे गुफ्त-गूके लिये भी जरूरी हो गया है।

मीराका द्वारिकावास और सारूप्य मुक्ति- वृन्दावन से द्वारिकापुरी की ओर जाने के लिये उसे प्रभु की ओर से संकेत मिला। तब उसने उस ओर प्रस्थान किया। पच्चीस वर्ष व्रजमें निवास करके मीराने वि सं. १६२१ में द्वारिकाके लिये प्रस्थान करनेका निश्चय किया। उस समय उनकी आयु पचपन वर्षसे ऊपर थी। अपने प्राणपति श्री द्वारिकाधीशके दर्शनके लिये वे प्राणप्रियतमके आदेशके अनुसार तीर्थयात्रियोंके दलके साथ प्रस्थान करनेको प्रस्तुत हुई। उस समय उनके केशोंमें सफेदी झाँक उठी थी। रास्तेमें मालूम पड़ा- श्यामकुँवर बाईसाको पुत्र लाभ हुआ। जोधपुरके राव मालदेवकी अनीति और अनाचारके कारण मेड़ताका पराभव हुआ और राव वीरमदेवजीको दर-दरकी ठोकरें खानी पड़ीं। असीम उथल-पुथल घमासान पारस्परिक युद्ध और राजोचित चातुर्यके बाद मेड़तापर राव वीरमदेवजीका पुन: अधिकार हो गया। मेड़ता प्राप्त करनेके दो मास पश्चात ही वि. सं. १६०० में राव वीरमदेवजी का देहावसान हो गया। वीरमदेवजी बड़े उदार, वीर और नीतिज्ञ शासक थे। दिल्ली, गुराज और मालवाके युद्धोंमें ये अपनी सेना सहित महाराणा साँगाके साथ रहे। राव वीरमदेवजीके बाद छत्तीस वर्षकी आयुमें राव जयमल मेड़ताकी राजगद्दीपर बैठे। मेड़तिया राठौड़ राजवंशमें राव जयमल सबसे प्रतापी, बलशाली और भक्त नरेश हुए। जोधपुरके राव मालदेवने इनसे भी शत्रुता रख ली और राव जयमलजीको इनसे बाइस बार युद्ध करना पड़ा। एक बार राव मालदेवने मेड़तापर अचानक चढ़ाई कर दी। यह आक्रमण ऐसा अचानक हुआ कि कानो-कान खबर नहीं हो पायी।

मार्ग में तीर्थ यात्रा, सन्त दर्शन व सत्संग करती हुई मीराँबाई श्री द्वारिकापुरी पहुँच गई। उधर मीराबाई के मेवाड़ देश छोड़ जाने के पश्चात् वहाँ की परिस्थिति सर्वथा विपरीत हो गई। राणा विक्रमादित्य को बनवीर (राणा संग्रामसिंह के बड़े भाई पृथ्वीराज की पासवान का पुत्र) ने मार डाला और वह स्वयं राणा बन बैठा और उदयसिंह (विक्रमादित्य के छोटे भाई) को भी मारने गया था तब पन्नाधाय ने उदयसिंह को गुप्तरूप से केलवाड़ा की ओर भिजवा दिया और उसके नाम से अपने पुत्र का बलिदान देकर उसकी रक्षा की। अवसर पाकर सब जागीरदारों को व सरदारों को एकत्रित कर उनकी सहायता से बनवीर को परास्त कर उदयसिंह चित्तौड़ के राज्यसिंहासन पर बैठा।

द्वारका और द्वारिकाधीशके दर्शनकर वे प्रसन्न मग्न हो गयीं।

म्हाँरो मन हर लीन्हों रणछोड़। मोर मुगुट सिर छत्र बिराजे कुण्डल ही छबि ओर॥

चरण पखारे रतनाकर री धारा गोमत जोर। धुजा पताका तट-तट राजे झालर री झकझोर॥

भगत जणा रा काज सँवार्या म्हाँरा प्रभु रणछोर। मीरा रे प्रभु गिरधर नागर कर गह्यो नंद किशोर॥

उनकी कीर्ति उनसे पूर्व ही द्वारिका पहुँच गयी थी। उनका आगमन सुनकर संत-भक्त सत्संगके लोभसे आने लगे, जैसे पुष्पगंध पाकर भ्रमरोंका झुंड चला आता हो। उनकी अनुभव-पक्व-वाणी, स्निग्ध मुखाकृति, भावभरे तेजोदीप्त नेत्र, त्यागमय जीवन और राग-रागनियोंसे युक्त, भावपूर्ण अद्भुत-अलौकिक कंठस्वर आनेवालोंके सारे संशयोंका नाश कर देते थे। उसकी देहमें अब हल्की सी स्थूलता आ गयी थी, किन्तु जब वे रणछोड़रायके सामने भाव-विभोर नृत्य करतीं तो लगता कि किसी अन्य लोककी देवांगना ही धरापर उतर आयी है।

वे रणछोड़ रायसे अपनी द्वारिकामें स्थायी वास देनेकी प्रार्थना करने लगीं।

राय श्रीरणछोड़ दीज्यो द्वारिका रो वास। शंख चक्र गदा पदम दरसै मिटे जम की त्रास॥

सकल तीरथ गोमती के रहत नित निवास। संख झालर झाँझर बाजे सदा सुख की वास॥

तज्यो देसरु वेस हू तजि तज्यो राणा वास। दासी मीरा सरण आई थाने अब सब लाज।।

वे कहती- तुम्हारा विरद मुझे प्रिय लगा, इसलिये सब मेरे वैरी हो गये। अब यदि तुम सुधि न लो, न निभाओ तो मुझे कहीं कोई सहारा नहीं है।

रावलो विरद म्हाँरे रूड़ो लागे पीड़ित म्हाँरा प्राण। सगा सनेही म्हाँरे न कोई बैरी सकल जहाण।।

ग्राह गह्याँ गजराज उबार्यो अछत कर्या वरदान। मीरा दासी अरजी करै है म्हाँरे सहारो ना आन।।

एक बार किसी दु:खी व्यक्ति का जवान पुत्र मर गया तब वह मीराबाईका नाम सुनकर दर्शन करने आया और उसने साधु होनेकी इच्छा व्यक्त करी। मीराने उसे समझाया- घर छोड़ने से तुम्हारी समस्याओंका हल नहीं होगा। उस व्यक्तिने कहा- मैं दु:खसे व्याकुल हो गया हूं। मैं परिस्थितियोंका सामना नहीं कर सकता। मीरा बोली- दु:ख-सुख भौतिक वस्तु नहीं है जो तुम्हें उठाकर दे दे। पुत्रकी मृत्युसे तुम्हें दु:खकी जो अनुभूति हुई है, पुत्र प्रेम इसलिये है कि उसके जीवित रहनेसे सुख और मरनेसे दु:खका अनुभव होता है। इसलिये उसमें तुम्हारा मोह है। यह बड़ा होकर तुम्हारा सहारा बनेगा। बहू आयेगी सेवा करेगी, पौत्र होगा, वंश बढ़ेगा। मरनेपर पितृश्राद्ध करेगा इत्यादि। सोचकर तो देखो, ये सब भावनाएँ केवल अपने लिये है। अपने सुखकी इच्छा, इस इच्छामें बाधा पड़ते ही दु:ख, क्रोध और यदि तुम्हारा यह पुत्र जीवित रहता तुम्हारी इच्छाके विपरीत व्यवहार करता, तब भी तुम साधु होनेकी इच्छा करते क्या? अधिकांश लोग तो मोहके इस गर्तसे निकलना नहीं चाहते। रात-दिन, कलह, व्यथा चिंता छोड़कर भी मोह नहीं छोड़ पाते। यह मोह ही दु:खका मूल है। पापका बाप मोह, माँ तृष्णा और क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि सब कुटुम्बी हैं। पापकी पत्नी अशांति और बेटी मृत्यु है। इनसे बचनेका उपाय प्रभुका भजन है, प्रभुका स्मरण है साधु होना नहीं। अभी तो तुम्हारे षट्विकार दूर नहीं हुये, खाने-पीने, सोनेकी चिंता नहीं है। साधु होते ही पहली चिन्ता तुम्हें यही लगेगी कहा ठहरे, कहाँ सोयें और क्या खायें। एक बार साधु बन जानेपर अपने आपको पुजवानेके लिये व्यक्ति कई प्रकारके ढोंग करता है और अन्य अनैतिक मार्ग से सुख-सुविधा ढूँढनेका प्रयत्न करता है। यदि वैराग्य नहीं है तो कठिनाइयाँ नहीं सह सकोगे और संसारसे ही आसक्ति हो जायगी और साधु वेशकी विरक्ति हो जायेगी। **भज जन मचरण कँवल अविनासी।**

जेताई दीसे धरण गनन माँ तेताई सब उठ जासी। तीरथ करताँ ज्ञान कथताँ कहा लियाँ करवत कासी।।

इण देह रो गरब न करणाँ माटी में मिल जासी। यो संसार चौसर बाजी साँझ पडयाँ उठ जासी।।

कहा भयो है भगवा पहर्या घर तर भया संन्यासी। जोगी होय जुगत ना जाणी उलट जनम फिर आसी।।

अरज कराँ अबला कर जोड्याँ श्याम थाँरी दासी। मीरा के प्रभु गिरधर नागर काटो म्हाँरो फाँसी।।

भजनका नियम लो। उसे किसी प्रकार टूटने न दो। घरका मालिक भगवानको बनाकर तुम मजदूर अथवा नौकर बन जाओ। कुछ भी करनेसे पूर्व भीतर बैठे स्वामीसे पूछो कि यह कार्य ठीक है या नहीं। जिसका अनुमोदन हो, वही करो। इसप्रकार तुम्हारे सारे कार्य, सारा जीवन पूजा हो जायगा। इतने पर भी जीभको विश्राम मत दो। खाने, सोने और आवश्यक बातचीत छोड़कर इसे बराबर नाममें व्यस्त रखो।

वर्ष भरमें महीने दो महीनेका समय निकालकर सत्संगके लिये निकल पड़ो और अपनी रुचिके अनुकूल स्थानोंमें जा-जाकर महज्जनोंकी वार्ता सुनो। सुननेका धैर्य आयेगा तो उनकी बातें असर करेंगी। उनमें तुम्हें रस आयेगा। जब रस आने लगेगा तो तुम जिसका नाम लेते हो, वह आकर तुम्हारे भीतर बैठ जायगा। ज्यों-ज्यों रसकी बाढ़ आयेगी, हृदय पिघल करके बह पड़ेगा और वह नामी हृदय-सिंहासनसे उतरकर आँखोंके आगे नृत्य करने लगेगा। इसलिये-

राम नाम रस पीजे मनुवा राम नाम रस पीजे। तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चरचा सुन लीजे।।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से दूर करीजे। मीराके प्रभु गिरधर नागर ताहि के रंग में भीजे।।

सारकी बात यही है कि बिना सच्चे वैराग्यके घरका त्याग मत करो। क्षमा प्रदान करो माते। मैं महा अज्ञानी हूँ। जपमें मन नहीं लगता। जीभ नाम लेती रहती है, किन्तु मन मानो धरा-गगनके समस्त कार्योंका चिंतन करते रहता है। जीव खिन्न हो जाता है। मीरा बोली- भजनका अर्थ जैसे भी हो, मन-वचन-कायासे भगवत्संबंधी कार्य हो। पत्नी कभी मुखसे पतिका नाम नहीं लेती किन्तु नाम उसके मन प्राणोंमें ऐसा बसा हुआ है वह स्वयं भी चाहे तो नहीं मिटा पायेगी। मन हमारा सूक्ष्म देह है। हमारे स्थूल देह द्वारा जो क्रियाएँ होंगी, वही सूक्ष्मपर अंकित होकर संस्कार बनेंगे। जो क्रिया या कर्म बारंबार होगा, उसका संस्कार दृढ़ होगा। यदि उस कर्मके साथ बुद्धिका समर्थन है तो उसका प्रभाव भी अधिक होगा। बिना मन-बुद्धिके कोई भी कार्य ठीक से नहीं हो सकता। जप इसलिये किया जाता है कि मन लगे, मन एकाग्र हो। मन न लगनेकी जो संताप आपको है वही खिन्नता मन लगनेकी भूमिका प्रस्तुत करेगी। आप जप आरम्भ कीजिये। आरम्भ करना आपके हाथ में है।

सागरकी उत्ताल तरेंगे विभोर कर देती है और प्रिय विरहकी दारुण व्यथा मीराको चैन नहीं लेने देती। बिना गिरधर के उसका पल-पल युगके समान बीतता। मीरा गाती- मीरा जनम जनम री दासी भगताँ प्रेम निभावाँ।। संतोंको देखकर उसका सारा दु:ख दर्द दूर हो जाता। मीरा गाती-

श्याम बिन दु:ख पावाँ सजनी कुण म्हाँने धीर बँधावे। यो संसार कुबुध को भाँड़ो साध संगत ना भावे।।
साध जणा री निंदा ठाणे करम री कुगत कमावे। साध संगत में भूल न जावे मूरख जनम गमावे।।
मीरा रे प्रभु थारी सरणाँ जीव परद पद पावे।।

दिन तो जैसे-तैसे साधु-संग, भजन-कीर्तनमें निकल जाता, किन्तु रात तो बैरिन हो जाती। मिलना बिछुड़ना तो गिरिधर का खेल है। वे जैसे जिस हालमें रखें, उनकी प्रसन्नतामें मेरी प्रसन्नता है, किन्तु यह स्थूल देह ही बाधा है। पापी प्राण इतना कष्ट पाते हैं पर देह का मोह छोड़ नहीं पाता।

श्याम मिलण को घणो उमावो नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ। दरस बिना मोहि कछु न सुहावे जक पड़े न दिन रातड़ियाँ।।
तड़फत तड़फत बहु दिन बीते पड़ी बिरह की गाँठड़ियाँ। अब तो बेगि दया कर साहिब मैं हूँ थारी दासड़ियाँ।।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसें नाभि न बैठे साँसड़ियाँ। रात दिवस हिय आरत म्हाँरे कब हरि राखें आँटड़ियाँ।।
मीरा रे प्रभु कब रे मिलोगे पूरो मन री आसड़ियाँ।।

इतने में एक अलौकिक वेश में एक जोगी साधु आया। दासियाँ प्रणाम करके बोली- आज्ञा करें महाराज क्या सेवा करूँ? संन्यासी ने कहा- तुम्हारी इस देवी का मुख म्लान है कोई विपत्ति हो तो कहूँ। दासियोंने कहा- हमारी विपत्ति असीम है और जगदीश के अतिरिक्त उसे कोई नहीं मिटा सकता। सन्यासी बोले- विपत्ति क्या है? तो मंगला दासी बोली- आपके बसका रोग नहीं है आप बालक है। वह जोगी बोला- क्या सन्यासी को वृद्ध ही होना चाहिये क्या ज्ञान बड़े-बूढ़ोंकी बपौती है। मंगला दासी बोली- नहीं, प्रभु हमारा यह आशय नहीं है। हमारी स्वामिनी बीमार है हम सब उसके जीवनसे निराश है। जोगी बोला- तुम्हारे दु:खका कारण तुम्हारी स्वामिनीका रोग है। मैं तुम्हारी स्वामिनीको देखना चाहता हूँ। दासियाँ बोली- हमारी स्वामिनीको कोई साधारण रोग नहीं है भगवान उन्हें भगवद् विरह का रोग है, जिसे स्वयं जगदीश्वर ही शांत कर सकते हैं। जोगी बोला- यदि मेरी शक्तिकी परिधि में हुआ तो अवश्य ही.... और जोगी ने भीतर प्रवेश किया। सब आश्चर्यसे देखने लगे कि मीराकी देह सामान्य होने लगी। कुछ क्षणों पश्चात् मीरा उठकर बैठ गयी और मीरा के मुख से

निकल पड़ा श्यामसुंदर। साधु बोला- नहीं, रमता जोगी। जोगी बोला- वही माया सर्वश्रेष्ठ है और सचमुच ही आप बड़भागी है। आपकी व्याकुलताने प्रभुको व्यथित कर दिया वे आपसे मिलनेको व्याकुल है। जैसे आप व्याकुल हो रही है वे सर्वेश्वर दयाधाम अपने भक्तोंकी पीड़ा सह नहीं पाते। प्रभुने आपके लिये संदेश पठाया है। मीरा बोली- क्या फरमाया है, मेरे लिये क्या आदेश है? यदि वे न आना चाहे तो आने में कोई कष्ट और बाधा हो तो कभी न आये। मैं ऐसे ही अपने जीवन के दिन व्यतीत कर लूँगी। जीवन होता ही कितना है। देव आप जो भी हो आपने मुझे सांतवना प्रदान की है। मेरे प्रियतम का संदेश लाये हैं अथवा आप पूज्य है। कोई सेवा कराने की कृपा करें ये सेविका कृतार्थ होगी। जोगी बोला- स्वामी की प्रशंसा ही उसका वित्त है और सेवा ही प्रसन्न। मीरा बोली- अंधेको क्या चाहिये दो आँखे और चातक पक्षीको क्या चाहिये दो बूँद स्वाति जल। मेरे आराध्यकी चर्चा करके मेरे हृदयको शीतलता प्रदान करें। क्या प्रभु कभी इस सेविकाको भी स्मरण करते हैं? कभी दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे? आप तो उनके अंतरंग सेवक है। यह पिपासा कभी शांत होगी? कृपा करके यह सब बताये। वह जोगी बोला- देवी, आपका नाम लेकर वो एकान्तमें विह्वल हो जाते हैं। लोक-कल्याणके लिये आपको परस्पर वियोग सहना पड़ रहा है। वह जोगी बोला- जो कोई आपके पास आते हैं, आपका दर्शन, सेवा करते हैं उन सबका कल्याण निश्चित है। आप जिस स्थानका स्पर्श करती हैं, वह स्थान इतना पवित्र हो जाता है कि इसके स्पर्श मात्रसे लोगोंमें भगवत्स्मृति जागृत हो जाती है। मीरा बोली- सारी आयु रोते-रोते कलपते बीत गयी।

श्याम बिना म्हाँसू रह्यो न जाय। तन मन जीवन प्रीतम वाराँ बाँरे रूप लुभाय।।
खान पान म्हाँने फीका लागे नेण रह्या मुरझाय। निस दिन जोवाँ बाट मुरारी कब रे दरसण पाय।।
बार बार थाँसू अरजी करूँ रैण गयी दिन जाय। मीरा रे हरि थाँ मिलिया बिन तरस तरस जिय जाय।।
विध विधना री न्यारी। दीरध नैण मिरग कूँ दीन्हा बन बन फिरता मारी।।
उजलो वरण बगलाँ पायो कोयल कीधी कारी। नदियाँ जल निरमल धारा समदाँ कर दिना खारी।।
मूरख जन सिंघासण राजे पंडित फिरत भिखारी। मीरा रे प्रभु गिरधर नागर लोग लखत अनारी।।

आप स्वामीके हृदयमें विराजती हैं। चिंता त्याग दें। प्रभु आपको अपनाने शीघ्र ही पधारेंगे और फिर कभी उनसे वियोग नहीं होगा। मुझे तो यही संदेश देकर भेजा हैं। योगीराजने मीराको सान्त्वना दी। **मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बेन मिलो महाराज।**

योगीराज बोले- देवी, वे आपको मीरा कहकर ही स्मरण करते हैं। प्रभुको आपकी चर्चा करनेका व्यसन हो गया है। देवी वैदर्भी (रुक्मिणी) ने तो कई बार आग्रह किया आपको बुला लेनेके लिये अथवा प्रभुको स्वयं पधारनेके लिये। मीरा जोगीको बोली- आप जानेकी कह रहे हैं मैं प्राणोंको किसके सहारे शीतलता दे पाऊँगी। आप न जायँ प्रभु और मीरा व्याकुल होकर गाने लगी- **जोगी मत जा मत जा पाँय परूँ मैं चेरी तेरी हो।**

प्रेम भक्ति को पेंड़ो ही न्यारो हमकूँ गैल बता जा। अगर चन्दन की चिता बणाऊँ अपने हाथ जला जा।।
जल बल होय भसम की ढेरी अपणे अंग लगा जा। मीरा के प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा।।

वे रात-दिन व्याकुल होकर सोचतीं-कितने दिन प्रभुके साथ रही, पर मैं अभागिन पहचान नहीं पायी। उन्हें योगी समझकर दूर-दूर ही रही। कभी ठीकसे चरणोंपर सिर तक न रखा। हा, कैसा अभाग्य मेरा। कहते हैं कि सच्चा प्रेम अँधेरी रातमें सौ पर्दोंके पीछे भी अपने प्रेमास्पदको पहचान लेता है। मुझ अभागिनीको प्रेम करना आता ही कहाँ हैं? प्रेम होता तो वे बँध न जाते? योगी होनेका नाटक क्यों करते? क्या करूँ कैसे पाऊँ उन्हें?

पूर्णिमाकी रातमें उमड़ते हुए समुद्रके ज्वारको देखकर वे उससे बातें करने लगीं- रे सागर। तेरी दशा भी मुझ-सी है। तू

कितना भी उमड़े, उत्ताल लहरें लें, किन्तु चन्द्र तककी दूरी पार करना तेरे बसमें नहीं है। ऐसे ही मेरे प्राणपति भी मुझसे दूर जा बसें हैं। मैं गुणहीन उन्हें कैसे रिझाँ किसी प्रकार समझ नहीं पाती। मेरा हृदय भी तेरी तरह उमड़ा आता है। न जाने कितनी दूर है वह धाम, जहाँ मेरे प्रभु विराजते हैं,पर भैया। आशा जो नहीं टूटती। इसी कारण प्रयत्न भी नहीं छूटता। हम दोनों समान रोगके रोगी हैं। कहो तो क्या उपाय करें प्रिय मिलनके लिये?

कभी टिटहरी, हंस, सारस या पपीहेका स्वर सुनकर उनसे बतियाने लगती। वे गम्भीर रात्रिमें एकटक सागरकी ओर देखती रहती- महाभाग रत्नाकर। तुम उन्हें कितने प्रिय हो? ससुराल होनेपर भी वे तुम्हारे यहाँ ही स्थायी रूपसे रहना पसन्द करते हैं। इतना ही मानो पर्याप्त न हो, द्वारिका भी उन्होंने तुम्हारे ही बीच बसायी। अपने प्रभुके प्रति तुम्हारा प्रेम अकथनीय है। मिले होनेपर भी तुम निरन्तर उनके मधुर नामोंका गान करते रहते हो। कहो तो उनके नामकी मधुरिमा कैसी है भला? एक बार भीतर उतरनेपर वह कभी छूटती नहीं। इन्हीं नामोंका कीर्तन करते-करते, उनके श्याम स्वरूपका दर्शन करते-करते तुम स्वयं उसी वर्णके हो गये हो। तुम धन्य हो महाभाग्यवान सागर तुम धन्य हो। मैं अभागिन अपने प्राणपतिके दर्शनसे वंचित व्याकुल हूँ। मीरा अपने चित्चोर के विरह में व्याकुल हो गयी। मिलनकी उछाहमें वे दिन-रात भूल जातीं, भूल जातीं कि वे साधक वेशमें निर्धन जीवन बिता रही हैं। वे सेवक-सेविकाओंको राजसी प्रबंधकी आज्ञ देतीं। कई-कई दिनोंतक वे इस आनन्दमें डूबी रहतीं। अपने प्राण-सखाके साथ वे हिंगलाट (झूले) पर बैठी बातें करती हुई नहीं थकतीं। ऐसेमें कोई वृद्ध पुरुष या संत आ जाते तो वह एकदम झूलेसे उठ घूँघट डाल तिरछी खड़ी हो जाती। मीराके पास जो कुछ था साधु-सेवा में खर्च कर देती। मीरा नित्य नियमपूर्वक द्वारिकाधीशके मन्दिरमें प्रात:-सायं दर्शन-भजन करने पधारती। सायंकाल नृत्य-गान अवश्य ही होता। एक-दो बार वे भावावेशमें समुद्रमें जा गिरीं। सेविकाओंकी सावधानी काम आयी। उन्होंने समुद्रसे दूर घर लेकर रहना आरम्भ किया, किन्तु मीराके प्राण मानो समुद्रमें ही बसते थे। सूर्योदय, सूर्यास्त, पूर्णिमाका ज्वार और शुक्लपक्षकी रात्रियोंमें सागर दर्शन उन्हें बहुत प्रिय था। कभी-कभी तो रातमें भजन-कीर्तनका आयोजन भी समुद्रतटपर ही होता।

मीरा के जाने से मानों भगवान ही रुठ गयो हों त्यों मेवाड़ में अशान्ति बढ़ती ही चली, लोगों को चैन नहीं था। व्याधियाँ भी फैलने लगीं। नये-नये उपद्रव होने लगे और प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। तब राणा उदयसिंह और प्रजाजनों ने मिलकर मीराबाई को वापिस लौटा लाने का संकल्प किया। उन्हें यह निश्चय हो गया कि मीराबाई को अपमान पूर्वक देश निकाला देने से ही देश की यह परिस्थिति हुई है। उन्होंने कुछ जागीरदार पुरोहितादि ब्राह्मणों को मीराबाई को वापस लौटा लाने के लिये भेज दिये।

मीराबाई के पीहर मेड़ते में भी परिस्थिति परिवर्तित हो चुकी थी। अपना खोया हुआ मेड़ते का राज्य राव वीरमदेव ने अपने पराक्रम से वापस ले लिया परन्तु वि. सं. १६०० में राव वीरमदेव का देहान्त हो गया तब राव जयमल मेड़ते की गद्दी पर आसीन हुये। गद्दी पर आते ही उन्होंने अपनी बहन मीराबाई को द्वारिका से लिवा लाने के लिये अपने विश्वासपात्र राजकर्मचारी और प्रजाजनों को भेज दिया।

इस प्रकार पीहर और ससुराल दोनों राज्यों की ओर से मीराबाई को पुन: सत्कारपूर्वक वापस बुलाने का प्रबन्ध किया गया।

तदनुसार ये लोग सब द्वारिकापुरी पहुँच गये और उन्होंने मीराबाई को सब परिस्थिति से परिचित कराते हुए वापस लौट चलने के लिये अत्यन्त आग्रहपूर्वक अनुरोध किया। मीराबाई के लिये यह धर्म संकट हो गया। अब उसकी इच्छा द्वारिका छोड़कर और कहीं भी जाने की नहीं थी। वहीं सत्संग-भजन कीर्तन करते हुए अन्तिम क्षण में सदा के लिये प्रभु की परम

कृपा का सौभाग्य पाने की ही अब उसकी एक मात्र इच्छा थी।

श्रीद्वारिका धाममें मीराबाई पल-प्रति-पल उस क्षणकी प्रतीक्षा कर रही थी, जब उन्हें अपने जीवनधन प्राणाराध्य श्रीद्वारिकाधीशका नित्य सांनिध्य प्राप्त होगा, परन्तु उधर मेवाड़के संकटके घनघोर बादल मँडरा रहे थे। मीराबाईके चित्तौड़-परित्यागके बादसे एक-न-एक संकट, प्रबलसे प्रबलतर संकट सामने आते ही रहे। बादशाह अकबरकी चित्तौड़पर गिद्ध दृष्टि थी और उसने योजनाबद्ध रीतिसे चित्तौड़पर हमला बोल दिया। चित्तौड़के साथ अनेक राजपूत सामन्त-उमराव थे। राजपूती सेनाने घमासान युद्ध किया, परन्तु बादशाह अकबरका सैन्य बल अधिक होनेसे २५ फरवरी १५९८ के दिन चित्तौड़ किले पर मुगल सेनाका अधिकार हो गया। इस घनघोर युद्धमें मेड़ताके राव जयमल, जो किलेके दुर्गाध्यक्ष और प्रधान सेनानायक थे, उनकी वीरतासे सभी चकित एवं नामित थे। उन्होंने पिता श्रीवीरमदेवजीका वचन निभानेके लिये चित्तौड़ किलेकी रक्षा हेतु अपने जीवनकी आहुति दे दी और लड़ते-लड़ते उन्हें अद्‌भुत वीरगति प्राप्त हुई। चित्तौड़के किलेपरसे भगवा ध्वजसे हटते ही राजपूती गौरव धूल-धूसरित हो गया। चित्तौड़की राजश्रीपर घना कृष्णावरण छा गया। मेवाड़पर विपत्तिके पहाड़ टूट पड़े। सुख-शांति-समृद्धिको दुख-दीनता-दरिद्रताने डस लिया। किसी साधुके कहनेपर जन-मानसमें यह विचार तेजीसे डस लिया। किसी साधुके कहनेपर जन-मानसमें यह विचार तेजीसे बुदबुदाने लगा कि भक्तिमती मेड़तणी कुँवराणीसा मीराबाईको सताये जानेका यह दुष्परिणाम है। देव रूठ गये हैं। तभी तो ऐसे दुर्दिन देखने पड़ रहे हैं। उन भक्तिमती कुँवराणीसाने संत्रस्त होकर मेवाड़का परित्याग कर दिया। अब तो एक ही उपाय शेष है कि यदि वे महिमामयी मेड़तणीसा वापस मेवाड़ पधारें तो ये बुरे दिन बदलें। यही धारणा महाराणा उदयसिंहजीकी थी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वन्दनीया भाभीसाको किसी प्रकार मनाकर वापस चित्तौड़ बुलाना चाहिये और इसके लिये राजपुरोहितजीको द्वारिका भेजना चाहिये। महाराणीजीका आदेश पाकर राजपुरोहितजीने द्वारिकाके लिये प्रस्थान किया।

मेवाड़के राजपुरोहितजीके साथ राठौड़ोंके पुरोहित, मेवाड़के प्रथम श्रेणीके दो उमराव, जयमलजीके दो पुत्र हरिसिंह औररामदास और कई राठौड़ राणावत राजपूत सरदार थे। वि. सं. १६२७ में अचानक एक दिन ये सभी लोग मीराबाई के निवास स्थानपर पूछते-पूछते हुए पहुँचे।

मेवाड़के राजपुरोहितजी मीराबाईसे कहने लगे- दिल्लीके बादशाह अकबरकी आँखोंमें चित्तौड़ राजगद्दीकी प्रभुसत्ता चुभ रही थी। हिन्दुत्वाभिमानी महाराणाका स्वतंत्र राजगौरव अकबरकी मुसलमानी बादशाहत गवाँरा नहीं कर पा रही थी। राजपूती शानका मान-मर्दन कर देनेके मनसूबेसे उसने चित्तौड़पर आक्रमण करनेका निश्चय किया। इसका समाचार मिलते ही युद्धकी तैयारी होने लगी। परिस्थितिकी विकटताको देखकर यह निर्णय लिया गया कि महाराणा राजपूती सेनाको किलेमें छोड़कर रनिवास और राजकुमारों एवं कुछ सवारोंको लेकर मेवाड़के दक्षिणी पहाड़ोंमें चले जायँ। निर्णयके अनुसार ऐसा ही किया गया। अकबरकी सेनाके साथ घमासान युद्ध हुआ, परन्तु चित्तौड़का किला हाथसे निकल गया।

चार महीने पहाड़ोंमें रहकर महाराणा उदयसिंह अपने रहे-सहे राजपूतोंको समेटकर उदयपुर लौट आये और अधूरे राजमहलोंको पूरा किया। विपत्तिका अंत केवल यहीं तक नहीं हुआ, हुकम। मेवाड़के राजपुरोहितजी हाथ जोड़कर निवेदन करते जा रहे थे- राजके पधारनेके बाद चित्तौड़का तो सत्यानाश हुआ ही, जहाँ जिस विजय-स्तम्भपर भगवान एकलिंगनाथका भगवाध्वज बड़े अभिमानसे गगनमें फहराता रहता था, वहाँ अब चाँद-तारोंवाला हरा परचम लहराता है। केवल राणावतों, सिसौदियों, शक्तावतों, चूँड़ावतोंका गौरव ध्वस्त नहीं हुआ सरकार। बल्कि समस्त क्षत्रिय जाति और हिन्दुत्वका गौरव भू-लुण्ठित हो गया। पुरोहितजीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उदयपुरमें भी चैन नहीं है। श्रीजीने बाँध बनाकर उदयसागर झील बनवा दी, पर अन्नदाता। इन्द्रपर

तो किसीका जोर नहीं चलता। झील सूखी पड़ी है। राज्यमें अकाल पड़ गया। प्रजा भूखी नंगी है और राजकोष रिक्त है। मनको निराशाका घोर अँधेरा निगलनेके लिये बढ़ा आ रहा है। बड़े-बूढ़े लोगोंका कहना है कि यह सब अनर्थ कुँवराणीसा मेड़तणीजीको सताने और उनके मेवाड़ परित्यागके कारण बिन-न्यौता आया है। वे कृपा करके वापस पधार जायँ तो मेवाड़की धरा पुन: शस्य श्यामला हो उठे। प्रजा और राजपरिवार खुशहाल हो जायँ। यह बूढ़ा ब्राह्मण आज अपनी यजमान वधूसे मेवाड़की रक्षाकी भीख माँगता है। उन्होंने सिरसे साफा उतारकर भूमिपर रखा- मेरी इस पागड़ीकी लाज आपके हाथमें है मेरी स्वामिनी। हमें सनाथ करो। हम अनाथ हो गये। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने धरतीपर मस्तक रखा और बिलखकर रो पड़े।

मेड़तेके राजपुरोहित उठकर कक्षमें गये। मीराने भूमिपर सिर रखकर उनको प्रणाम किया और आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। पुरोहितजीके साथ ही हरिसिंह और रामदास भी कक्षमें आये थे। उन्होंने मीराको प्रणाम किया और आज्ञा पाकर बैठ गये। सबके मुख म्लान थे। मेड़तेके राजपुरोहितजी कहने लगे- बाईसा हुकम। केवल आपका श्वसुर कुल ही आपदग्रस्त नहीं है, पितृकुल भी तितर-बितर हो गया है। आपके पिताने युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की और माँ सती हो गयी। आपके भतीजे-भाई विपदाके मारे पैतृक राज्य खोकर जीविकाके लिये भटक रहे हैं। महाराजके दो पुत्र मारवाड़ और दो मालवा पधार गये। महाराणाने बदनोरका परगना प्रदान किया था, उसपर उनके पाँचवे पुत्र मुकुन्ददासजी गद्दीपर विराजे हैं। एक बार महाराज (मुकुन्ददासजी) के पूछनेपर किसी साधुने कहा था कि मेवाड़में किसी भक्तका अपमान हुआ है, इसीसे विपत्ति बरस पड़ी है। यदि वे प्रसन्न हो जायँ और उन्हें वापस ला सको तो सबकी विपत्ति दूर हो। महाराजने भी हाथ जोड़कर प्रणामके साथ अर्ज-विनय की है। हरिसिंहने करबद्ध होकर निवेदन किया- हम आपके बालक हैं। बालक तो पेटतें रहते भी लात मारता है हुकम। जो भी अपराध दोनों कुलोंसे हुए हैं, आप अपने उदार अनुग्रहमय स्वभावसे क्षमा बख्शावें और मेवाड़ पधारकर हम बालकोंके सिरपर हाथ रखकर सनाथ करावे।

मीरा दु:खित स्वरमें बोली- पुरोहितजी, मनुष्य केवल अपने कर्मोंका फल पाता है। मेवाड़ और मेड़ताकी विपदगाथाएं सुनकर जी दु:खा, किन्तु सच मानिये, यह मेरे कारण नहीं हुआ। मुझे तो कभी लगा ही नहीं कि किसीने मुझे दु:ख दिया और दिया भी हो तो वह कभी मेरे पास आया नहीं। शायद कभी आया भी हो, परन्तु मुझे उससे मिलने और आँख उठाकर देखनेकी फुरसत ही नहीं मिली। तब वह दु:ख कैसे आया, किसके द्वारा आया, यह सब मुझे कैसे मालूम होता? यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् मेरे प्रभुका स्वरूप है, तब मेरे रुष्ट और तुष्ट होनेका प्रश्न ही कैसे उठ सकता है? अत: मेरे प्रति किसीसे कोई अपराध हुआ है और इसी कारण विपत्ति आयी है, यह वहम आप दोनों ही ओरके महानुभाव अपने-अपने मनसे निकाल दें। अब रही बात मेरे लौटने की। कभी आप लोगोंने अपनी ससुरालमें सुखपूर्वक रहती हुई बहिन-बेटीको कहा कि अब तुम पीहर आ जाओ तो हम सुखी हो जायँ? अब यहाँ इस भूमिमें आकर क्या लौटना होता है? उनकी आँखोंसे अश्रुविन्दु झरने लगे। हरिसिंह, रामदास, क्षत्राणी तलवारकी भेंट चढ़नेके लिये ही पुत्रका प्रसव करती है बेटा। तुम्हारे पिता, काका, भाई युद्धमें मारे गये, इसमें अनोखी बात क्या हुई? शस्त्र विद्या सीखते समय प्रत्येक राजपूत यही सोचता है कि धरा, धर्म, शरणागत और दीनोंकी रक्षा हेतु युद्ध करते हुए वह वीरगतिको प्राप्त हो। तुम्हारे पिताने मुझसे अनेक बार अपनी यह अभिलाषा व्यक्त की थी। गौरवसे तुम्हारी छाती फूल उठनी चाहिये। वीरोंको जागतिक सुख नहीं, अपना धर्म और कर्त्तव्य प्रिय होता है बेटे। प्रारब्धानुसार आगमापायी सुख-दु:ख भौतिक वस्तुएँ नहीं हैं कि कोई किसीको दे दे अथवा छीन ले। सम्यक् कर्त्तव्य-पालनका सुख ही सच्चा सुख है, अन्यथा देह तो प्रारब्धके अधीन है। इसे वह सब सहना होगा, जो उसका प्रारब्ध उसे दे। राजपूतकी जीवन-निधि धन-धरा-परिवार नहीं है। ईमान ही उसका कर्त्तव्य है, उसका धर्म है। उठो और

सेवामें जुट जाओ उसकी, जिसके लिये तुम्हारा जन्म हुआ है। अबलाओंकी भाँति रोना तुम्हें शोभा नहीं देता। अपने कानोंकी खिड़कियाँ खोलो, जिससे आर्त, दु:खी और सताये हुए लोगोंकी पुकार तुम सुन सको। उन्होंने रामदाससे कहा- जाकर पुरोहितजीसे अर्ज करो कि अभी तो आप पधारे ही हैं। कुछ दिन मुझे विचार करनेका समय प्रदान करें। तब तक आप सभी सरदार द्वारिकाधीशके दर्शनका एवं सत्संगका लाभ उठावें।

पाँच-छ: दिन पश्चात् भी जब मेवाड़के राजपुरोहितजीको कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिला तो उन्होंने अनशन करनेका निश्चय किया। सौजन्यवशात् राठौड़ोंके पुरोहितजी भी उनके समीप बैठ गये। अनशनकी बात सुनकर मीराने उन्हें कई प्रकारसे समझानेका यत्न किया, किन्तु वे उन्हें ले जाये बिना किसी तरह नहीं मान रहे थे। दो दिन और निकल गये। ब्राह्मणोंको भूखे मरते देखकर वे व्याकुल हो उठीं। उन्होंने पुन: उनसे अनुनय की, किन्तु उन्होंने रीते हाथ लौटनेकी अपेक्षा मरना अधिक श्रेयस्कर समझा। आखिरकार मीराने उन्हें आश्वासन दिया- मैं प्रभुसे पूछ लूँ। वे आज्ञा दे देंगे तो आपके साथ चली चलूँगी।

उस समय देवालयमें द्वारिकाधीशकी मंगला आरती हो चुकी थी और पुजारीजी द्वारके पास खड़े थे। दर्शनार्थी दर्शन करते हुए आ-जा रहे थे। राणावतों और मेड़तियोंके साथ आये हुए सभी व्यक्तियोंके सहित मीरा भव्य मंदिरके परिसरमें पहुँची। देख-पहचान करके कोई-कोई उन्हें प्रणाम करने लगे और जो नहीं जानते थे, वे दूसरोंसे उनका परिचय पूछने लग गये। सबके साथ मीराने प्रभुको प्रणाम किया। पुजारीजी उन्हें पहचानते थे और यह भी जानते थे कि इन्हें लिवानेके लिये राजपूतानेसे मेवाड़के बड़े-बड़े सामन्तों सहित राजपुरोहित आये हैं। चरणामृत तुलसी देते हुए उन्होंने पूछा-शूँ थयूँ जावा नूँ तय भई गयूँ शूँ? आपना बिना प्रभु नी द्वारिका सुनी थई जशे।

ऐ ने माटे ज हूँ रजा माँगवा आवी छूँ महाराज। हुकम होय ते हूँ प्रभु थी रजा माँगी लऊँ।

हाँ, हाँ, पधारो बा। आपने माटे कोण ना पाड़े छे।

पुजारीकी बात सुनकर मीरा निज मन्दिरके गर्भगृहके सम्मुख गयी। उन्होंने प्रणाम किया और हाथमें इकतारा ले वे गाने लगीं।

साजन सुध ज्यूँ जाणो त्यूँ लीजे। तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे।।

दिवस न भूख रैण नहीं निंदरा यूँ तन पल पल छीजे। मीरा के प्रभु गिरधरा नागर मिल बिछुरन मत दीजे।।

मीराबाई ने जब उन लोगों का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तब जागीरदार, राजकर्मचारी, ब्राह्मणादि प्रजाजनों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। जब तक मीराबाई वापिस न लौटेगी तब तक अनशन करने की उन्होंने प्रतिज्ञा ले ली और वहीं धरना देकर बैठ गये। मीराबाई ने सबको बहुत समझाया परन्तु सब व्यर्थ हुआ। अन्त में मीराबाई ने सबको कहा कि इस परिस्थिति में मेरे कर्त्तव्य के लिये मैं निज मंदिर में जाकर श्री द्वारिकाधीश की आज्ञा ले आती हूँ, तब तक आप लोग यहीं भजन करते रहें। यह कहकर मीराबाई निज द्वार के भीतर चली गई और द्वार बंद कर दिया। भगवान से प्रार्थना की- हे मेरे श्यामसुन्दर। जीवन भर विरहाग्नि में दहकती रही अब तो नाथ पधार कर इस जन्म-जन्म की आपकी दासी को कण्ठ लआगो प्यारे। अब क्यों देर हो रही हे नाथ।

पश्चात् उसने अपने पैरों में घूँघरू बाँध लिये। हाथ में करताल ली और पद गाते हुए नृत्य करने लगी। उसके स्वरोंमें करुणा, प्रेम, श्रृंगार आदि भावों की झलक थी। उसके नृत्य में हृदय का उफान था। अन्तिम मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीजे हो यह चरण उसने गाया तब उसके नेत्रों में प्रेमाश्रु आये, कण्ठ गदगद हो गया। उसकी प्रिय मिलनोत्कष्ठा चरम सीमा तक पहुँच गई। साक्षात् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उसी क्षण आपही दीपक प्रकट हो गये, शंख ध्वनि तथा घड़ियाल व घंटानाद होने लगा। अंतरिक्ष से पुष्प-वृष्टि होने लगी। मीराबाई को अपने प्यारे की बाँसुरी की मधुर तान सुनाई दीं वहाँ फैले हुई दिव्य

प्रकाश में एक टक प्रभु को निहार रही थी कि भगवान ने हाथ पसारे व साथ ही शब्द सुनाई दिये- आओ मेरी प्यारी मीरा। दूसरे क्षण दौड़कर वह प्रभु के निकट पहुँच गई और श्यामसुंदर ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। अपने दृढ़ बाहुपाश में बाँध लिया। अपने प्रियतम बाँकेबिहारी की ओर बाँकी दृष्टि से निहारती हुई मीराबाई मुसकरा रही थी। वह परमांद विभोर होकर अपनी सुध-बुध खोती जा रही थी। ज्यों जल में गिर जाने पर लवण धीरे-धीरे जल के साथ एक रूप हो जाता है त्यों मीराबाई शनैः शनैः प्रभु में विलीन हो गई। प्रभु ने उसे अपने सारे अंगों में समा लिया। भगवती मीरादेवी की अवतार-लीला समाप्त हो चुकी, उसने सारूप्य मुक्ति पा ली अर्थात अपने आनंदस्वरूप को प्राप्त हो गई।

उसी क्षण मानों आँधी के प्रबल झोंकें से मंदिर के कपाट खुल गये। झालर-घण्डा, घड़ियाल, शंखादि बजने की व दुन्दुभी झड़ने की ध्वनि सुनाई देने लगी। लोग इस चमत्कार से भक्त की भक्ति के अपूर्व प्रभाव से किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गये। पुजारी को सर्वप्रथम प्रेरणा हुई और ज्योति प्रकटाकर उसने भगवान की आरती उतारी। अंत में सबने भगवती मीराँ माता की जय त्रिवार जयकार किया जो चहुँ ओर गूंज उठा।

क्षणमात्रके लिये एक अभूतपूर्व प्रकाश प्रकट हुआ, मानो सूर्य चन्द्र एक साथ अपने पूरे तेजके साथ उदित होकर अस्त हो गये हों। इस प्रकाशमें प्रेमदीवानी मीरा समा गयी। उसी समय मंदिरके सारे घंटे-घड़ियाल और शंख अपने-आप जोर-जोरसे एक साथ बज उठे। कई क्षण तक लोग किंकर्तव्यविमूढ़से रहे। किसीकी समझमें नहीं आया कि क्या हुआ। एकाएक चमेली बाईसा हुकम पुकारती हुई निज मंदिरके गर्भगृहकी ओर दौड़ी। पुजारीजीने सचेत होकर हाथके संकेतसे उसे रोका और स्वयं गर्भगृहमें गये। उनकी दृष्टि चारों ओर मीराको ढूँढ रही थी। अचानक प्रभुके पार्श्वमें लटकता भगवान का वस्त्र खंड दिखायी दिया। लपककर उन्होंने उसे हाथमें लिया। वह मीराकी ओढ़नीका छोर था। ओढ़नीका छोर तो दिखलायी दिया, परन्तु मीराजी गर्भगृहमें कहीं नहीं दिखीं। निराशाके भावसे भावित हुए पुजारीजी गर्भगृहसे बाहर आये और उन्होंने निराशा व्यक्त करनेके लिये सिर हिला दिया। उनके संकेतका अर्थ समझकर मेवाड़ और मेड़तेके ही नहीं, वहाँ उपस्थित सभी जन आश्चर्य विमूढ़ हो गये। यह कैसे सम्भव है? अभी हमारे सामने उन्होंने गाते-गाते गर्भगृहमें प्रवेश किया है। भीतर नहीं है तो फिर कहाँ हैं? हम अपने स्वामीको जाकर क्या उत्तर देंगे? मेवाड़ी वीर बोल उठे।

पुजारी बोला- मैं भी तो आप सबके साथ बाहर ही था। कैसे बताऊँ ये कहाँ गयीं? अगर आप समझना चाहो तो समझ लो कि वे प्रभुमें समा गयी हैं। वे प्रभुके श्रीविग्रहमें सदेह विलीन हो गयीं। लोगोंने पूछा- क्या हम गर्भगृहको भीतरसे अच्छी तरह देख सकते हैं? पुजारी बोला- अवश्य देखिये। मुझे तो वैसे भी मंदिरको गंगाजलसे धोना पड़ेगा। पुजारी बोला-मेवाड़ और मेड़तेके एक-एक वीर निज मंदिरके द्वारपर खड़े हो गये। दोनों पुरोहित निज मंदिरमें प्रवेश करके मूर्तिके चारों ओर घूमकर मीराको ढूँढने लगे। उन्होंने फर्श बजाकर देखा कि वह नीचेसे पोला तो नहीं है। इसी प्रकार दीवारें भी ठोंकी। अंतमें वे निराश होकर बाहर निकलने लगे तो पुजारीने कहा- क्या आप ओढ़नी का पल्ला नहीं देख रहे? अरे वो तो प्रभु में लीन हो गयी। आपको इसकी भी खबर नहीं क्या? लोगोंने देखा और पल्लेको खींचा पर तनिक भी नहीं सरका। तब वे सभी बाहर आ गये। पुजारी जयघोष कर बोला- मीरा माँ की जय, भगत भगवान की जय, द्वारिकाधीश की जय। मेड़ता और चित्तौड़की मूर्तिमंत गरिमा अपने आराध्यमें जा समायी।

नृत्यत नूपुर बाँधिके गावत ले करतार। देखत ही हरि में मिली तृण सम गनि संसार ।।
मीरा को निज लीन किय नागर नंद किशोर। जग प्रतीत हित नाथ मुख रह्यो चुनरी छोर ।।

सहसा प्रभु के स्वरूप की ओर लोगों की सूक्ष्म दृष्टि हुई तब उनके ध्यान में आया कि मीराबाई की साड़ी का पल्ला, प्रभु के मुख कमल के नीचे एक ओर बगल के पास लटक रहा था। सब उपस्थित भक्त जन समझ गये कि मीराबाई अब तो ऐसे स्थान पर पहुँच गई है कि फिर कभी वापस आने की नहीं। भक्त-भगवान एक रूप हो गये हैं। वे विवश होकर अपने देश लौट गये।

मीराँ को निज लीन किय, नागर नन्दकिशोर। जग प्रतीत हित नाथ मुख, रह्यो चूनरी छोर।।

मीरा प्रेम की जीती जागती ऐसी साक्षात प्रतिमा है, जिसके प्रेम में विरह व अटूट भक्ति एवं समर्पण का अनुपम भाव है। उनकी आंखों से बहा एक-एक आंसू पद व छंद बन गया। तर्क का छल जहां खत्म होता है, मीरा का प्रेम वहां से शुरू होता है।

बालपन में गली से गुजरती हुई बारात को देख मीरा ने जब अपनी मां से पूछा, मां मेरी शादी कब होगी और मेरा दूल्हा कौन है? इस पर मां ने मीरा को बहलाते हुए कहा मंदिर में रखी गिरिधर गोपाल की प्रतिमा की ओर इशारा करते हुए कहा था, तुम्हारा दूल्हा वो है। मां को भी शायद यह भाव ना आया हो कि मेरा यह जवाब बच्चे के मन पर इतना गहरा असर छोड़ेगा। ईश्वर इच्छा ही थी कि वे मीरा के माध्यम से दुनिया को सच्चे प्रेम व निष्ठा का संदेश देना चाहते थे। प्रेम दीवानी मीरा कहतीं, बसो मेरे नयनन में नंदलाल। प्रेम का ऐसा रूप जिसने लोकलाज, मान-मर्यादा, घर-द्वार सभी कुछ छुड़वा दिया। मीरा की प्रीत ने संसार को संदेश दिया कि सच्चा प्रेम तो डूबकर ही मिलता है और उसके लिए उतनी गहरी प्यास तथा प्रकार चाहिए। वे स्वयं के होने न होने के भाव, अहंकार से ऊपर उठ कर ही अहं की ईश भी कहलाईं। यह प्रेम रूपी ध्यान है, विचार है, जो सतत मीरा के रोम-रोम में दौड़ता है। तभी तो वह संत महात्माओं की संगति में रहती थीं। यह भूलकर कि वो एक राजवंश घराने की बहू हैं। वे कहीं भी किसी गली कूचे में, पग में घुंघरू बांध नाचती हैं। क्योंकि यह नाच पद और घुंघरू उस परमात्मा को रिझाने के लिए है, जो अनिर्वचनीय है और यह जगत तो उसका प्रतिबिंब है। ठीक इसकी तरह जैसे हम हमारी आंखों को भी स्वयं नहीं देख पाते और हमें अपनी आंखों का प्रतिबिम्ब दर्पण में ही दिखता है।

आज हमारी पीड़ा भी यही है कि अंतर्मन में प्रेम की आकांक्षा है, पर उसकी तृप्ति का कोई उपाय नहीं। मीरा ने हर पल हर लम्हा उस भाव में अपने को रमाया, जहां सिर्फ समर्पण है। हरि के गुण गाने हेतु यही भाव दशा चाहिये तभी अंत:करण गाता है, मनगता आती है और मन समाधि भाव में स्थित ही तैरने लगता है। भक्ति में ऐसी मस्ती है कि वहां किसी चीज का भय नहीं। ऐसा सद्भाव है जिसमें जहर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दीन्ह बताए का भाव मीरा के मन में है। मीरा का यह भाव हमें संदेश देता है कि अगर परमात्मा ने साथ दिया तो बड़ा से बड़ा दु:ख भी सुख में परिवर्तित हो जाता है। इसके लिए आवश्यकता होती है पात्रता की।

मीरा पवित्र पात्रता की अद्वितीय मिसाल है। इसीलिए मीरा कहती हैं, राणा जी मैं वैरागण होंगी, जिन भेषो मेरो साहिब रीझे,सोई भेष धरूं। और राणा जी का सुंदर रंग-बिरंगा देश, हीरा जवाहरात छोड़ वैराग्य के पथ पर अग्रसर हो चल पड़ी। क्योंकि सच्चा प्रेम तो त्याग में है, प्यास में है। परन्तु हम सब तो जीवन के उपद्रव में लगे रहते हैं और सदैव सुंदर-सुंदर पाना चाहते हैं। हम चाहते तो सौंदर्य, कांति, प्रसाधन, अर्थ-धन और कहते हें कि हम प्रेम करते हैं। **खुशी जिसने चाही वो धन लेके लौटा, हंसी जिसने चाही चमन लेके लौटा, मगर प्यार को ढूंढने जो चला वो ना तन लौटा ना मन लेके लौटा।**

प्रेम जीवन की जरूरत है, आत्मा का श्वास है और इसकी यात्रा सतत जारी है। शाश्वत प्रेम को प्रमाण की नहीं वरन उस दीवानगी की आवश्यकता है, जहां पर हम-तुम, बड़ा-छोटा, ऊंच नीच, जात-पात सभी खत्म हो जाता है। रहता है तो सिर्फ प्रेम का निर्बाध झरना।